मुण्डमाला तन्त्रम्

प्रदीप कुमार राय

प्राच्य प्रकाशन, वाराणसी

तन्त्र ग्रन्थमाला नं० 23

मुण्डमालातन्त्रम्

(मूल एवं हिन्दी अनुवाद सहित)

सम्पादक एवं हिन्दी अनुवाद

प्रदीप कुमार राय

प्राच्य प्रकाशन

वाराणसी-221002

संस्करण-2010

प्रकाशक :

कुश राय

प्राच्य प्रकाशन

C 21/3-C (होटल हिन्दुस्तान इण्टरनेशनल कम्पाउण्ड)

मलदहिया, वाराणसी-221002 (भारत)

मूल्य : 200.00 रुपये

मुद्रक :

गौतम प्रिण्टर्स, जगतगंज, वाराणसी-2

भूमिका

जगत् स्वामिन प्रभो गुप्तदक्ष की अव्यर्थ-इच्छा से 'मुण्डमालातन्त्र' का नवीन संस्करण प्राच्य प्रकाशन, वाराणसी से प्रकाशित हो रहा है। यह तन्त्रशास्त्र का एक प्रमाणिक तन्त्रग्रन्थ है।

सर्वप्रथम प्रकाशित 'मुण्डमालातन्त्र' में प्रथम पटल से दशम पटल तक ही प्रकाशित हुआ था। बाद में रसिक मोहन जी ने एक मुण्डमाला तन्त्र को प्रकाशित किया। इसमें प्रथम पटल से षष्ठ पटल तक ही था। इसमें वचनों को अनेक स्थानों पर प्रमाण-रूप में ग्रहण किया गया है, परन्तु दशम पटलान्त 'मुण्डमालातन्त्र' के किसी वचनों को प्रमाण-रूप में ग्रहण नहीं किया गया है।

ऐसा प्रतीत होता है कि ये दोनों 'मुण्डमालातन्त्र' प्रकृत ग्रन्थ हैं। भगवान् शंकर के पाँच मुण्डों से यह तन्त्र प्रकाशित हुआ था। एक मुण्ड के द्वारा जो-जो विषय कहे गये हैं। दुसरे मुण्ड के द्वारा वह नहीं कहा गया। इस प्रकार पाँच मुण्ड़ों के द्वारा पृथक्-पृथक् विषय प्रकाशित किये गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि पहला ग्रन्थ एक मुण्ड के द्वारा कथित हुआ है।

षष्ठ पटलान्त 'मुण्डमालातन्त्र' में पहले दश महाविद्या का नाम एवं विद्या की प्रशंसा का वर्णन किया गया है। द्वितीय पटल में अक्षमाला के प्रकार भेद, अक्षमाला का निर्माण एवं संस्कार-पद्धति वर्णित हुई है। तृतीय पटल में जप एवं पूजा स्थल, प्रशस्त आसन एवं निन्दित आसन तथा चतुर्थ पटल में बलि के भेद, बलिदान की विधि एवं फल का वर्णन, पंचम पटल में पुरश्चरण के प्रकार एवं विधि, षष्ठ पटल में भुवनेश्वरी का यन्त्र एवं पूजा-पद्धति का वर्णन है।

दशम पटलान्त 'मुण्डमालातन्त्र' में प्रारम्भ में दशमहाविद्या का उल्लेख है। प्रायः प्रत्येक पटल में दुर्गा एवं तारा के जप-पूजा के फल एवं स्थान-स्थान पर स्तव-कवच का कथन किया गया है।

इस ग्रन्थ के एकादश पटल से पञ्चदश पटल में क्रमशः सप्तम, अष्टम तथा नवम पटल के श्लोकों का साम्य हैं। इसलिए उनका अनुवाद नहीं दिया गया है। षोडश पटल से ऊनविंश पटल का प्रकाशन पहले नहीं हुआ था। इसलिए उनका प्रकाशन किया गया है। यदि कोई सुधी पाठक इस मुण्डमाला के अतिरिक्त कौई सम्पूर्ण पाण्डुलिपि उपलब्ध करा सके तो उसका संग्रह करके पृथक्-रूप से संशोधित संस्करण का प्रकाशन कराया जा सकता है।

प्रदीप कुमार राय

मुण्डमाला तन्त्रम्

मुण्डमालातन्त्रम्

प्रथमः पटलः

सर्वानन्दमयीं विद्यां सर्वाम्नायैर्नमस्कृताम् ।
सर्वसिद्धिप्रदां देवीं नमामि परमेश्वरीम् ।।1।।

श्रीदेव्युवाच —

देवदेव ! महादेव ! परमानन्द ! सुन्दर ! ।
प्रसीद गुह्य-विक्रान्त ! कथयस्व प्रियंवद ! ।।2।।
सर्वतन्त्रेषु मन्त्रेषु गुप्तं यत् पञ्चवक्त्रतः ।
तत् प्रकाशय गुह्याख्यं यच्च त्वं मम वल्लभः ।।3।।

श्री शिव उवाच —

कथां ते कथयिष्यामि गुप्तं यत् चञ्चलाम्बिके ! ।
स्त्रीस्वभावान्महत् तत्त्वं न जानासि शुभप्रदम् ।।4।।

सर्वानन्दमयी सर्वाम्नाय-नमस्कृता (=सर्वपूजिता) सर्वसिद्धिप्रदा देवी परमेश्वरी विद्या को मैं नमस्कार करता हूँ ।।1।।

श्रीदेवी ने कहा — हे देवदेव ! हे महादेव ! हे परमानन्द ! हे सुन्दर ! हे प्रियंवद ! हे गुह्य-विक्रान्त ! हे [illegible] !, आप हमारे प्रति प्रसन्न होवें । आप हमें गोपनीय बातों को बतावें ।।2।।

समस्त तन्त्रों में एवं समस्त मन्त्रों में जो गुप्त (=गुह्य) विषय हैं, उन गुप्त विषयों को अपने पाँच मुखों के द्वारा प्रकाशित करें, क्योंकि आप मेरे वल्लभ (स्वामी, प्रभु या पति) हैं ।।3।।

श्रीशिव ने कहा — जो गुह्य है, उसके विषय में मैं आपको बताऊँगा । हे अम्बिके ! चूँकि आप स्त्री के स्वभाववश चञ्चला हैं, इसलिए आप शुभ-प्रद महान् तत्त्व को नहीं जानतीं हैं ।।4।।

श्रीदेव्युवाच —

सुस्थिराऽहं भविष्यामि न वक्तव्यं कदाचन।
तव भक्त्या भविष्यामि भावना मन्त्रसिद्धिदा ॥5॥

श्रीशिव उवाच —

देवता-गुरु-मन्त्राणामैक्यभावनमुच्यते ।
मन्त्रो यो गुरुरेवासौ यो गुरुः स च देवता ॥6॥
काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा ॥7॥
बगलामुखी सिद्धविद्या मातङ्गी कमलात्मिका।
एता दश महाविद्याः सिद्धविद्याः प्रकीर्त्तिताः ॥8॥
अत्यन्तदुर्लभा लोके षड़ाम्नाय-नमस्कृताः।
एताभ्यः परमा विद्या त्रिषु लोकेषु दुर्लभा।
सुखदा मोक्षदा विद्या क्लेशसाध्या न तादृशी ॥9॥

श्रीदेवी ने उत्तर दिया — मैं सुस्थिरा बनूँगी। आपके प्रति भक्ति के कारण मैं सुस्थिरा बन सकती हूँ। कदापि गुह्य बातों को (बाहर) नहीं बताऊँगी। भावना (ही) मन्त्रसिद्धिप्रदा बन जाती है ॥5॥

श्रीशिव ने कहा — देवता, गुरु एवं मन्त्र — इनमें ऐक्य की भावना का कथन किया जा रहा है। जो मन्त्र है, वही यह गुरु है। जो गुरु हैं, वे ही देवता हैं ॥6॥

महाविद्या, काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, महाविद्या, धूमावती, बगलामुखी, सिद्धविद्या मातङ्गी एवं कमला — ये दश महाविद्या 'सिद्धविद्या' के नाम से कही गयीं हैं ॥7-8॥

ये दश महाविद्या लोक में अत्यन्त दुर्लभ हैं। ये छः आम्नायों के द्वारा नमस्कृता (प्रशंसिता) हैं। इन तीनों लोकों में, इन दश महाविद्याओं से श्रेष्ठ विद्या दुर्लभ हैं। यह विद्या सुखप्रदा एवं मोक्षप्रदा हैं, जबकि वैसी क्लेश साध्या नहीं हैं ॥9॥

येन येन प्रकारेण सिद्धिर्यास्यति भूतले ।
सर्वं ते कथयिष्यामि प्रेमभावेन केवलम् ।।10।।
नैव सिद्धाद्यपेक्षास्ति नक्षत्रादि-विचारणा ।
कालादिशोधनं नास्ति नारि-मित्रादिदूषणम् ।।11।।
सिद्धविद्यातया नात्र युगसेवा-परिश्रमः ।
नास्ति किञ्चिन्महादेवि ! दुःखसाध्यं कदाचन ।।12।।
या काली परमा विद्या चतुर्धा कथितापुरा ।
लक्ष्मीबीजादि-भेदेन पञ्चमी सा भवेदिह ।।13।।
एकाक्षरी महाविद्या वीर्यहीनाऽभवत् पुरा ।
भुवनेश्वरी त्र्यक्षरी न महाविद्या प्रकीर्त्तिता ।।14।।

श्रीदेव्युवाच —

दुष्टा विद्या च देवेश ! कथिता न प्रकाशिता ।
इदानीं त्वद्दयाभावात् कथयानन्दसुन्दर ! ।।15।।

इस पृथ्वी पर जिस जिस प्रकार से सिद्धि प्राप्त होती है, वे सभी केवल आपके प्रति प्रेमभाव वश ही बताऊँगा ।।10।।

इस विद्या के विषय में सिद्ध [illegible] विषयक विचार अपेक्षित नहीं है ! नक्षत्रादि का विचार भी अपेक्षित नहीं है । कालादि की शुद्धि भी नहीं है ! अरि-मित्रादिका दोष भी नहीं है ।।11।।

ये समस्त महाविद्याएँ 'सिद्धविद्या' होने के कारण इनमें युगसेवा का परिश्रम नहीं है । हे महादेवि ! इनमें दुःखसाध्य कुछ भी नहीं है ।।12।।

पहले जो परमा विद्या काली चार प्रकार से [illegible] कहा गया था, वही काली लक्ष्मी-बीजादि भेद से इहलोक में पञ्चमी हो जाती है ।।13।।

एकाक्षरी महाविद्या पहले वीर्यहीना बन गयी थी । त्र्यक्षरी भुवनेश्वरी 'महाविद्या' कही गयीं हैं ।।14।।

श्रीदेवी ने कहा — हे देवेश ! आपने दुष्टा (=अभिशप्ता) विद्या की बात तो कहा है, किन्तु उसे प्रकट नहीं किया है । हे आनन्द-सुन्दर ! आप दयावश होकर सम्प्रति उसे बतायें ।।15।।

श्रीईश्वर उवाच —

भुवनेशी महाविद्या देवराजेन वै पुरा ।
आराधिता च विद्येयं वज्रेण नाम-मोहिता ॥16॥
एकाक्षरी वीर्यहीना वाग्भवेनोज्ज्वलाऽभवत् ।
कामराजाख्या विद्या या विद्या सा पुष्पधन्वना ॥17॥
शरेण पीड़िता पूर्व भुवनेश्या प्रतिष्ठिता ।
कुमारी या च विद्येयं त्वया शप्ता बहिश्च्युता ॥18॥
तथाद्येन तु लुप्ताऽसौ मध्यमेन तु कीलिता ।
अन्तिमेन तु सम्भिन्ना तेन विद्या न सिध्यति ॥19॥
केवलं शिवरूपेण शक्तिरूपेण केवलम् ।
मया प्रतिष्ठिता विद्या तारा चन्द्रस्वरूपिणी ॥20॥
धूमावती महाविद्या मारणोच्चाटने रता ।
बगला वश्य-स्तम्भादि-नानागुण-समन्विता ॥21॥

श्रीईश्वर ने कहा – पहले देवराज इन्द्र के द्वारा महाविद्या भुवनेश्वरी आराधिता हुई थी। वज्र ने भी नाममोहिनी इस विद्या की आराधना की थी ॥16॥

वीर्यहीना भुवनेश्वरी की एकाक्षरी विद्या, वाग्भव (ऐं बीज) के द्वारा पूरित होकर उज्ज्वल (निर्दोष) बन गयी थी। कामराज नामक जो विद्या है, वह विद्या पहले पुष्पधन्वा (=कामदेव) के द्वारा शर से पीड़िता (अभिशप्ता) बन गयी थी। बाद में (वह) भुवनेशी (ह्रींकार) के द्वारा प्रतिष्ठित हुई थी। ये जो कुमारी नाम्नी विद्या है, ये आपके द्वारा अभिशप्ता होकर बहिश्च्युता (=विच्छिन्ना) हो गयी थीं ॥17-18॥

यह (विद्या) प्रथम बीज के द्वारा लुप्ता हैं, मध्यम बीज के द्वारा कीलिता (बद्धा) है, अन्तिम बीज के द्वारा छिन्ना हैं। इसी कारण, यह विद्या फलप्रदा नहीं होती है ॥19॥

तारा चन्द्र-स्वरूपिणी (=स्त्री स्वरूपिणी) है। वह विद्या मेरे द्वारा केवल शिव-रूप में (=ह-कार रूप मे) एवं केवल शक्तिरूप मे (=स-कार-रूप में) अर्थात् 'ह्सौं' के योग मे प्रतिष्ठिता (=निर्दोष) हुई थी ॥20॥

महाविद्या धूमावती मारण एवं उच्चाटन में रता है। महाविद्या बगलामुखी वशीकरण, स्तम्भन प्रभृति नाना गुणो से भूषिता हैं ॥21॥

मातङ्गी च महाविद्या त्रैलोक्य-वशकारिणी।
कमला त्रिविधा प्रोक्ता एकाक्षरधिया स्थिता।
केवला तु महासम्पद-दायिनी सुखमोक्षदा ॥22॥

इति मुण्डमालातन्त्रे प्रथमः पटलः ॥1॥

महाविद्या मातङ्गी त्रैलोक्य को वशीभूत करतीं हैं। कमला तीन प्रकार की कही गयीं हैं। किन्तु (वह) एकाक्षर बुद्धि के द्वारा अवस्थिता हैं अर्थात् लोक उन्हे एकाक्षरी मानता है। केवला महाविद्या कमला महासम्पद्-दायिनी हैं एवं वहा सुख तथा मोक्ष-प्रदा हैं ॥22॥

मुण्डमालातन्त्र के प्रथम पटल का
अनुवाद समाप्त ॥1॥

द्वितीयः पटलः

श्रीदेव्युवाच –

अक्षमाला तु कथिता यत्नतो न प्रकाशिता।
अक्षमालेति किं नाम फलं किं वा वदस्व मे ॥1॥

श्रीईश्वर उवाच –

अक्षमाला तु देवेशि ! काम्यभेदादनेकधा।
भवति शृणु तत् प्रौढे ! विस्तरादुच्यते मया ॥2॥
अनुलोम-विलोमस्थ क्लृप्तया वर्णमालया।
आदिलान्ता लादिकान्ता क्रमेण परमेश्वरि !।
क्षकारं मेरुरूपं तं लङ्घयेन्न कदाचन ॥3॥
मेरुहीना च या माला मेरुलङ्घ्या च या भवेत्।
अशुद्धाऽतिप्रकाशा च सा माला निष्फला भवेत् ॥4॥
चित्रिणी बिशतन्त्वाभा ब्रह्मनाड़ीगता तु या।
त्वया संग्रथिता ध्येया सर्वकामफलप्रदा ॥5॥

श्रीदेवी ने कहा – आपने अक्षमाला की बात कही है, किन्तु यत्नपूर्वक उसे प्रकाशित नहीं किया है। 'अक्षमाला' का नाम क्यों है ? एवं इसका फल क्या है ? यह मुझे बतावें ।।1।।

श्रीईश्वर ने कहा – हे देवेशि ! कामना-भेद से अक्षमाला अनेक प्रकार की होती है। मैं विस्तारपूर्वक उसे बता रहा हूँ। हे प्रौढे ! उसे आप श्रवण करें ।।2।।

हे परमेश्वरि ! अकार से लकार पर्यन्त एवं लकार से अकार पर्यन्त क्रम से अनुलोम-स्थित एवं विलोम स्थित रचित वर्णमाला के द्वारा 'अक्षमाला' बनती है। मेरु-रूप उस क्ष-कार का कदापि लङ्घन न करें ।।3।।

जो माला मेरु-हीना है अथवा जो माला मेरुलङ्घिना है, अथवा जो माला अशुद्ध एवं अतिप्रकाश है अर्थात् जो अनेक लोगों के निकट प्रदर्शिता है, वह निष्फल होती है ।।4।।

जो चित्रिणी नाड़ी मृणालतन्तु के समान आभायुक्त है, वह ब्रह्मनाड़ी के मध्य में से होकर गयी है। उसके द्वारा अक्षमाला ग्रथित है – ऐसा ध्यान करने पर, वह सर्वकामफलप्रदा हो जाती है – ऐसा जानें ।।5।।

अष्टोत्तरशत-जपे त्वादौ क्लीवं समुच्चरेत ।
ऋ ॠ वर्णद्वयं ऌ ॡ तद्धि क्लीवं प्रचक्षते ॥6॥
वर्गाणामष्टभिर्वापि[1] काम्यभेदक्रमेण तु ।
अ क च ट त प य शा इत्येवं चाष्टवर्गतः ॥7॥
स्फाटिकैर्मोक्षदा प्रोक्ता पद्माक्षैर्बहुपुत्रता ।
जीवपुत्रैस्तु धनदा पाषाणैः सर्वभोगदा ॥8॥
शुद्धस्फटिकमाला तु महासम्पत्प्रदा प्रिये ।
श्मशानधुस्तुतरैर्माला चैका धूमावती विधौ ।
महाशङ्खमयी माला नीलसारस्वते विधौ ॥9॥

अष्टोत्तर शत जप करना हो तो आदि में क्लीव का उच्चारण करें । ऋ ॠ — ये दो वर्ण एवं ऌ ॡ — ये दो वर्ण 'क्लीव वर्ण' कहे जाते हैं ॥6॥

अथवा कामना के भेद के क्रम से आठ वर्गों के द्वारा जपकार्य करें । अवर्ग, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यवर्ग एवं शवर्ग — इस प्रकार आठ वर्गों में अ क च ट त प य श — इन आठ वर्णों का उच्चारण करें ॥7॥

स्फटिक गुटिका से निर्मित माला मोक्षप्रदा है । पद्मबीज की माला बहुपुत्रप्रदा है । जीवपुत्र की माला धनप्रदा है, पाषाण-गुटिका से निर्मित माला सर्वभोगप्रदा है ॥8॥

हे प्रिये ! शुद्ध स्फटिक की माला महासम्पत्प्रदा है । धूमावती के प्रयोग में एकमात्र श्मशान-धतूरे के काष्ठ की माला ही प्रशस्त है । नील सारस्वत तारा के प्रयोग में महाशङ्खमयी माला विहिता (=विधान की गयी) है ॥9॥

---

1 : वर्गाणामष्टकं वार्पीति तारा रहस्य-धृतपाठः । ताराभक्तिसुधार्णव-कार ने इन दोनों श्लोकों की व्याख्या सप्रमाण की है — '108 मन्त्र जप के स्थल में, पहले चार क्लीववर्णों का उच्चारण कर, अकारादि-लकारान्त अनुलोम एवं लकारादि अकारान्त विलोम के अन्त में क्लीवचतुष्टय का विलोम से जप करें । यह प्रथम कल्प है । द्वितीय कल्प इस प्रकार है — अनुलोम एवं विलोम में पचास वर्णों का उच्चारण कर, अन्त में आठ वर्गों के आठ वर्णों का उच्चारण करें ।'

(ताराभक्तिसुधार्णव)

नराङ्गुलास्थिभिर्माला ग्रथिता सर्वकामदा ।
सर्वसिद्धिप्रदा मोक्षदायिनी वरवर्णिनि ॥10॥
नाड्या संग्रथनं कार्य्यं रक्तेन वाससा अपि ।
सदा गोप्या प्रयत्नेन मातृश्च जारवत् प्रिये ॥11॥
पञ्चधा कथिता माला सर्वसिद्धि-फलप्रदा ।
मौक्तिकैर्ग्रथिता माला सर्वैश्वर्य-फलप्रदा ॥12॥
मणिरत्नप्रवालैश्च हेम-रजत-सम्भवा ।
माला कार्या कुशग्रन्थ्या सर्वयज्ञफलप्रदा ॥13॥
नाडीभिर्ग्रथिता माला महासिद्धिप्रदा प्रिये ।
त्रिंशतैश्वर्यफलदा पञ्चविंशेन मोक्षदा ॥14॥
चतुर्दशमयी मोक्षदायिनी भोगवर्द्धिनी ।
पञ्चदशात्मिका देवि ! मारणोच्चाटने स्थिता ॥15॥

हे वरवर्णिनि ! नराङ्गुलियों के अस्थियों से द्वारा ग्रथित माला समस्त प्रकार की कामनाओं को प्रदान करती है। यह सर्वसिद्धिप्रदा एवं मोक्षप्रदायिनी है ॥10॥

मनुष्य की नाड़ी के द्वारा अथवा रक्तवस्त्र के द्वारा माला गूँथे। हे प्रिये ! मातृजार के समान इस माला को सर्वदा यत्नपूर्वक गोपनीय रखे ॥11॥

सर्वसिद्धिप्रदा माला पाँच प्रकार की कही गयी है। मुक्ता के द्वारा ग्रथित माला सर्वैश्वर्य-रूप फल को प्रदान करती है ॥12॥

मणि, रत्न, प्रवाल के द्वारा माला बनाये। स्वर्ण एवं रजत गुटिका के द्वारा कुश-ग्रन्थि-निर्मित माला समस्त यज्ञों के फल को प्रदान करता है ॥13॥

हे प्रिये ! नाड़ी के द्वारा ग्रथित माला महासिद्धि प्रदान करती है। तीस सूत्रों के द्वारा ग्रथित माला ऐश्वर्य रूप फल को प्रदान करती है। पचीस सूत्रों के द्वारा ग्रथित माला मोक्ष प्रदान करती है ॥14॥

चौदह सूत्रों के द्वारा ग्रथित माला मोक्षप्रदायिनी है। पन्द्रह सूत्रों के द्वारा ग्रथित माला भोगवर्द्धिनी है। हे देवि ! मारण एवं उच्चाटन के लिए पञ्चदश सूत्रों से ग्रथित माला ही विहित है ॥15॥

स्तम्भने मोहने वश्ये तिरोधानेऽञ्जने तनोः ।
पादुका-सिद्धिसङ्घे च शतं संख्या प्रकीर्त्तिता ।।16।।
अष्टोत्तरशतं कुर्यादथवा सर्वकामदम् ।
नित्यं जपं करे कुर्यान्न तु काम्यं कदाचन ।।17।।
काम्यमपि करे कुर्यान्मालाभावे प्रियंवदे ! ।
तत्राङ्गुलिजपं कुर्वन् साङ्गुष्ठाङ्गुलिभिर्जपेत् ।
अङ्गुष्ठेन विना कर्म कृतं तदफलं भवेत् ।।18।।
अनामिकाद्वयं पर्व कनिष्ठादिक्रमेण तु ।
तर्जनीमूलपर्यन्तं करमाला प्रकीर्त्तिता ।।19।।
मेरुं प्रदक्षिणी कुर्वन्ननामामूल-पर्वतः ।
मेरुलङ्घनदोषात्तु अन्यथा जायते फलम् ।।20।।
आरभ्यानामिका-मध्यात् प्रादक्षिण्य-क्रमेण तु ।
तर्जनीमूलपर्यन्तं जपेद् दशसु पर्वसु ।।21।।

स्तम्भ में, मोहन में, वशीकरण में, देह के अन्तर्धान में एवं अञ्जन में (=अव्यक्तिकरण में), पादुकासिद्धि समूह में शत संख्या (=शतसंख्यक [illegible]) कही गयी है ।।16।।

अथवा सर्वकामप्रद अष्टोत्तरशत गुटिका के द्वारा माला बनावे । नित्य जप कर में करमाला से करे किन्तु काम्य जप कदापि कर में न करे ।।17।।

हे प्रियंवदे ! विहित माला के अभाव में, काम्य जप को कर में भी कर सकते हैं । इस स्थल पर, अङ्गुलि से जप करना हो तो अङ्गुष्ठाङ्गुलि के साथ अन्य अङ्गुलि के द्वारा जप करे । अङ्गुष्ठ को छोड़कर अन्य अङ्गुलि के द्वारा जप-कर्म करने पर, वह विफल हो जाता है ।।18।।

अनामिका के दो पर्व एवं कनिष्ठादि के क्रम से तर्जनी के मूल पर्यन्त सभी पर्व, 'करमाला' कही जाती है ।।19।।

(दश या शत सङ्ख्यक जप के बाद अग्र संख्या के जप में) अनामिका के मूल पर्व से मेरु (अनामिका के मध्य पर्व) की प्रदक्षिणा करते हुए जप करे । मेरु के लङ्घन के दोष से दूसरा फल उत्पन्न होता है ।20।।

अनामिका के मध्य पर्व से प्रदक्षिण क्रम से तर्जनी के मूल पर्यन्त दस पर्वों में जप करें ।।21।।

मध्यमा त्रितया ग्राह्या अनामा-मूलमेव च।
अनामा-मध्यपर्व तु मेरुं कृत्वा न लङ्घयेत् ॥22॥
तर्जन्यग्रे तथा मध्ये यो जपेत् तत्र मानवः।
चत्वारितस्य नश्यन्ति आयुर्विद्या यशो बलम् ॥23॥
अङ्गुलिं न वियुञ्जीत किञ्चित सङ्कोचयेत् तलम्।
अङ्गुलीनां वियोगाच्च छिद्रे च स्त्रवते जपः ॥24॥
अथातो ग्रथनं वक्ष्ये मालानां तन्त्रबोधनात्।
पूजां विधाय भक्त्या तु शुचिः पूर्वमुखोपितः।
विजने प्रजपेत् मौनी स्वयं मालां च साधकः ॥25॥
कृतनित्यक्रियः शुद्धः शुभक्षणे च मन्त्रवित्।
यथाकालं यथालाभमक्षाण्यानीय यत्नतः ॥26॥
अन्योन्यसमरूपाणि नानिस्थूल-कृशानि च।
कीटादिभिरदुष्टानि न जीर्णानि नवानि च।

शक्तिमन्त्र के जप में मध्यमा के तीन पर्व एवं अनामिका का मूल पर्व ग्रहणीय है। अनामिका के मध्य पर्व को मेरु बनाकर, कदापि उसका लङ्घन न करें ॥22॥

शक्तिमन्त्र का जप करने वाला जो मानव तर्जनी के अग्र में एवं मध्य में जप करता है, उसकी आयु, विद्या, यश एवं बल - ये चारों विनष्ट हो जाते हैं ॥23॥

जपकाल में अङ्गुलियों को विस्तृत (अलग) न करे, हस्ततल को कुछ संकुचित करें। अङ्गुलियों के परस्पर वियुक्त होने पर या छिद्र होने पर, उस छिद्र से जप क्षरित हो जाता है अर्थात् निष्फल हो जाता है ॥24॥

अनन्तर पहले मालाओं के तन्त्रविहित-ग्रन्थन (विधि) को बताऊँगा। शुचि साधक व्यक्ति पूर्वाभिमुख होकर उपविष्ट होकर, भक्तिपूर्वक पूजा करके, निर्जन स्थान में स्वयं मौन होकर माला जप करें ॥25॥

मन्त्रज्ञ साधक शुद्ध एवं कृतनित्यक्रिय होकर (अर्थात् नित्य कर्म को करके), शुभ समय में विहित काल में, यत्नपूर्वक अक्षों (=गुटिकाओं) का आनयन करें ॥26॥

इन अक्षों में से प्रत्येक अक्ष दूसरे का समरूप होवे। ये अक्षअनिस्थूल या अनिक्षुद्र न होवें। ये कीटादि के द्वारा दष्ट होकर दुष्ट न होवें, जीर्ण न होवें,

गव्यैस्तु पञ्चभिस्तानि प्रक्षाल्य च पृथक् पृथक् ।।27।।
ततो द्विजेन्द्र-पुण्यस्त्री-निर्मितं ग्रन्थिवर्जितम् ।
त्रिगुणं त्रिगुणीकृत्य पट्टसूत्रमथापि वा ।
शुक्लं रक्तं तथा कृष्णं शान्तिवश्याभिचारके ।।28।।
अश्वत्थपत्रे नवके पद्माकारेण स्थापिते ।
सूत्रं मणींश्च गन्धाम्भैः क्षालितांस्तत्र निक्षिपेत् ।।29।।
श्मशानवारिणा चापि पीठप्रक्षालितेन च ।
शुद्धोदकेन रत्नेन कस्तूरीकुङ्कुमेन च ।।30।।
तावच्छक्तिं मातृकाञ्च सूत्रे चैव मणिष्वथ ।
विन्यस्य पूजयेदाद्यैर्जुहुयाच्चैव यत्नतः ।
होमकर्मण्यशक्तश्चेद् द्विगुणं जपमाचरेत् ।।31।।
मणिमेकैकमादाय सूत्रे संपातयेत् सुधीः ।
मुखे मुखन्तु संयोज्य पुच्छे पुच्छन्तु योजयेत् ।।32।।

नूतन होवे। उसके बाद पञ्चगव्य के द्वारा उन गुटिकाओं को पृथक् पृथक् प्रक्षालित करें ।।27।।

उसके बाद श्रेष्ठ ब्राह्मण की सौभाग्यवती स्त्री के द्वारा ग्रन्थिवर्जित त्रिगुण कार्पास-सूत्र या पट्टसूत्र को त्रिगुणीकृत करें। वह सूत्र शान्तिकार्य में शुक्ल, वशीकरण-कार्य में रक्त एवं अभिचार कार्य में कृष्ण वर्ण का होवे ।।28।।

पद्माकार में स्थापित नौ अश्वत्थ-पत्रों के ऊपर गन्धजल के द्वारा क्षालित सूत्र एवं मणियों (अक्षों) को स्थापित करें ।।29।।

यह प्रक्षालन श्मशान जल, पीठ प्रक्षालित जल, शुद्ध जल, रत्नमिश्रित जल अथवा कस्तूरी एवं कुङ्कुम मिश्रित जल के द्वारा करें ।।30।।

सूत्र में एवं मणियों में यथाशक्ति मातृका का न्यास कर, आद्य मन्त्र के द्वारा पूजा करें एवं होम करें। होम करने में असमर्थ होने पर द्विगुण जप करें ।।31।।

उसके बाद साधक एक-एक मणि को लेकर सूत्र में गूँथे। एक रुद्राक्ष के मुख और एक रुद्राक्ष के मुख का तथा पुच्छ के साथ पुच्छ का योग करें ।।32।।

नोट— रुद्राक्ष का उन्नत अंश मुख है एवं निम्नभाग पुच्छ है। पद्मबीज का बिन्दुद्वय युक्त सूक्ष्मांश मुख है। एक बिन्दुयुक्ता श्लक्ष्ण (=अमसृण, खुरदुरा) स्थूलांश ही पुच्छ है — ऐसा तन्त्रसार-धृत वचन में उक्त हुआ है।

गोपुच्छसदृशी कार्याथवा सर्पाकृतिर्भवेत् ।
तत्सजातीय मेकाक्षं मेरुत्वेनाग्रतो न्यसेत् ।।33।।
एकैकमणिमध्ये तु ब्रह्मग्रन्थिं प्रकल्पयेत् ।
जपमालां विधायेत्थं ततः संस्कारमारभेत् ।।34।।
क्षालयेत् पञ्चगव्येन सद्योजातेन सज्जलैः ।
मन्त्रस्तु- ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः ।
भवे भवे नातिभवे भजस्व माम् । भवोद्भवाय नमः ।
ङेन्तेन पुनराद्येन नमोऽन्तेन क्रमाद् यजेत् ।।35।।
चन्दनागुरु-गन्धाद्यैर्वामदेवेन घर्षयेत् ।

ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः ।

धूपयेत् तामघोरेण लेपयेत् पुरुषेण वै ।।36।।
ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोर घोरतरेभ्यः ।
सर्वतः शर्व सर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः ।

यह माला गोपुच्छ के समान अर्थात् सर्पाकृति होवे । इसके अग्रभाग में इसके समान-जातीय एक रुद्राक्ष को मेरु रूप में गूँथे ।।33।।

एक एक मणि के मध्य में ब्रह्म ग्रन्थि की रचना करे, इस प्रकार से जपमाला बनाकर, उसके बाद संस्कार आरम्भ करें ।।34।।

पञ्चगव्य एवं शुद्धजल के द्वारा सद्योजात मन्त्र से सम्पूर्ण माला का क्षालन (धोवन) करे । वह सद्योजातमन्त्र इसप्रकार है – 'ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः । भवे भवे नातिभवे भजस्व माम् । भवोद्भवाय नमः ।' चतुर्थी विभक्त्यन्त नमोऽन्त आद्य मन्त्र के द्वारा क्रमशः पूजा करें ।।35।।

वामदेव-मन्त्र से चन्दन, अगुरु गन्ध कर्पूर के द्वारा उस माला का घर्षण करे । वामदेव-मन्त्र इस प्रकार है – 'ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलाय नमो बल प्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः ।'

अघोर-मन्त्र के द्वारा उस माला को धूपित (धूप के धूम से सुवासित) करे । अघोरमन्त्र इस प्रकार है – 'ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोर घोरतरेभ्यः सर्वतः

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ।

मन्त्रयेत् पञ्चमेनैव प्रत्येकन्तु शतं शतम् ।
प्रत्येकं मन्त्रयेन्मन्त्री पञ्चमेन सकृत् सकृत् ॥37॥
प्रणवाद्यो महामन्त्रः सदाशिव इति प्रिये ।
मेरुञ्च पञ्चमेनैव ततो मन्त्रेण मन्त्रयेत् ॥38॥

ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा । शिवो मे अस्तु सदाशिवोम् ।

संस्कृत्यैवं बुधो मालां तत्प्राणांस्तत्र स्थापयेत् ।
मूलमन्त्रेण देवेशि ! सम्पूज्य भक्तिभावतः ॥39॥
सम्पूज्य देवं तद्धस्ताद् गृह्णीयादक्ष-मालिकाम् ।
अशुचिर्न स्पृशेदेनां करभ्रष्टां न कारयेत् ॥40॥

शर्व सर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः ।' अघोरमन्त्र के द्वारा, माला में चन्दन का लेपन करें ।।36।।

तत्पुरुष-मन्त्र इस प्रकार है — 'ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ।'

पञ्चम ईशानमन्त्र के द्वारा माला के प्रत्येक मणि को सौ-सौ बार अभिमन्त्रित करें, अथवा साधक माला के प्रत्येक मणि को एक-एक बार ईशान-मन्त्र के द्वारा अभिमन्त्रित करें ।।37।।

पहले प्रणव एवं अन्त में सदाशिव — इस क्रम से यह महामन्त्र गठित होवे । पञ्चम ईशानमन्त्र के द्वारा मेरु को भी उसी प्रकार (प्रत्येक को एक-एक बार) अभिमन्त्रित करें ।।38।।

ईशानमन्त्र इस प्रकार है — 'ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा । शिवो मे अस्तु सदाशिवोम् ।'

पण्डित साधक इस प्रकार माला का संस्कार कर, उसके प्राणों को उस स्थान पर स्थापित करे अर्थात् उसकी प्राणप्रतिष्ठा करे । हे देवेशि ! इसके बाद भक्तिभाव से मूलमन्त्र के द्वारा पूजा करें ।।39।।

गुरुदेव की पूजा कर, उनके हाथ से अक्षमाला को ग्रहण करे । अशुचि रहने पर इस माला को स्पर्श न करे । (जपकाल में) इस माला को हस्तच्युत न करें ।।40।।

अङ्गुष्ठस्थामक्षमालां चालयेन्मध्यमाग्रतः ।
तर्जन्यां न स्पृशेदेनां गुरोरपि न दर्शयेत् ॥41॥
भुजौ मुक्तौ तथाकृष्टौ मध्यमायां जपेत् सुधीः ।
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यान्तु जपेद् वश्ये तु कर्मणि ॥42॥
जपान्ते तु च मालां वै पूजयित्वा च पोषयेत् ।
जपकाले तु गोप्तव्या जपमाला तु सा शुभा ।
समन्त्रामक्षमालाञ्च गुरोरपि न दर्शयेत् ॥43॥
गुरुं प्रकाशयेद् विद्वान् न तु मन्त्रं कदाचन ।
अक्षमालाञ्च विद्याञ्च न कदाचित् प्रकाशयेत् ॥44॥
भूत-राक्षस-वेताला गन्धर्वाः सिद्धचारणाः ।
हरन्ति प्रकटात् सिद्धिं तस्माद् गुप्तिं सदा कुरु ॥45॥

अङ्गुष्ठाङ्गुलिस्थित अक्षमाला को मध्यमाङ्गुलि के अग्रभाग के द्वारा चालित करें। तर्जनी के द्वारा इसे स्पर्श न करें। गुरु को भी इसे न दिखावें ॥41॥

साधक बाहुद्वय को देह से मुक्त एवं परस्पर संपृक्त कर मध्यमाङ्गुलि में जप करें। वशीकरण कार्य में अङ्गुष्ठ एवं अनामिका के द्वारा जप करें ॥42॥

जप के अन्त में माला की पूजा कर, उसका पोषण (रक्षा) करें अर्थात् यत्न के साथ पवित्र स्थान में रखें। इस शुभ जपमाला को जपकाल में गोपन कर रखें। गुरु के समक्ष भी मन्त्र के साथ अक्षमाला को न दिखावें ॥43॥

विद्वान् साधक गुरु को अर्थात् गुरु के नाम को प्रकट कर सकता है, किन्तु कदापि मन्त्र को प्रकट न करें। अक्षमाला एवं इष्टमन्त्र को कदापि प्रकट न करें ॥44॥

माला का प्रकाशन (=प्रकट होना) होने पर, भूत, राक्षस, वेताल, गन्धर्व, सिद्ध एवं चारणगण सिद्धि का हरण कर लेते हैं। अतः सर्वदा माला को गोपन करें ॥45॥

जीर्णे सूत्रे पुनः सूत्रं ग्रथयित्वा शतं जपेत् ।
प्रमादात् पतिताद्धस्ताद् शतमष्टोत्तरं जपेत् ।
भ्रमन्निषिद्धसंस्पर्शे क्षालयित्वा च पूजयेत् ॥46॥

जपमाला मया देवि ! कथिता भुवि दुर्लभा ।
सदा गोप्या प्रयत्नेन यदि त्वं मम वल्लभा ॥47॥

इति मुण्डमालातन्त्रे
द्वितीयः पटलः समाप्तः ॥2॥

माला का सूत्र जीर्ण हो जाने पर, पुनः नूतन सूत्र में माला को गूँथकर, शतबार मन्त्र जप करे। प्रमादवश पतित व्यक्ति के हाथ से माला को ग्रहण करने पर, एक सौ आठ बार मन्त्र जप करे। भ्रमण करते-करते यदि निषिद्ध वस्तु का सम्पर्श हो जाय तो, माला को धोकर, पूजा करे ॥46॥

हे देवि ! इस भूमण्डल पर दुर्लभ जपमाला के विवरण को मैंने बता दिया है। यदि आप मेरी पत्नी हैं, तो आप इसे यत्नपूर्वक गोपन करें ॥47॥

मुण्डमालातन्त्र के द्वितीय पटल का
अनुवाद समाप्त ॥2॥

तृतीयः पटलः

श्रीदेव्युवाच –

स्थानासनं देवदेव ! कथयानन्द-सुन्दर ! ।
सदाचार्यो विना येन सर्वमन्त्राः सुसिद्धगाः ।।1।।

ईश्वर उवाच –

नदीतीरे बिल्वमूले श्मशाने शून्यवेश्मनि ।
एकलिङ्गे पर्वते वा देवागारे चतुष्पथे ।।2।।
शवस्योपरि मुण्डे वा जले वा कण्ठपूरिते ।
संग्रामभूमौ योनौ तु स्थले वा विजने वने ।।3।।
यत्र कुत्र स्थले रम्ये यत्र वा स्यान्मनोरमम् ।
स्थानं ते कथितं देवि ! आसनं कथ्यतेऽधुना ।।4।।
स्तम्भने गजचर्माथ मारणे माहिषं तथा ।
मेषचर्म तथोच्चाटे खड्गीयं वश्यकर्मणि ।।5।।

श्रीदेवी ने कहा – हे देवदेव ! हे आनन्दसुन्दर ! स्थान एवं आसन के सम्बन्ध में मुझे बतायें, जिससे सद्गुरु या सदाचार्य के बिना ही समस्त मन्त्र सुसिद्धगामी अर्थात् सुसिद्ध हो और अनुकूल हो सकें ।।1।।

ईश्वर ने कहा – नदीतट, बिल्वमूल, श्मशान, शून्यगृह (जनशून्य एवं परित्यक्त गृह), एकलिङ्ग युक्त, पर्वत, देवालय तथा चतुष्पथ में (जप प्रशस्त है) ।।2।।

शव के ऊपर या मुण्ड पर, कण्ठपर्यन्त जल में, युद्धभूमि में, योनिमण्डल में या विजन वन में (जप प्रशस्त है) ।।3।।

अथवा जिस किसी भी रम्यस्थान में या मनोरम स्थान में (जप प्रशस्त है)। हे देवि ! आपको जप के स्थानों को बता दिया। अब आसन को बता रहा हूँ ।।4।।

स्तम्भन के लिए गजचर्म का आसन, मारण के लिए महिषचर्म का आसन, उच्चाटन के लिए मेषचर्म का आसन, वशीकरण के लिए गैंडे के चर्म का आसन प्रशस्त कहे गये हैं ।।5।।

विद्वेषे जाम्बुकं प्रोक्तं भवेद् गोचर्म शान्तिके।
व्याघ्राजिने सर्वसिद्धिर्ज्ञानसिद्धिर्मृगाजिने ।।6।।
वस्त्रासनं रोगहरं वेत्रजं विपुलश्रियम्।
कौषेयं पुष्टिकार्ये च कम्बलं दुःखमोचनम् ।।7।।

निन्दितासनमाह —

वंशासने च दारिद्र्यं दौर्भाग्यं दारुजासने।
धरण्यां दुःख-सम्भूतिः पाषाणे रोगसम्भवः ।।
तृणासने यशोहानिरेतत् साधारणं स्मृतम् ।।8।।
मृदुकम्बलमास्तीर्णं संग्रामे पतितं हि तत्।
जन्तुव्यापादितं वापि मृतं वा नवमासकम् ।।9।।
गर्भच्युत-त्वचं वापि नारीणां योनिजां त्वचम्।
सर्वसिद्धिप्रदं देवि! सर्वभोग-समृद्धिदम् ।।
त्वचं वा योनिसंस्था वा कुर्याद् वीरो व्रतासनम् ।।10।।

विद्वेष ([illegible] करने) के लिए शृगाल चर्म का आसन एवं शान्ति कार्य में गो चर्म का आसन प्रशस्त है, व्याघ्र चर्म के आसन से समस्त प्रकार की सिद्धि होती है। मृगचर्म के आसन से ज्ञान-सिद्धि होती है ।।6।।

वस्त्र का आसन रोगहर है एवं बेंत का आसन विपुल सम्पत्प्रद है। पुष्टिकार्य के लिए रेशम का आसन प्रशस्त है। कम्बलासन दुःख का मोचन करता है ।।7।।

निन्दित आसनों को बताया जा रहा है — बाँस के आसन से दारिद्र्य होता है, काष्ठनिर्मित आसन से दुर्भाग्य होता है, मृत्तिकासन से दुःख वृद्धि होती है एवं पाषाण निर्मित आसन से रोग उत्पन्न होता है एवं तृण निर्मित आसन से यश की हानि होती है। इसे साधारण रूप से कहा गया है ।।8।।

हे देवि! आस्तृत मृदु कम्बलासन, संग्राम में पतित मृदु कम्बलासन, जन्तु के द्वारा मार दिये प्राणी के चर्म का आसन, नवम मास में मृत प्राणी के चर्म का आसन, गर्भच्युत प्राणी के त्वक् के द्वारा निर्मित आसन, नारियों के [illegible] त्वक् का आसन — सर्वसिद्धिप्रद एवं सर्वभोग समृद्धिप्रद है। [illegible] को अथवा योनिस्थित त्वक् को अवश्य ही आसन बनावे ।।9-10।।

श्मशानकाष्ठघटितं पीठं वा यज्ञदारुजम् ।
न दीक्षितो विशेज् जातु कृष्णामागसने गृही ॥11॥
उदासीन-वनासीन-स्नातक-ब्रह्मचारिणः ।
कुशाजिनाम्बरैः कार्यं चतुरस्त्रं समन्ततः ॥12॥
एकहस्तं द्विहस्तं वा चतुरङ्गुलमुच्छ्रितम् ।
विशुद्धे आसने कुर्याद् संस्कार-पूजनं बुधः ॥13॥
भद्रासनं रोगहरं योगदं कौर्ममासनम् ।
पद्मासनमिति प्राहुः सर्वैश्वर्य फलप्रदम् ॥14॥
पद्मासनेन देवेशि ! पातालगृहसंस्थितः ।
रात्रौ च योऽर्चयेद् देवीं धनवान् सूतवान् भवेत् ॥15॥
पीठानां देवि ! सर्वेषां चतुर्द्धा पीठमुत्तमम् ।
उड्डीयानं महापीठं पीठानां पीठमुत्तमम् ॥
जालन्धरं महापीठं तथा पुनश्च सम्मतम् ॥16॥

दीक्षित गृही श्मशानकाष्ठ से निर्मित पीढ़े (=काष्ठासन) पर या यज्ञीय दारु-निर्मित पीढ़े पर एवं कृष्णसार मृग के आसन पर कदापि उपवेशन न करें ।।11।।

उदासीन (=वैराग्यवान्), वनवासी, स्नातक एवं ब्रह्मचारिगण कुश, चर्म एवं वस्त्र के द्वारा चतुरस्र एक हस्त या दो हस्त दीर्घ, चार अंगुल उच्च आसन बनावें । साधक विशुद्ध आसन पर संस्कार एवं पूजा करें ।।12-13।।

भद्रासन रोगहर है, कौर्मासन योगप्रद है, पद्मासन सर्वैश्वर्य फलप्रद है— ऐसा योगिगण कहते हैं ।।14।।

हे देवेशि ! जो पातालगृह में पद्मासन पर उपवेशन कर देवी की अर्चना करते हैं, वे धनवान् एवं पुत्रवान् बन जाते हैं ।।15।।

हे देवि ! समस्त पीठों मे चार प्रकार के पीठ उत्तम हैं । उड्डीयान महापीठ, पीठों मे उत्तम पीठ है । जालन्धर महापीठ उसी प्रकार उत्तम पीठ है । यह समस्त योगियों का सम्मत तथ्य है ।।16।।

पञ्चाशत्-पीठमध्ये तु कामरूपं महाफलम्।
जपपूजा-बलिस्तत्र देवि ! लक्षगुणो भवेत् ॥17॥
बहुधा कथ्यते देवि ! किं तस्य गुणवर्णनम्।
योनिरूपेण मन्त्राग्ने सुखं कोटिगुणान्विताः ॥18॥

इति मुण्डमालातन्त्रे तृतीयः पटलः ॥3॥

पञ्चाशत (50) पीठों में कामरूप पीठ महाफलप्रद है। हे देवि ! वहाँ पर किया गया जप, पूजा एवं बलि लक्षगुण अधिक फल प्रदान करता है ॥17॥

हे देवि ! उसके गुणों की और क्या वर्णन करें ? अनेक प्रकार वे (गुण) कहे गये हैं। वहाँ पर वह मन्त्र एवं देवतागण कोटिगुणान्वित होकर सुखपूर्वक (अवस्थित) हैं ॥18॥

मुण्डमाला तन्त्र के तृतीय पटल का
अनुवाद समाप्त ॥3॥

चतुर्थः पटलः

श्रीदेव्युवाच –

केवलं बलिदानेन तुष्टा भवति चण्डिका।
कथितं पूर्वमस्पष्टं प्रकाशं कुरु शङ्कर! ॥1॥

श्रीईश्वर उवाच –

अत्यन्तगुह्यं देवेशि! विधानं बलिपूजयोः।
कथयामि वरारोहे! सुस्थिरा भव सर्वदा ॥2॥
दधि क्षीरं घृतनान्नं पायसं शर्करान्वितम्।
पायसं क्षौद्रं मांसञ्च नारिकेल-गतोदकम् ॥3॥
शर्करं मेषखण्डञ्च आर्द्रकं सहशर्करम्।
रम्भाफलं लड्डुकञ्च भर्जितान्नञ्च पिष्टकम् ॥4॥
शालमत्स्यञ्च पाठीनं शकुलं चेटकं तथा।
मद्गुरञ्च बलिं दद्याद् मांसं महिष-मेषकम् ॥5॥
पक्षिमांसं महादेवि! डिम्बं नाना-समुद्भवम्।
कृष्णच्छागं महामांस-गोधिकां हरिणीं तथा ॥6॥

श्रीदेवी ने कहा – [illegible] है – इस बात को [illegible] हे शङ्कर! [illegible] स्पष्ट-रूप से बतायें ॥1॥

श्रीईश्वर ने कहा – हे देवेशि! [illegible] हे वरारोहे! मैं [illegible] सर्वदा स्थिर होकर रहें ॥2॥

[illegible] ॥3-5॥

हे महादेवि! पक्षि के मांस [illegible] डिम्बों को, कृष्णच्छाग को [illegible] हरिणी को [illegible] में प्रदान करें ॥6॥

जलजं मत्स्य-मांसं च गण्डकी-मांसमेव च ।
नानाव्यञ्जन दुग्धानि व्यञ्जनानि मधूनि च ॥7॥
ईषद्-दग्धं घृतेनाक्तं निशायां दिवसेऽपि वा ।
बलिं दद्याद् विशेषेण कृष्णपक्षे शुभे दिने ॥8॥
छागे दत्ते भवेद् वाग्मी मेषे दत्ते कविर्भवेत् ।
महिषे धनवृद्धिः स्याद् मृगे मोक्षफलं भवेत् ॥9॥
दत्ते पक्षिणि ऋद्धिः स्याद् गोधिकायां महाफलम् ।
नरे दत्ते महर्द्धिः स्याद् यतः सिद्धिरनुत्तमा ॥10॥
ललाट-हस्त-हृदय-शिरो-भ्रूमध्य-देशतः ।
स्वहृदो-रुधिरे दत्ते रुद्रदेह इवापरः ॥11॥
चण्डाल-बलिदानेन महासिद्धिः प्रजायते ।
मृगदानेन देवेशि ! महायोगीश्वरो भवेत् ॥12॥

जलज मत्स्य एवं मांस को, गण्डकी के मांस को, नाना व्यञ्जनों के दुग्धादि को, नाना व्यञ्जनों को एवं नाना प्रकार के मधुओं को बलि रूप में प्रदान करें ॥7॥

रात्रि में, दिन में एवं विशेषतः कृष्णपक्ष के शुभ दिन में, ईषत् रूप में दग्ध बलि-द्रव्य को घृत के द्वारा अभ्यक्त करके बलि प्रदान करें ॥8॥

छाग की बलि देने पर वाग्मी बनता है, मेष की बलि देने पर कवि बनता है, महिष की बलि देने पर धन की वृद्धि होती है। मृग की बलि देने पर मोक्ष-फल का लाभ होता है ॥9॥

पक्षी की बलि देने पर समृद्धि आती है, गोधिका की बलि देने पर महाफल की प्राप्ति होती है। मनुष्य की बलि देने पर महासमृद्धि आती है। इससे (— इस नर बलि से) अति उत्तम सिद्धि की प्राप्ति होती है ॥10॥

नर के ललाटदेश, हस्तदेश, हृदयदेश, मस्तकदेश, भ्रूमध्यदेश एवं अपने हृदयदेश में रुधिर की बलि देने पर साधक द्वितीय रुद्र-देह के समान बन जाता है ॥11॥

चाण्डाल की बलि देने से महासिद्धि उत्पन्न होती है। हे देवेशि! मृगदान के द्वारा महायोगीश्वर बन जाता है ॥12॥

सुरा ते विविधा प्रोक्ता स्फाटिकी डाकिनी तथा ।
काञ्चिकी च महादेवि ! कथिता भुवि दुर्लभा ॥13॥
स्फाटिकी-दानमात्रेण धनवृद्धिरनुत्तमा ।
डाकिनी-दानयोगेन सर्ववश्यो भवेद् ध्रुवम् ॥14॥
काञ्चिकी-सुरया देवि ! योऽर्चयेत् परमेश्वरीम् ।
गुटिकाञ्जन-स्तम्भादि-मारणोच्चाटनादिभिः ।
महासिद्धीश्वरो भूत्वा वसेत् कल्पायुतं दिवि ॥15॥
अर्घ्योदके महेशानि ! महासिद्धिरनुत्तमा ।
रक्तचन्दन-बिल्वादि-जवाकुसुम-बर्बरैः ।
अर्घ्यं दत्त्वा महेशानि ! सर्वकामार्थसाधनम् ॥16॥
सुरया चार्घ्यदानेन योगिनीनां प्रियो भवेत् ।
पुरः पात्रं घटस्यान्ते तदन्ते भोज्यपात्रकम् ॥17॥
तदन्ते वीरपात्रञ्च बलेः पात्रं तदन्तिके ।
पाद्यार्घ्याचमनीयानां पात्राणि स्थापयेद् बुधः ॥18॥

आपसे मैंने बहुविध सुरा के विषय में बताया है । हे महादेवि ! इस पृथिवी पर स्फाटिकी, डाकिनी एवं काञ्चिकी सुरा दुर्लभ है – ऐसा कहा गया है ।।13।।

स्फाटिकी सुरा के दान करने मात्र से अत्युत्तम धन-वृद्धि होती है । डाकिनी सुरा के दान करने मात्र से समस्त जीव निश्चय ही वश्य बन जाते हैं ।।14।।

हे देवि ! जो साधक काञ्चिकी सुरा के द्वारा परमेश्वरी की अर्चना करता है, वह गुटिकाञ्जन स्तम्भादि एवं मारण उच्चाटनादि के साथ महासिद्धि का अधिपति बनकर दस हजार कल्पकाल पर्यन्त स्वर्ग में वास करता है ।।15।।

हे महेशानि ! अर्घ्योदक से अत्युत्तम महासिद्धि होती है । रक्तचन्दन, बिल्वादि फल, जवाकुसुम एवं बर्बरा के द्वारा अर्घ्य देने से समस्त काम एवं अर्थ की सिद्धि होती है ।।16।।

सुरा के द्वारा अर्घ्यदान देने पर (साधक) योगिनीगणों का प्रिय बन जाता है । घट के शेषभाग में (प्रान्तभाग में), सम्मुख में पात्र को स्थापित करें । उसके प्रान्तभाग में भोज्यपात्र को स्थापित करें ।।17।।

उसके प्रान्त में वीरपात्र, उसके प्रान्त में बलि के पात्र को स्थापित करे । साधक पाद्य, अर्घ्य एवं आचमनीयों के पात्रों को स्थापित करें ।।18।।

महायोगी भवेद् देवि! पीठ-प्रक्षालितैर्जलैः।
स्वयम्भूकुसुमे दत्ते भवेत् षट्कर्मभाजनम् ॥19॥
मृशीतलजलैरर्घ्यं कस्तुरी-कुसुमान्वितैः।
कुण्डगोलोत्थबीजैर्वा सर्वसिद्धिश्वरो भवेत् ॥20॥
सधवारति-सम्भूतं कुण्डमुत्तमभूतिदम्।
विधवारति-सम्भूतं गोलमृद्धिप्रदं भुवि ॥21॥
मूलमन्त्रेण देवेशि! आकृष्य निर्भयः शुचिः।
अर्घ्यं दद्याद् विशेषेण चक्रवातेन पूजिता ॥22॥
स्वयम्भूकुसुमं देवि! त्रिविधं भुवि जायते।
आषोडशादनूढ़ा या उत्तमा सर्वसिद्धिदा ॥23॥
रजोयोगवशादन्या मध्यमा सुखदायिनी।
बलात्कारेण देवेशि! अधमा भोगवर्द्धिनी ॥24॥
कुमारीपूजने शक्तो नारीं स्वप्नेऽपि न स्मरेत्।
आकृष्य बद्धयोगेन गोलोऽथ पुष्पकं न्यसेत् ॥25॥

हे देवि! पीठ-प्रक्षालित जल के द्वारा अर्घ्य देने पर महायोगी बनता है। स्वयम्भूकुसुम का दान करने पर, षट्-कर्म-साधन का अधिकारी बन जाता है ।।19।।

कस्तूरी एवं कुङ्कुमयुक्त मृशीतल जल के द्वारा अथवा कुण्ड तथा गोल के बीज के द्वारा अर्घ्य देने पर, सर्वसिद्धि का अधिपति बन जाता है ।।20।।

साधवा के साथ रति-सम्भूत कुण्ड उत्तम ऐश्वर्यप्रद है एवं विधवा के साथ रति-सम्भूत गोल इस पृथिवी पर समृद्धि-प्रद है – ऐसा जाने ।।21।।

हे देवेशि! शुचि साधक निर्भय बनकर मूलमन्त्र के द्वारा बीज का आकर्षण कर, अर्घ्य का दान करे। देवी विशेषरूप से चक्रवात के द्वारा पूजिता होने पर प्रीता बन जाती है ।।22।।

हे देवि! इस पृथ्वी पर स्वयम्भूकुसुम तीन प्रकार का होता है। षोडश वर्ष पर्यन्त अनूढ़ा कन्या उत्तमा एवं सर्वसिद्धिप्रदा है ।।23।।

अन्या स्त्री रजो-योगवश, मध्यमा होने पर भी सुखदायिनी है। हे देवेशि! अन्या स्त्री बलात्कार के द्वारा अधमा होने पर भी भोगवर्द्धिनी है ।।24।।

कुमारी पूजन में समर्थ व्यक्ति स्वप्न में भी नारी का (=अन्य स्त्री का) स्मरण न करे। अनन्तर गोल बद्ध-योग के द्वारा पुष्प (स्त्रीरजः) को आकर्षित करके स्थापित करें ।।25।।

शुद्धं कुर्यात् प्रयत्नेन निर्भयः शुचिमानसः ।
ताम्रपात्रे कपाले वा श्मशानकाष्ठ-निर्मिते ॥26॥
शनि-भौम-दिने वापि शरीरे मृतसम्भवे ।
स्वर्णे रौप्येऽथ लोहे वा चक्रं कार्यं यथाविधि ।
पुष्पान्यपि तथा दद्याद् रक्त-कृष्ण-सितानि च ॥27॥
श्वेतरक्तं जवापुष्पं करवीरं तथा प्रिये ! ।
तगरं मालती जाती मेवन्ती यूथिका तथा ॥28॥
धूस्तुराशोकवकुलाः श्वेतकृष्णापराजिताः ।
वकपुष्पं विल्वपत्रं चम्पकं नागकेशरम् ॥29॥
मल्लिका झिण्टिका काञ्ची रक्तं यत् परिकीर्तितम् ।
अर्कपुष्पं जवापुष्पं वर्वरञ्च प्रियंवदे ॥30॥
अष्टम्यान्त विशेषेण तुष्टा भवति पार्वती ।
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां नाना पुष्पैः समर्चयेत् ॥31॥

साधक निर्भय बनकर पवित्र मन से यत्नपूर्वक इस पुष्प को शुद्ध करें। ताम्रपात्र में, नर-कपाल में, श्मशान काष्ठ से निर्मित पात्र में, मृतशरीर में, स्वर्णपात्र में, रौप्यपात्र में अथवा लौहपात्र में शनिवार या मङ्गलवार को चक्र की रचना करनी चाहिए। रक्त, कृष्ण एवं शुक्ल पुष्पों का आहरण कर, यथाविधान से दान करें ॥26-27॥

हे प्रिये ! हे प्रियम्वदे ! श्वेत एवं रक्त जवापुष्प, इसी प्रकार श्वेत एवं रक्त करवीर, तगर, मालती, जाति, मेवन्ती, यूथिका (जूही), धूस्तुर, अशोक, बकुल, श्वेत एवं कृष्ण अपराजिता, वक-पुष्प, बिल्वपत्र, चम्पा, नागकेशर, [illegible], काञ्ची, झिण्टिका, रक्तवर्ण पुष्प, अर्क-पुष्प, जवापुष्प एवं बर्बर पुष्प का आहरण करें ॥28-30॥

अष्टमी तिथि में इन समस्त पुष्पों का आहरण करने पर उसके प्रति पार्वती [illegible] से सन्तुष्ट बन जाती हैं। अष्टमी एवं चतुर्दशी में नाना पुष्पों के द्वारा पार्वती की अर्चना करें ॥31॥

[illegible] पुष्प के द्वारा समस्त देवता सन्तुष्ट बन जाते हैं। कालिका कुसुम [illegible] शुक्ला होने पर भी वरदा बन जाती है ॥32॥

रक्तपुष्पेण रक्तेन सन्तुष्टाः सर्वदेवताः ।
कृष्णा वा यदि वा शुक्ला कालिका वरदा भवेत् ॥32॥
श्मशानधूस्तुरेणैव तुष्टा मधुमती परा ।
श्मशानजात-पुष्पेण सन्तुष्टा कालिका परा ॥33॥
वन्यपुष्पैश्च विविधैः सन्तुष्टा पार्वती परा ।
आमलक्याम्त् पत्रेण तुष्टा पुष्पेण पार्वती ॥34॥
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां नानापुष्पैः सदार्चयेत् ।
श्मशाने रात्रिशेषे च शनि-भौमदिने निशि ॥35॥

इति मुण्डमालातन्त्रे चतुर्थः पटलः ॥4॥

श्मशान-धत्तूर पुष्प के द्वारा मधुमती विशेष रूप से सन्तुष्टा बन जाती है। श्मशान-जात पुष्प के द्वारा कालिका विशेष रूप से सन्तुष्टा बन जाती है ॥33॥

विविध वन्य पुष्पों के द्वारा पार्वती विशेष रूप से सन्तुष्टा बन जाती है। पार्वती आमलक्य के पत्र एवं पुष्प के द्वारा तुष्टा बन जाती है ॥34॥

अष्टमी एवं चतुर्दशी तिथि में शनि एवं मङ्गलवार को, श्मशान में, रात्रि में या रात्रि के अन्त में सर्वदा अर्चना करें ॥35॥

मुण्डमालातन्त्र के चतुर्थ पटल का
अनुवाद समाप्त ॥4॥

पञ्चमः पटलः

श्रीदेव्युवाच —

रहस्यातिरहस्यं मे पुरश्चर्याविधि प्रभो ! ।
वदस्व यदनुष्ठानात् सर्वकामा भवन्ति हि ।।1।।

श्रीईश्वर उवाच —

गृहीत्वा सद्गुरोर्दीक्षां शुभकाले दिवानिशि ।
पूर्वोक्ति-स्थानमासाद्य जपपूजां समाश्रयेत् ।।2।।
अधमो वैष्णवः प्रोक्तो मध्यमः शैवदीक्षितः ।
परया दीक्षितो यो वै स एव परमो गुरुः ।।3।।
चतुर्दश-सहस्राणि सेविनां ह्यधिराजते ।
ततो भवति देवेशि ! परा-पूजारतः पुमान् ।।4।।
कायेन मनसा वाचा सुवर्णरजतादिभिः ।
सन्तोष्य परया भक्त्या गुरुदीक्षां समाश्रयेत् ।।5।।
प्रातःकाले समारभ्य जपेन्मध्यं दिनावधि ।
प्रथमेऽहनि यज् जप्तं तज् जप्तव्यं दिने दिने ।।6।।

श्रीदेवी ने कहा — हे प्रभो ! जिसके अनुष्ठान से साधकगण सर्वकाम को प्राप्त हो जाते हैं, वह पुरश्चरण विधि रहस्य से भी अतिरहस्यात्मक है । इसे हमें बतावें ।।1।।

श्रीईश्वर ने कहा — दिन में या रात्रि में, शुभकाल में, सदगुरु के निकट से दीक्षा लेकर, पूर्वोक्त किसी स्थान को ग्रहण कर, जप एवं पूजा प्रारम्भ करे ।।2।।

वैष्णव गुरु अधम है, शैव दीक्षित गुरु मध्यम है, जो परा विद्या मे दीक्षित हैं, वह गुरु ही क्षेष्ठ हैं ।।3।।

चौदह हजार दिन पर्यन्त सेवायुक्त होकर अवस्थान करें । हे देवेशि ! उसके बाद मानव परा-देवी की पूजा में रत हो जावें ।।4।।

शरीर, मनः एवं वाक्य के द्वारा परम भक्तिभाव से, सुवर्ण एवं रजत प्रभृति द्रव्यो के द्वारा गुरु को सन्तुष्ट कर, गुरु प्रदत्त दीक्षा का आश्रय ले ।।5।।

प्रातःकाल से आरम्भ कर मध्याह्न पर्यन्त जप करे । प्रथम दिन जितना जप करें, प्रत्येक दिन उतना ही जप करें ।।6।।

न्यूनाधिकं न जप्तव्यमासमाप्तं सदा जपेत्।
गते प्रथमयामे तु तृतीय-प्रहरावधि ॥7॥
निशायाञ्च प्रजप्तव्यं रात्रिशेषे जपेन्न च।
हविष्यं भक्षयेन्नित्यमेकवारं सुसंयतः ॥8॥
लघ्वाहारं प्रकुर्वीत युवती-पूजने रतः।
स्वस्त्रियमन्यस्त्रियं वापि पूजयेत् सर्वपर्वसु।
नाधमे सङ्गतिः कार्या सर्वप्राणिहिते रतः॥9॥
यस्य यावान् जपः प्रोक्तस्तद्दशांशमनुक्रमात्।
तत्तद्-द्रव्यैर्जपस्यान्ते होमं कुर्याद् दिने दिने ॥10॥
होमस्य च दशांशेन तर्पणं प्रोक्तमेव च।
तर्पणस्य दशांशेन शिरोमार्जनमिष्यते ॥11॥
तद्दशांशेन विप्रेन्द्रान् कुर्वीत कुलकन्यकाः।
संभोजयेत् प्रीतियुक्तै द्रव्यैर्नानाविधैरपि ॥12॥

समाप्ति पर्यन्त, किसी दिन अधिक भी जप न करें, कम भी जप न करें। सर्वदा जप करें। प्रथम प्रहर अतीत हो जाने पर, तृतीय प्रहर पर्यन्त जप करें ॥7॥

रात्रि में जप करें, रात्रि-शेष में जप न करें। सुसंयत होकर नित्य एकबार हविष्य का भक्षण करें ॥8॥

युवती (कुमारी) पूजन में रत होकर, लघु आहार करें। समस्त पर्व-दिनों में अपनी स्त्री या दूसरी स्त्री की पूजा करें। समस्त प्राणियो के हित में रत रहकर, कादापि अधम के साथ सम्बन्ध न करें ॥9॥

जिन (देवता) के लिए जितने परिमाण में जप को कहा गया है, उसके दशांश-क्रम से उन-उन द्रव्य (विहित द्रव्य) के द्वारा जप के अन्त में प्रति दिन होम करें ॥10॥

होम का दशांश तर्पण करने के लिए कहा गया है। तर्पण के दशांश के द्वारा शिरोमार्जन (अभिषेक) करने के लिए कहा गया है ॥11॥

उसके दशांश संख्या में, श्रेष्ठ ब्राह्मणों को एवं कुलकन्याओं को प्रीतियुक्त बनकर, नानाविध द्रव्यों के द्वारा भोजन करावे ॥12॥

योनिपीठं महापीठं कामपीठं तथा परम् ।
तयोरेकतरे पूजां रुद्रदेह इव परः ॥24॥
तीर्थे तिथिविशेषे च ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
गुरोरनुग्रहे चैव दीक्षाकालः शुभः स्मृतः ॥25॥

इति मुण्डमालातन्त्रे पञ्चमः पटलः ॥5॥

महापीठ योनिपीठ एवं कामपीठ को अति श्रेष्ठ जाने । इन उभय में से एक की पूजा करे । इससे रुद्र देह के समान श्रेष्ठ बन जाता है ॥24॥

तीर्थ मे, तिथिविशेष में, चन्द्र एवं सूर्य के ग्रहण काल मे दीक्षाकाल शुभ है । गुरु के अनुग्रह से भी दीक्षाकाल शुभ हो जाता है ॥25॥

मुण्डमालतन्त्र के पञ्चम पटल का
अनुवाद समाप्त ॥5॥

षष्ठः पटलः

अथ देवि ! प्रवक्ष्यामि गुप्तां त्रिभुवनेश्वरीम् ।
यामाराध्य पुरा सर्वे भूतिभाजोऽभवन् सुराः ।।1।।
ब्रह्मा रुद्रः सहस्राक्षो रमा-शिव-मनोभवा ।
शक्तिर्माया महेशानि ! विद्या वस्वक्षरा मता ।।2।।
ऋषिर्ब्रह्मा विराट् छन्दो देवता लोकपावनी ।
महामायेति विख्याता बीजं लक्ष्मीः प्रकीर्त्तिताः ।।3।।
माया शक्तिः कीलकञ्च शैवदेहमुदाहृतम् ।
षडङ्गानि ततः कुर्याद् माया दीर्घेण संयुता ।।4।।
ध्यानं देवि ! प्रवक्ष्यामि सर्वैश्वर्य-फलप्रदम् ।
विद्युत् पुञ्जनिभां देवीं रक्तपद्मासने स्थिताम् ।।5।।
त्रिनेत्रां दिग्भवावासां पाणिविंशतिशोभिताम् ।
पीत-रक्त-श्वेत-कृष्णा-धूम्र-पाटल-मौक्तिकम् ।।6।।
नील-पीत-विचित्राणि वर्णानि कथितानि वै ।
खड्ग-शूल-गदा-चक्र-शङ्ख-चाप शरानिति ।।7।।

हे देवि ! पूर्वकाल में समस्त देवतागण जिनकी आराधना करके ऐश्वर्यशाली बने थे । अनन्तर उन गुप्ता त्रिभुवनेश्वरी की कथा कहूँगा ।।1।।

ब्रह्मा (ॐ), रुद्र (ह), सहस्राक्ष (ल), रमा (श्री), शिव (ह), मनोभव (क्ली), शक्ति (क्ली), माया (ह्रीं)– हे महेशानि ! यह विद्या आठ अक्षर की है– ऐसा कहा गया है ।।2।।

इस मन्त्र के ऋषि हैं ब्रह्मा, छन्द है विराट्, देवता हैं लोकपावनी महामाया – ऐसा प्रसिद्धि है । लक्ष्मी बीज है – ऐसी कही गयी है ।।3।।

माया शक्ति है एवं शैवदेह कीलक है – ऐसा कहा गया है । उसके बाद दीर्घस्वरयुक्त माया के द्वारा षडङ्गन्यास करे ।।4।।

हे देवि ! सर्वैश्वर्य-फल-प्रद ध्यान को बता रहा हूँ । यह देवी विद्युत्पुञ्ज के समान कान्ति-विशिष्टा, रक्तपद्मासन पर उपविष्टा, त्रिनेत्रा, दिगम्बरी, विंशति बाहुओं के द्वारा शोभिता, रक्त, पीता, श्वेत, कृष्ण, धूम एवं पाटल मुक्ताओं से

कालरात्रिर्महारात्रि गायत्री च महाम्बिका ।
प्रकृतिर्विकृतिर्मेधा विश्वरूपाः क्रमादिमाः ॥14॥
महातत्त्वा प्रमत्ता च उन्मदा मन्दगामिनी ।
महाप्रह्लादा अनला पूजयेद् विधिना तथा ॥15॥
जयमुण्डां महोग्राञ्च भीमां भीमकपालिकाम् ।
अट्टहासिनीं निन्द्यां हर्षगदिहल्लां तथा ॥16॥
विकटा बहुरूपा च महारूपा महाप्रदा ।
घोररावा महानिन्द्या महामञ्जुलभाषिणी ।
सर्वदा सुन्दरी पूज्या अरण्यतः क्रमात् प्रिये ॥17॥
इन्द्राद्यस्ततः पूज्याः पूर्वादिदिग् विदिक्षु च ।
चतुर्द्वारे ततः पूज्या भगक्लिन्ना भगाक्षरा ।
भगदेवी भगाक्षी च विधिना वामवर्त्मना ॥18॥
एवं संपूज्य तां देवीं चतुर्लक्षं मनुं जपेत् ।
होमादि विधिना कुर्यात् दशांशात् क्रमतः प्रिये ॥19॥
अनया विद्यया देवि ! महासिद्धीश्वरो भवेत् ।
धनवान् पुत्रवान् राजा सुखी भोगी महाबलः ॥20॥

गायत्री, महाम्बिका, प्रकृति, विकृति, मेधा एवं विश्वरूपा - ये सभी क्रमशः पूज्य हैं ॥13-14॥

महातत्त्वा, प्रमत्ता, उन्मदा, मन्दगामिनी, महाप्रह्लादा, अनला - इन सभी की विधि के अनुसार पूजा करें ॥15॥

जयमुण्डा, अट्टहासिनी, अनिन्द्या, हर्षगद्गदहल्ला, महोग्रा, भीमा, भीमकपालिका की पूजा करें ॥16॥

हे प्रिये ! क्रम-क्रम से विकटा, बहुरूपा, महारूपा, महाप्रदा, घोररावा, महानिन्द्या, महामञ्जुलभाषिणी एवं सुन्दरी की सर्वदा पूजा करें ॥17॥

पूर्वादि दिशा एवं विदिशा समूह में इन्द्रादि दिक्पालगणों की पूजा करें । इसके बाद चार द्वारों में वामवर्त्म की विधि के अनुसार भगक्लिन्ना, भगाक्षरा, भगदेवी एवं भगाक्षी की पूजा करें ॥18॥

इस प्रकार उन देवी की पूजा कर, चार लाख मन्त्र जप करें । हे प्रिये ! यथाक्रम से दशांश परिमाण में विधिपूर्वक होमादि करें ॥19॥

हे देवि ! इस विद्या के द्वारा महासिद्धि के अधिपति बन जाते हैं । धनवान्, पुत्रवान्, सुखी, भोगी एवं महाबलशाली राजा बन जाते हैं ॥20॥

भुवनेशी भगवति वह्निजायान्तको मनुः ।
सप्तक्षारो महेशानि ! सर्वसिद्धफलप्रदः ॥21॥
स्वर्णपद्मनिभां देवीं सर्वालङ्कार-भूषिताम् ।
क्षौमवासां त्रिनयनां शैलसिंह-समाश्रिताम् ॥22॥
अथवा सिंहशैले च इन्द्रादिरथदेवताः ।
एवं ध्यात्वा जपेत् पूर्वं समस्तं हि समासतः ॥23॥
सर्वकालन्तु तज्जप्यं मन्त्रं सर्वसमृद्धिदम् ।
शिवो रामेण संयुक्तं श्रोत्रेण द्विनयं प्रिये ॥24॥
ब्रह्म मुखेन संयुक्तो द्विरावृत्तमनुक्रमात् ।
नयनेन समायुक्तः शत्रान्विततया गतः ॥25॥
हृदा-युक्तो मनुरयं सर्व-विद्या-फलप्रदः ।
बीजं शक्तिः कीलकञ्च आद्यन्त-मध्ययोगतः ॥26॥

एतावत्येव मातृका ॥

हे महेमशानि ! इन देवी की भुवनेशी (ह्रीं) भगवति वह्निजायान्तक (अन्त में 'स्वाहा' युक्त) – यह सप्ताक्षर मन्त्र सर्वसिद्धि-फलप्रदय है ॥21॥

देवी को स्वर्णपद्म के समान कान्ति विशिष्ट, सर्वालङ्कारभूषिता, क्षौमवस्त्रभूषिता, शैलसिंहसमासीना त्रिनयना रूप में ध्यान करें ॥22॥

अथवा, सिंहशैल पर इन्द्रादि रथ-देवतागणों का ध्यान करें। इस प्रकार ध्यान कर, संक्षेप में, पहले के समान समस्त जप करें ॥23॥

हे प्रिये ! सर्वसमृद्धिप्रद, सर्वकाल में जप्य इस मन्त्र का सर्वदा जप करें। शिव को राम के साथ संयुक्त करें एवं श्रोत्र के साथ द्विनय को संयुक्त करें ॥24॥

ब्रह्ममुख के साथ संयुक्त हैं। अनुक्रम से मन्त्र को द्विरावृत्त करें। नयन के द्वारा शत्रु अन्वित होवें ॥25॥

हृत (नमः) के द्वारा युक्त होने पर यह मन्त्र सर्वविद्याफलप्रद बन जाता है। आदि, अन्त एवं मध्य में, बीज, शक्ति एवं कीलक न्यस्त होवें ॥26॥

मातृका इतनी ही है।

मुण्डमालातन्त्रम्

(रसिक मोहन विरचितम्)

प्रथमः पटलः

ॐ नमो गणेशाय ॥

कैलास-शिखरे रम्ये गन्धर्व-गण-सेविते ।
हर-वक्षः-स्थिता देवी पप्रच्छ सुर-सुन्दरी ॥1॥

श्रीदेव्युवाच —

देवदेव ! महादेव ! सृष्टि-स्थित्यन्त-कारक ! ।
नीलकण्ठ ! जगद्वन्द्य ! प्रभो ! शङ्कर ! भोहर ! ॥2॥
नमस्तुभ्यं जगन्नाथ ! मम नाथ ! मम प्रभो ! ।
शरणागत-दीनार्त्त-परित्राण-परायण ! ॥3॥
सर्वाधार ! निराधार ! साधार-धारणी-धर ! ।
वेद-विद्या-धराधार ! गङ्गाधर ! नमोऽस्तु ते ॥4॥
श्रुतं परम-मन्त्रं वै सारात्सारं परात्परम् ।
यं श्रुत्वा शीघ्रमायान्ति शिवलोकमनामयम् ॥5॥

गन्धर्व-गण-सेवित मनोरम कैलास पर्वत के शिखर पर, हर-वक्षः-स्थिता श्री सुरसुन्दरी [illegible] पार्वती ने देवी-रूप से महादेव से प्रश्न किया ॥1॥

श्री देवी बोलीं — हे देवदेव ! हे महादेव ! हे सृष्टि स्थिति-लय कारक ! हे नीलकण्ठ ! हे जगद्वन्द्य ! हे प्रभो ! हे शङ्कर ! हे हर ! हे जगन्नाथ ! हे मेरे स्वामी ! हे मेरे प्रभु ! हे शरणागत, दीन एवं आर्तजनों के परित्राण-परायण ! हे सर्वाधार ! हे निराधार ! हे साधार धरणीधर ! हे वेद विद्याधर ! हे धराधर ! हे गङ्गाधर ! आपको नमस्कार ॥2-4॥

सारात्सार परात्पर परम मन्त्र को आप से मैंने सुना है, जिसका श्रवण (= उच्चार करने से उत्पन्न ज्ञान लाभ) करके, जीव अनामय शिवलोक में आगमन करता है ॥5॥

कालीतन्त्रे कुब्जिकायां तथा काली-विलासके ।
डामरे जामले काली-सर्वस्वे योनितन्त्रके ॥6॥
सम्मोहने विशुद्धे च तन्त्रे चैव कुलार्णवे ।
मातृकाभेदतन्त्रे च समयाचार-तन्त्रके ॥7॥
वीरतन्त्रे तोड़ले च तन्त्रे भैरव-तन्त्रके ।
ज्ञानतन्त्रे च निर्वाणे श्रुतं परममादरात्॥8॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि गुह्यात् गुह्यतरं परम् ।
सारात्सारतरं देव ! पावनं सर्वदेहिनाम् ।
श्रुत्वा जीवः शिवत्वञ्च लभते नात्र संशयः ॥9॥

श्री शिव उवाच –

धन्यासि पतिभक्तासि प्राणतुल्यासि शङ्करि ! ।
योषिच्चपलभावत्वात् पुरा नोक्तं त्वयि प्रिये ! ।
इदानीं स्थिरतां ज्ञात्वा कथयामि त्वयि प्रिये ! ॥10॥
अस्ति चैकं मुण्डमालातन्त्रं परम-साधनम् ।
ज्ञात्वा जीवः शिवो भूत्वा विहरेत् क्षिति-मण्डले ॥11॥

कालीतन्त्र में, कुब्जिकातन्त्र मे, कालीविलास-तन्त्र मे, डामरतन्त्र मे, जामलतन्त्र मे, कालीसर्वस्वतन्त्र में, योनितन्त्र मे, सम्मोहन तन्त्र मे, विशुद्धतन्त्र में, कुलार्णव तन्त्र में, मातृकाभेद तन्त्र मे, समयाचार तन्त्र मे, वीरतन्त्र मे, तोड़लतन्त्र मे, भैरवतन्त्र में, ज्ञानतन्त्र मे एवं निर्वाणतन्त्र में आदर के साथ परम तत्त्व-श्रेष्ठ विषयो का श्रवण कर चुकी हूँ ।।6-8।।

हे देव ! सम्प्रति समस्त जीवो के लिए पवित्र-कारक, गुह्य से गुह्यतर एवं सार से सारतर, श्रेष्ठ विषय को सुनने की इच्छा कर रही हूँ । इसे सुनकर जीव शिवत्व का लाभ करता है, इस विषय मे कोई संशय नहीं है ।।9।।

श्री शिव ने कहा – हे शङ्करि ! आप धन्या हैं । आप पतिभक्ता हैं एवं आप मेरे लिए प्राणतुल्या हैं । हे प्रिये ! स्त्रीजनो की चपलता से प्रयुक्त होने से, इससे पूर्व इस विषय को आपसे नहीं कहा था । सम्प्रति आपको स्थिर (एकाग्र) जानकर आपको इस गुह्य विषय का श्रवण करा रहा हूँ ।।10।।

परम साधन मुण्डमाला नामक एक तन्त्र है । जीव इसे जानकर, इस क्षितिमण्डल पर शिव बन कर विचरण कर सकता है ।।11।।

अतिगोप्यं महेशानि ! तन्त्रराजं मनोहरम् ।
मुण्डे मुण्डे च कथितं मुण्डमालेति कीर्त्तितम् ।
शृणु गुह्यं वरारोहे ! किं पृच्छसि नगात्मजे ! ॥12॥

श्रीपार्वत्युवाच –

'देवदेव ! महादेव ! विश्वनाथ ! महेश्वर ! ।
त्रयाणामेवमाचारं त्रयाणां भावशोधनम् ।
त्रयाणां समयाचारं येन दुर्गा प्रसीदति ॥13॥

श्री शिव उवाच –

यथा काली तथा तारा तथा त्रिपुरसुन्दरी ।
भैरवी भुवना विद्या छिन्ना च बगलामुखी ॥14॥
धूमावती चान्नपूर्णा दुर्गा च कमलात्मिका ।
मातङ्गी धनदा पद्मावती सर्वार्थसिद्धिदा ॥15॥
नाना देवि ! महाविद्या चोपविद्या पृथक्-पृथक् ।
नानातन्त्रे महेशानि कथिता शिव-सुन्दरि !॥16॥

हे महेशानि ! यह मनोहर श्रेष्ठ तन्त्र अति गोपनीय है यह एक-एक मुण्ड (=मुख) में कहा गया है, इसलिए 'मुण्डमाला' नाम से कीर्तित हुआ है । हे वरारोहे ! हे नगात्मजे ! क्या आप गुह्य विषय की जिज्ञासा कर रही हैं ? इसे श्रवण करें ।।12।।

श्री पार्वती ने कहा – हे देवदेव ! हे महादेव ! हे महेश्वर ! जिससे दुर्गा प्रसन्न हो, इस प्रकार दिव्य, वीर एवं पशु - इन तीनों का आचार, इन तीनों का भाव शोधन एवं इन तीनों का समयाचार इन्हें बतावें ।।13।।

श्री शिव ने कहा – काली जैसी हैं, तारा भी वैसी हैं, त्रिपुर-सुन्दरी भी उसी प्रकार हैं । इनमें कुछ भी तारतम्य नहीं है । महाविद्या भैरवी, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, बगलामुखी, धूमावती, अन्नपूर्णा, दुर्गा, कमला, मातङ्गी, धनदा पद्मावती – ये सभी समस्त विषयों में सिद्धि प्रदान करती हैं ।।14-15।।

हे महेशानि ! जिस प्रकार महाविद्या अनेक हैं एवं भिन्न-भिन्न हैं, उपविद्या भी उसी प्रकार भिन्न-भिन्न है । हे शिव सुन्दरि ! इसे नाना तन्त्रों में मैं बता चुका हूँ ।।16।।

आचारं त्रिविधं दिव्यं दक्षिणं दक्षिणेतरम् ।
मुण्डमाला-महातन्त्रं सर्वेषां ज्ञानसाधनम् ॥17॥
एका दुर्गा महेशानि ! एको देवः सदाशिवः ।
अहमेकः शिवो देवो नान्यो देवः कथञ्चन ॥18॥
सा वै भवानी मे पत्नी सर्वदा ज्ञानमालभेत् ।
तदैव जायते सिद्धिर्भक्तिरव्यभिचारिणी ॥19॥
ज्ञानं विना परं तत्त्वं न जानामि महीतले ।
अत एव परं ज्ञानं भावयेत् सर्वकोविदः ॥20।
दुर्लभं शृणु देवेशि ! मम साधन-कारणम् ।
अतः परतरं देवि ! दुर्ज्ञेयं पर-साधनम् ॥21॥
सर्वशान्ति-करञ्चैव सर्वदुःखहरं परम् ।
सर्वरोग-क्षयकरं सर्वसाधन-शोधनम् ॥22
ब्रह्मादीनाञ्च दुर्लभ्यं सर्वेषां शिवदुर्लभम् ।
यः शाक्तो धरणीमध्ये स शिवो नात्र संशयः ॥23॥

दिव्याचार, दक्षिणाचार एवं वामाचार-भेद से आचार त्रिविध है । यह मुण्डमालातन्त्र समस्त जीवों के लिए ज्ञान का साधन है ।।17।।

हे महेश्वरि ! देवी दुर्गा एक है, देव भी एक हैं सदाशिव । मैं ही एक शिव हूँ, देव हूँ । अन्य कोई किसी प्रकार से देव नहीं है ।।18।।

मेरी पत्नी ही वह भवानी है । इस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए सदा यत्नशील बनो । जब इस ज्ञान को प्राप्त करते हैं, तभी सिद्धि एवं अव्यभिचारिणी भक्ति उत्पन्न होती है ।।19।।

इस भूमण्डल पर ज्ञान के अतिरिक्त किसी को भी श्रेष्ठ तत्त्व के रूप में मैं नहीं जानता हूँ । समस्त विज्ञ व्यक्ति ज्ञान को श्रेष्ठ तत्त्व के रूप में जानते हैं । अतः समस्त विद्वान् व्यक्ति श्रेष्ठ ज्ञान का उत्पादन करें ।।20।।

हे देवेशि ! सुनो, मेरी सिद्धि का कारण दुर्लभ है । हे देवि ! इसकी अपेक्षा श्रेष्ठतर परा-सिद्धि और भी दुर्ज्ञेय है ।।21।।

समस्त साधनों की शुद्धि ही सभी के लिए शान्तिकारक है, सर्वदुःखों का श्रेष्ठ नाशक एवं सर्वरोगों का श्रेष्ठ क्षयकारक है ।।22।

इन समस्त साधनों की शुद्धि ब्रह्मादि समस्त देवताओं के लिए दुर्लभ है, शिव के लिए भी दुर्लभ है । इस पृथिवी पर जो शाक्त है, वही शिव है– इस विषय में कोई संशय नहीं है ।।23।।

यामां विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तः प्रजायते।
भक्त्या भक्त्या जपेन्मन्त्रं साधको धरणीतले।
जीवनमुक्तः सदा मुक्तः सर्वकर्मसु कोविदः ॥24॥
योऽन्येभ्यो दर्शनेभ्यश्च भक्तिं मुक्तिञ्च काङ्क्षति।
स्वप्नलब्ध-धनेनैव धनवान् जायेत यदि ॥25॥
शुक्तौ रजत-विभ्रान्तिर्यथा जायेत पार्वति !।
तथाऽन्यदर्शनेभ्यश्च भक्तिं मुक्तिञ्च काङ्क्षति ॥26॥
विना दुर्गां न मे ज्ञानं विना दुर्गां न मे रतिः।
विना दुर्गां न निर्वाणं सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥27॥
न त्याज्या भक्तिरमला प्रेयसी परमा क्रिया।
शक्तिद्वयं समाश्रित्य शक्तेः परम-पूजकः ॥28॥
आद्यं देवि ! सुदर्ज्ञेयं मध्यं पञ्चविभूषितम्।
शेषं कुलमये ! लेशं नास्ति नास्ति वरानने ! ॥29॥

इन समस्त विद्याओं के ज्ञानमात्र से ही (साधक) जीवन्मुक्त हो जाता है। साधक इस पृथिवीतल पर, उन समस्त विद्याओं के मन्त्र को अत्यन्त भक्ति के साथ जप करे। वैसा करने पर, वह साधक समस्त कर्मों में पण्डित बन जायेंगे; बाद में जीवन्मुक्त होकर सदा के लिए मुक्त हो जायेंगे ॥24॥

जो व्यक्ति अन्य दर्शन में भक्ति एवं मुक्ति की आकाङ्क्षा करता है, यदि स्वप्नलब्ध धन के द्वारा धनवान् बन सकते हैं, तब अन्य दर्शन से भी वह भक्ति एवं मुक्ति प्राप्त कर सकता है। हे पार्वति ! शुक्ति में जिसप्रकार लोगों को रजत की विभ्रान्ति होती है, इसी प्रकार अन्य दर्शन में भक्ति एवं मुक्ति की आकाङ्क्षा होती है ॥25-26॥

दुर्गा के अतिरिक्त मेरा ज्ञान नहीं है, दुर्गा को छोड़कर मेरी अन्यत्र रति भी नहीं है। दुर्गा को छोड़कर मेरा निर्वाण मुक्ति भी नहीं है – यह मैं सत्य, सत्य बता रहा हूँ ॥27॥

शक्ति के परम पूजक साधक दो शक्तिओं (= क्रियाशक्ति एवं ज्ञानशक्ति) को आश्रय करके रहे। अतिप्रिय परमक्रिया-रूप अतुलनीया भक्ति का कदापि त्याग न करे ॥28॥

हे देवि ! आद्य तत्त्व अतीव दुर्ज्ञेय है। मध्य तत्त्व पाँच के द्वारा विभूषित हैं। हे कुलमये ! हे वरानने ! अन्य (तत्त्व) लेश मात्र भी नहीं है – नहीं है ॥29॥

या पृच्छा ते निगदिता सर्वं जानामि शाङ्करि ! ।
विदिता परमा विद्या कराल-वदना शिवा ॥36॥

एतस्याश्चरितं यत्तु एतस्याः साधकस्य च ।
चरितं दुर्लभं लोके तेषां मध्ये वदाम्यहम् ॥37॥

गुरुरेकः शिवः साक्षात् गुरुः सर्वार्थसाधकः ।
गुरुरेव परं तत्त्वं सर्वं गुरुमयं जगत् ॥38॥

विना गुरु-प्रसादेन कोटिपुरश्चरेण किम् ।
गुरुपूजां विना देवि ! न हि सिध्यति भूतले ॥39॥

गुरुपूजां विना देवि ! इष्ट-पूजां करोति यः ।
मन्त्रस्य तस्य तेजांसि हरते भैरवः स्वयम् ॥40॥

देवता-गुरु-मन्त्राणामैक्यं सम्भावयन् धिया ।
तदा सिद्धो भवेन्मन्त्रः प्रकटे हानिरेव च ॥41॥

हे शङ्करि ! मैं सबकुछ जानता हूँ । आपकी जो जिज्ञासा है, वह आपने कह दी है । करालवदना शिवा, आपने परमा-विद्या को जान लिया है ।।36।।

इस परमा विद्या का जो चरित है, एवं इसके साधक का जो चरित है, वह इस लोक में दुर्लभ है । उन्हीं में से कुछ कह रहा हूँ ।।37।।

गुरु एक हैं एवं साक्षात् शिवस्वरूप हैं । गुरु समस्त पुरुषार्थों के साधक हैं । गुरु ही परम तत्त्व हैं । यह समस्त जगत् गुरुमय है ।।38।।

गुरु के प्रसाद (अनुग्रह) के बिना कोटि पुरश्चरणों से क्या होता है ? अर्थात् कुछ नहीं होता है । हे देवि ! गुरुपूजा के बिना भूतल पर कुछ भी सिद्ध नहीं होता है ।।39।।

हे देवि ! जो व्यक्ति गुरुपूजा को छोड़कर इष्ट देवता की पूजा करता है । स्वयं भैरव उसके मन्त्र के तेज (शक्ति) का हरण कर लेते हैं ।।40।।

साधक निज बुद्धि के द्वारा देवता, गुरु एवं मन्त्र में ऐक्य की भावना करते हुए देवता की आराधना करे । ऐसा करने पर मन्त्र सिद्ध होता है । देवता, गुरु एवं मन्त्र प्रकट (= भिन्नस्वरूप में व्यक्त) रहने पर, मन्त्र की हानि होती है अर्थात् सिद्धि नहीं होती है ।।41।।

श्रीपार्वत्युवाच —

ऐक्यज्ञानं महादेव ! कथमुत्पद्यते प्रभो ! ।
नराकृतिं गुरुं मन्ये देवता ध्यान-रूपिणी ।
मन्त्रश्चाक्षर-रूपेण कथमैक्यं भवेच्छिव ! ॥42॥

श्री शिव उवाच —

धन्यासि प्राणतुल्यासि पतिभक्तासि पार्वति ! ।
एकजाति-स्वरूपेण स्वभावादेक-जन्मतः ॥43॥
एतेषां भावयोगे तु एक-साधनमेव हि ।
गुरोर्जातश्च मन्त्रश्च मन्त्राज् जाता तु सुन्दरी ॥44॥
अत एव वरारोहे ! देवतायाः पितामहः ।
पितुश्च भावना चैव तथा चैव पितुः पितुः ।
तदुद्भवस्तोषमेति विपरीते विपर्ययः ॥45॥

श्रीपार्वती ने कहा — हे महादेव ! हे प्रभो ! देवता, गुरु एवं मन्त्र में ऐक्यज्ञान किस प्रकार उत्पन्न होता है ? गुरु को मनुष्याकार जानता हूँ, देवता को ध्यानरूपिणी अर्थात् ध्यान में जिस रूप या आकार को कहा गया है, देवता को तदाकार मानता हूँ । मन्त्र तो अक्षर रूप में वर्तमान है ही । हे शिव ! इनमें ऐक्य किस प्रकार होता है ॥42॥

श्री शिव ने कहा — हे पार्वति ! आप धन्या हैं । आप पतिभक्ता हैं । आप मेरे लिए प्राणतुल्या हैं । स्वभावतः जो कुछ एक (=मूल) व्यक्ति से उत्पन्न होता है, वे सभी एक से उत्पन्न होने के कारण एकजाति-रूप में एक ही होता है ॥43॥

एवंविध भावना का योग होने पर ही गुरु, देवता एवं मन्त्र में ऐक्य की सिद्ध होती है । गुरु से मन्त्र उत्पन्न हुआ है । मन्त्र से देवता की उत्पत्ति हुई है ॥44॥

इसलिए हे वरारोहे ! देवता के पितामह हैं गुरु । हे देवि ! पुत्र के साथ पिता की ऐक्य-भावना होने पर, पितृजात पुत्र जिस प्रकार सन्तोष-लाभ करता है, उसी प्रकार पिता के साथ पिता के पिता - पितामह की ऐक्य भावना होने पर भी तदुत्पन्न पुत्र सन्तोष लाभ करता है । अर्थात् पिता के साथ पुत्र अभिन्न होने पर, पितामह के साथ पुत्र भी अभिन्न ही होगा । वैसा होने पर, सभी एक ही हुए । इसके विपरित होने पर, विपर्यय (असन्तोष) होता है ॥45॥

गुरुः कर्त्ता गुरुर्हर्त्ता गुरुः पाता महीतले।
गुरु-सन्तोषमात्रेण तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ॥46॥
गुरौ तुष्टे शिवस्तुष्टो रुष्टे रुष्टस्त्रिलोचनः।
गुरौ तुष्टे शिवा तुष्टा रुष्टे रुष्टा तु सुन्दरि! ॥47॥
अतो गुरुर्महेशानि संसारार्णव-लङ्घने।
कर्त्ता हर्त्ता च पाता च गुरुर्मोक्ष-प्रदायकः ॥48॥
जीवः शिवः शिवो देवः स जीवः केवलः शिवः।
पाशबद्धो भवेज्जीवः पाशमुक्तः सदाशिवः ॥49॥
प्रणम्य गुरु-पादाब्जं ध्यात्वा च गुरु-पादुकाम्।
ज्ञात्वा च परमं तत्त्वं यो यजेद् कुलचण्डिकाम् ॥50॥
स कृतार्थः स धन्यश्च स कुलज्ञः स पण्डितः।
स भावज्ञो महादेवि! जायते नात्र संशयः ॥51॥

इस भूमण्डल पर गुरु कर्त्ता हैं, गुरु हर्त्ता (ध्वंसकारी) हैं एवं गुरु पाता (पालनकारी) हैं। गुरु के सन्तोषमात्र से ही समस्त देवता सन्तुष्ट हो जाते हैं ॥46॥

गुरु सन्तुष्ट होने पर शिव सन्तुष्ट होते हैं। गुरु रुष्ट होने पर, त्रिलोचन रुष्ट हो जाते हैं। हे सुन्दरि! गुरु तुष्ट होने पर, शिवा तुष्टा होती हैं, गुरु रुष्ट होने पर शिवा रुष्टा होतीं हैं ॥47॥

इसलिए, हे महेशानि! संसार समुद्र के लङ्घन करने में गुरु एकमात्र अवलम्बन हैं। गुरु ही कर्त्ता, हर्त्ता एवं पाता हैं। गुरु ही मोक्षदाता हैं ॥48॥

जीव (स्वरूप) शिव हैं। शिव ही देव हैं। वह जीव केवल शिव स्वरूप है। पाशबद्ध होने पर वह जीव होता है, पाशमुक्त होने पर सदाशिव बन जाते हैं ॥49॥

श्रीगुरु के पादपद्म को प्रणाम कर, श्रीगुरु पादुका का ध्यान कर, परम तत्त्व को जानकर जो व्यक्ति कुलचण्डिका की अर्चना करता है ॥50॥

वह व्यक्ति कृतार्थ है, वह व्यक्ति धन्य है, वह व्यक्ति कुलज्ञ है एवं वह व्यक्ति पण्डित है। हे महादेवि! वह व्यक्ति भावज्ञ होता है, इसमें कोई संशय नहीं है ॥51॥

ध्यातः स्मृतः पूजितो वा नमितो वापि यत्नतः ।
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि पूजकानां विमुक्तिदः ।।52।।
चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः ।
उपासकानां सिद्ध्यर्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना ।।53।।
सर्वदेवमयीं देवीं सर्वदेवमयीं पराम् ।
आत्मानं चिन्तयेद् देवीं परब्रह्म-स्वरूपिणीम्।।54।।
विद्या च निष्कलङ्का च निराधारा निराश्रया ।
सर्वाधारा निराधारा विजया च जयावहा ।।55।।
सगुणा निर्गुणा चेति महामाया द्विधा मता ।
सगुणा मायया युक्ता तया हीना च निर्गुणा ।।56।।
सगुणा च यदा देवी सगुणोऽहं सदाशिवः ।
निर्गुणा त्वं महामाये ! निर्गुणोऽहं न संशयः ।।57।।

इष्टदेव का सम्यक्पूर्वक ध्यान करने पर या स्मरण करने पर या पूजा करने पर या यत्नपूर्वक ज्ञानपूर्वक अथवा अज्ञानपूर्वक प्रणाम करने पर वह साधकों के लिए मुक्तिदाता बन जाते हैं ।।52।।

उपासकों की सिद्धि के लिए अशरीर निष्कल (निरवयव), चिन्मय, अद्वितीय ब्रह्म के रूप रूपों का (मूर्तियों की) कल्पना की गयी है ।।53।।

देवी को सर्वदेवमयी के रूप में चिन्तन करें, सर्वदेवमयी को परादेवता के रूप में चिन्तन करें, आत्मा को परब्रह्म स्वरूपिणी देवी के रूप में चिन्तन करें ।।54।।

विद्यारूपा वह महामाया निष्कलङ्का है अर्थात् उनमें कोई दोष नहीं है; उनका कोई आधार नहीं है, इसलिए वह निराधार है, उनका कोई आश्रय नहीं है, इसलिए वह निराश्रया है, वह निराधार होकर भी सभी के लिए आधार है। वह विजया बनकर सभी को जय प्रदान करती है ।।55।।

सगुणा एवं निर्गुणा भेद से महामाया दो प्रकार की है ऐसा कहा गया है। महामाया जब माया के द्वारा युक्त हो जाती है, तब वह सगुणा है; जब वह माया रहित बन जाती हैं, तब वह निर्गुणा हैं ।।56।।

जब महादेवी सगुणा बनती है, तब मैं सदाशिव भी सगुण बन जाता हूँ। हे महामाये ! जब आप निर्गुणा बनती है, तब मैं भी निर्गुण बन जाता हूँ। इसमें कोई संशय नहीं है ।।57।।

त्वमेव निर्गुणा शक्ति रहमेव च निर्गुणः ।
यो भजेत् सगुणो देवि ! चाचिरात् सोऽपि निर्गुणः ॥58॥
गुणातीतं परं ब्रह्म निरीहं वर्णवर्जितम् ।
तदेव परमा विद्या काल्यादि-सगुणात्मिका ॥59॥
साधकस्य हितार्थाय शाक्तस्यानुग्रहाय च ।
अस्थिता परमा विद्या सगुणा नात्र संशयः ॥60॥

इति मुण्डमालातन्त्रे पार्वतीश्वर-सम्वादे
प्रथमः पटलः ॥1॥

आप ही निर्गुण शक्ति हैं और मैं भी निर्गुण ब्रह्म हूँ। जो सगुण होकर भी देवी की भजना करता है, वह शीघ्र ही निर्गुण हो जाता है ॥58॥

परब्रह्म को गुणातीत, निरीह (= निष्काम) एवं वर्णों (= [illegible]) रहित जानें। वही परमा विद्या है। काली आदि सगुण स्वरूपा है ॥59॥

साधक के हित के लिए एवं शाक्त साधक के अनुग्रह के लिए परमा विद्या महाविद्या काल्यादि सगुण रूपों में अवस्थित हुई हैं। इसमें कोई संशय नहीं है ॥60॥

हरपार्वती के संवाद-रूप मुण्डमालातन्त्र के प्रथम पटल का
अनुवाद समाप्त ॥1॥

द्वितीयः पटलः

एकदा पार्वती देवी कराल-वदना शिवा।
पप्रच्छ पार्वती देवी हसन्ती कालिका परा ॥1॥

श्री पार्वत्युवाच –

महादेव ! महेशान ! महेश्वर ! सदाशिव !
पृच्छाम्येकं महाभाग ! कृपया कथक प्रभो ॥2॥
विना ध्यानं कुम्भकञ्च प्राणायामञ्च कुल्लुकाम्।
जपं तपो धारणञ्च सेतुञ्चैव विना करम् ॥3॥
विना हंसं विना पिण्डं विना भावं विना पद्म।
कथं वा जायते सिद्धिर्वद नाथ ! जगद्गुरो ! ॥4॥

श्री शिव उवाच –

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैरेव च जातिभिः।
वामभाव-प्रभावेण कर्त्तव्यं जप-पूजनम् ॥5॥
ये शाक्ता ब्राह्मणा देवि ! क्षत्रिया ब्राह्मणाः स्मृताः।
वैश्याश्च ब्राह्मणाश्चण्डि ! सर्वे शूद्राश्च ब्राह्मणाः ॥6॥

(पुराकाल में) एक समय देवी ने हिमालय कन्या करालवदना शिवगृहिणी परा कालिका पार्वती देवी हँसती हुई शिव से अपनी जिज्ञासा प्रकट करती है ॥1॥

श्री पार्वती ने कहा – हे महादेव ! हे महेश्वर ! हे महेशान ! हे सदाशिव ! हे महाभाग ! मैं एक विषय आपसे पूछ रही हूँ। हे प्रभो ! आप कृपा करके इसका उत्तर दें ॥2॥

ध्यान, कुम्भक, प्राणायाम, कुल्लुका, सेतु के बिना, हस्त के बिना, हंस के बिना, देह के बिना, भाव के बिना, पद्म के बिना, जप, तपस्या एवं धारणा के बिना किस प्रकार से सिद्धि प्राप्त होती है, हे जगद्गुरो ! हे नाथ ! इसे बतावें। ॥3-4॥

श्री शिव ने कहा – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र जाति के द्वारा वामभाव के प्रभाव के अनुसार जप एवं पूजा करनी चाहिए ॥5॥

हे देवि ! जो ब्राह्मणगण शाक्त हैं, वे त्रिनेत्र चन्द्रशेखर-स्वरूप हैं। जो क्षत्रिय शाक्त हैं, वह ब्राह्मणस्वरूप हैं। जो वैश्य शाक्त है, वह भी ब्राह्मणस्वरूप है। हे चण्डि ! शाक्त होने पर समस्त शूद्र ही ब्राह्मणस्वरूप बन जाते हैं ॥6॥

ब्राह्मणः शङ्करश्शौण्ड ! त्रिनेत्रश्चन्द्रशेखरः ।
रक्तपुष्पैर्जगद्धात्रीं पूजयेद् हरवल्लभाम् ।।7।।
वज्रपुष्पेण देवेशि ! देवीं त्रिभुवनेश्वरीम् ।
पूजयेद् भक्तिभावेन दुर्गां मोक्षविधायिनीम् ।।8।।
हरसम्पर्कहीनायाः लतायाः काममन्दिरे ।
जातं कुसुममादाय महादेव्यै निवेदयेत् ।।9।।
स्वयम्भूकुसुमं देवि ! रक्तचन्दन-संज्ञकम् ।
तथा त्रिशूलपुष्पञ्च रक्त-पुष्पं वरानने ।
अनुकल्पं लोहिताग्रं चन्दनं हरवल्लभाम् ।।10।।
कदाचित् कस्य मुक्तिः स्यात् कदाचिद् भक्तिरेव च ।
एतस्याः साधकस्याथ भक्तिर्मुक्तिः करे स्थिता ।।11।।
योगी स्यान्नहि भोगी स्याद् भोगी स्यान्न हि योगवान्।
योग-योगात्मकं कौलं तस्मात् कौलं समभ्यसेत् ।।12।।

हे [illegible] ! ब्राह्मणगण त्रिनेत्र चन्द्रशेखर शङ्कर स्वरूप हैं। हरवल्लभा जगद्धात्री को रक्तपुष्पों के द्वारा पूजा करें ।।7।।

हे देवेशि ! भक्तिभाव से वज्रपुष्प के द्वारा त्रिभुवनेश्वरी मोक्षविधायिनी देवी दुर्गा की पूजा करें ।।8।।

इष्ट देवता के मन्दिर में लिङ्ग सम्पर्क रहित लता से उत्पन्न पुष्प को लेकर महादेवी को निवेदन करे ।।9।।

हे देवि ! रक्तचन्दन नामक (= तुल्य) स्वयम्भूकुसुम महादेवी को निवेदन करें। हे वरानने ! इसी प्रकार त्रिशूल पुष्प एवं रक्तपुष्प भी प्रदान करें। लोहिताग्र चन्दनपुष्प अनुकल्प है, उसे हरवल्लभा को निवेदित करें ।।10।।

कदाचित् किसी को मुक्ति होती है, कदाचित् किसी को भक्ति होती है। किन्तु इनकी साधक के लिए भक्ति एवं मुक्ति करतल में स्थित होती है अर्थात् इनके उपासक में भक्ति एवं मुक्ति अनायास ही होती हैं ।।11।।

यदि योगी हैं, तो भोगी नहीं हो सकते। और यदि भोगी हैं, तो योगी नहीं हो सकते। (परन्तु) कौलमार्ग योग एवं भोग - उभयस्वरूप है। अतः कौलमार्ग का अभ्यास करें ।।12।।

न हि योगी न वा भोगी न योगी योगवानिति ।
योगी भोगी न वा भोगी भवेद् भोगी न संशयः ॥13॥
शिवशक्तिं विना देवि ! यो ध्यायति च मूढधीः ।
न योगी स्यान्न भोगी स्यात् कल्प-कोटि-शतैरपि ॥14॥
रुद्रस्य चिन्तनाद्रुद्रो विष्णुः स्याद् विष्णुचिन्तनात् ।
दुर्गायाश्चिन्तनाद् दुर्गा भवत्येव न संशयः ॥15॥
यथा शिवस्तथा दुर्गा या दुर्गा शिव एव सा ।
तत्र यः कुरुते भेदं स एव मूढधीर्नरः ॥16॥
देवी-विष्णु-शिवादीनामेकत्वं परिचिन्तयेत् ।
भेदकृन्नरकं याति रौरवं पापपूरुषः ॥17॥
न हि दुर्गा समा पूज्या न हि दुर्गा-समं फलम् ।
न हि दुर्गा समं ज्ञानं न हि दुर्गा-समं तपः ॥18॥
दुर्गायाश्चरितं यत्र तत्र कैलास-मन्दिरम् ।
इदं सत्यमिदं सत्यमिदं सत्यं वरानने ! ॥19॥

जो योगी है, वह [illegible] भी नहीं है, [illegible] भी नहीं है। किन्तु योगवान् होने से [illegible] नहीं होता है। भोगी भोगी ही होता है। इसमें संशय नहीं है ॥13॥

हे देवि ! [illegible] के बिना जो [illegible] होता है, [illegible] योगी बन सकता है, न भोगी बन सकता है ॥14॥

रुद्र की भावना करने पर रुद्र बन जाता है। विष्णु की भावना से विष्णु बनता है, दुर्गा की भावना से दुर्गा बनता है - इसमें कोई संशय नहीं है ॥15॥

जैसे शिव हैं, वैसे दुर्गा हैं; जो दुर्गा हैं, वही शिव हैं। जो मनुष्य इन दोनों में भेद की [illegible] करता है, वह मनुष्य मूढ़धी है ॥16॥

देवी, विष्णु एवं शिव [illegible] की भावना करे। जो पाप-पुरुष इनमें भेद की भावना करता है, वह [illegible] नरक में गमन करता है ॥17॥

दुर्गा के समान पूज्य नहीं है। दुर्गा के समान फल भी नहीं है। दुर्गा के समान ज्ञान नहीं है। दुर्गा के समान तपस्या नहीं है ॥18॥

जहाँ पर दुर्गा के चरित्र का [illegible] किया जाता है, वह स्थान कैलाश मन्दिर है। हे वरानने ! यह सत्य है, यह सत्य है, यह सत्य है ॥19॥

स्वर्गे मर्त्ये च पाताले न हि शाक्तात् परः प्रियः ।
सौराणां गाणपत्यानां वैष्णवानां तथैव च ।
ततोऽन्ते चैव शाक्तानां क्रमशः क्रमशः प्रियः ॥20॥
शृणु देवि वरारोहे ! नास्ति शाक्तात् परो जनः ।
शाक्तोऽपि शङ्करः साक्षात् पर-ब्रह्मस्वरूपभाक् ॥21॥
आराधिता येन काली तारा त्रिभुवनेश्वरी ।
षोडशी चैव मातङ्गी छिन्ना च बगलामुखी ।
आराधितो महेशानि ! स शिवो नात्र संशयः ॥22॥
अनिरोध्यं वरारोहे ! शाक्तानां परमं पदम् ।
यो जानाति मही-मध्ये स शिवो नात्र संशयः ॥23॥
ब्रह्माद्यर्चित-पादाब्जं यो भजेत् सततं सदा ।
स यात्यचिरकालेन मुक्ति-मन्दिर मेव हि ॥24॥
एका विद्या च प्रकृतिस्वरूपा पुरुषः शिवः ।
एकोऽहं वै त्वमेवैका एकमेव प्रभाषते ।
एवञ्च मनसा दुर्गां यो भजेत् हरवल्लभाम् ॥25॥

स्वर्ग, मर्त्य एवं पाताल में [illegible] प्रिय कोई नहीं है । हे प्रिये ! सौरगण, गाणपत्यगण एवं वैष्णवगणों [illegible] प्रिय हैं । [illegible] बाद अन्त में शाक्त ही सभी के प्रिय हैं ॥20॥

हे वरारोहे ! हे देवि ! [illegible] शाक्त की अपेक्षा श्रेष्ठतर कोई भी नहीं है । [illegible] ही परब्रह्मस्वरूप हैं ॥21॥

[illegible] काली, [illegible], मातङ्गी, छिन्नमस्ता एवं बगलामुखी की [illegible] हे महेशानि ! [illegible] शिव की भी आराधना की है । वह शिव हैं, इसमें संशय नहीं है ॥22॥

हे वरारोहे ! [illegible] परम पद [illegible] है । इस पृथिवी पर जो इस तत्त्व को जानता है, वह शिवस्वरूप है । इसमें सन्देह नहीं है ॥23॥

जो सर्वदा आनन्द के साथ ब्रह्मादि देवों के द्वारा अर्चित, [illegible] के पादाब्ज-युगल की भजना करते [illegible] शीघ्र ही मुक्ति मन्दिर में गमन करते हैं ॥24॥

प्रकृतिस्वरूपा विद्या एक है । पुरुषरूप शिव भी एक हैं । मैं एक हूँ । आप भी एक हैं । [illegible] एक [illegible] । [illegible] इस प्रकार से जो हरवल्लभा दुर्गा की भजना करता है, वह शीघ्र [illegible] मन्दिर में गमन करता है ॥25॥

पूजयेद् यन्त्र-पुष्पैस्तु साधको भुवि मण्डले।
काकचञ्चुं विधायैवं प्राणायामं विशुद्धिदम्।
कुम्भकं मातृकान्यासं प्राणायामं पुनः पुनः ॥26॥
प्राणायाम-त्रयं भद्रे! अधमोत्तम-मध्यमम्।
अधमाज्जायते स्वेदो मध्यमाद् गात्र-चालनम्।
उत्तमाच्च क्षितित्यागो जायते नात्र संशयः ॥27॥
प्राणोऽपानः समानश्चोदान-व्यानौ च वायवः।
नागः कूर्मोऽथ कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ॥28॥
प्राणायामेन सर्वेषां विश्रामं जायते भृशम्।
जवापुष्पैर्द्रोण-पुष्पैः करवीरैर्मनोहरैः ॥29॥
कृष्णापराजितापुष्पैः रक्तैश्च मुनिपुष्पकैः।
पूजयेत् परया भक्त्या चण्डिकां परमेश्वरीम् ॥30॥
कालीं करालवदनां मुण्डमाला-विभूषिताम्।
प्रणमेद् भक्तिभावेन पूजयेत् हरवल्लभाम् ॥31॥

साधक इस पृथिवी मण्डल पर काकचञ्चु का अनुष्ठान कर, विशुद्धिप्रद प्राणायाम, कुम्भक, मातृकान्यास एवं पुनः-पुनः प्राणायाम कर, मन्त्रपुष्प के द्वारा देवी की पूजा करें ॥26॥

हे भद्रे! अधम, मध्यम एवं उत्तम भेद से प्राणायाम तीन प्रकार का है। अधम प्राणायाम से स्वेद होता है। मध्यम प्राणायाम से गात्र चालित होने लगता है। उत्तम प्राणायाम से क्षितित्याग होने लगता है अर्थात् यथेच्छरूप से आकाशादि में विचरण किया जा सकता है ॥27॥

प्राण, अपान, समान, उदान एवं व्यान – ये वायु हैं। अथवा, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त एवं धनञ्जय – ये पाँच वायु हैं ॥28॥

प्राणायाम के द्वारा सभी में अत्यन्त विश्राम (आराम) उत्पन्न होता है। जवापुष्प, द्रोणपुष्प, मनोहर करवीर पुष्प, कृष्णा अपराजिता पुष्प, रक्तवर्ण मुनिपुष्प (= बकपुष्प) के द्वारा परम भक्ति के साथ परमेश्वरी चण्डिका की पूजा करें ॥29-30॥

मुण्डमाला-विभूषिता, कराल वदना हरवल्लभा काली की पूजा भक्तिभाव से करें एवं प्रणाम करें ॥31॥

हिमाद्रिविहितो यस्तु सर्वालङ्कार-भूषितः ।
रक्ताम्बर-परीधानो रक्तमाल्यानुलेपन : ॥32॥
क्रमेणैवं महेशानि सोऽहमित्येव चिन्तयन् ।
एवं कुलासनं दुर्गे ! स्थिता च साधकोत्तमः ॥33॥
श्मशानं शवमारुह्य मध्यस्थो नरसाधकः ।
जप्त्वा महामनुं गुह्यं वसेत् कैलास-मन्दिरे ॥34॥
शिवोऽहञ्च शिवेयञ्च सदा वै सध्य-भावना ।
आद्यामाद्यां समास्थाय ध्यायेत् कुण्डलिनीं सदा ॥35॥
कदाचित् तारिणीं विद्यां दुर्गां तारक-तारिणीम् ।
पूजयेत् क्रियया शक्त्या ब्रह्मविद्यां मनोरमाम् ॥36॥
सहस्रारे महादेवं नीलकण्ठं सदाशिवम् ।
ब्रह्मादि-गोप्यं देवेशं ध्यायेत् शक्ति-समन्वितम् ॥37॥
इदञ्च दुर्लभं तन्त्रं मन्त्रं यन्त्रं महीतले ।
वाक्यं परम-निर्वाणं दाम्भिके पशुसङ्कटे ।
गोप्तव्यं वै वरारोहे स्वयोनिरिव पार्वति ! ॥38॥

हे महेशानि ! जो [illegible] में [illegible] एवं समस्त अलङ्कारों से भूषित होकर, रक्त वस्त्र परिधान कर, रक्त माल्य [illegible] कर एवं रक्त चन्दन से चर्चित होकर, 'सोऽहं' इस प्रकार चिन्तन करते हुए [illegible] क्रम से पूजा करते हैं। हे दुर्गे ! इस प्रकार जो साधक-सत्तम कुलासन पर [illegible] कर, [illegible] की पूजा करते हैं; जो साधक श्मशान में शव के [illegible] में [illegible] कर, गोपनीय महामन्त्र का जप करते हैं, वह ([illegible]) कैलास मन्दिर में वास करते हैं ॥32-34॥

मैं शिव हूँ, वे शिवा हैं — सर्वदा यह सध्य भावना रहती है। आद्या महामाया का आश्रय कर, सर्वदा कुण्डलिनी का ध्यान करें ॥35॥

कभी तारिणी विद्या की [illegible] मनोरम ब्रह्म विद्या स्वरूपिणी दुर्गा की पूजा, भक्ति के साथ, सामर्थ्यानुसार उपचारों से करें ॥36॥

सहस्रार-पद्म में, ब्रह्मादि [illegible] के गोपनीय देवेश्वर, सदाशिव, नीलकण्ठ, महादेव की, शक्ति के [illegible] से ध्यान करें ॥37॥

हे वरारोहे ! हे पार्वति ! इस पृथ्वी पर दुर्लभ तन्त्र, मन्त्र, यन्त्र, एवं परम निर्वाण कारक वाक्य को दाम्भिक पशुओं के निकट निज योनि के समान गोपन करें ॥38॥

दिवारात्रौ महाभागे ! प्रजपेत् परमं मनुम् ।
जप्त्वा भवेन्महाज्ञानी गाणपत्यं लभेत् न सः ।।39।।
अहमेव शिवो ब्रह्म शिवोऽहं भैरवो ह्यहम् ।
भैरवोऽहं भैरवोऽहं रमणी मम भैरवी ।
मनसा ज्ञानमासाद्य साधकेन्द्रो भवेद भुवि ।।40।।
एवं ज्ञानं परं नित्यं निर्विकारं मनोरमम् ।
प्राप्यैवं सर्वदा जीवो विहरेत् क्षिति-मण्डले ।।41।।
पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः पूजयेत् परमेश्वरीम् ।
सदानन्दः स विज्ञेयः सर्व-धर्मार्थ-साधकः ।।42।।
भक्त्या च क्रियया चण्डीं प्रणमेद् यस्तु कालिकाम् ।
जीवः शिवत्वं लभते सत्यं सत्यं न संशयः ।।43।।
क्वः यमः क्व तपो विष्णुः क्व कलिः कर्म-हिंसकः ।
सर्वञ्च मानसं क्लेशं सदा सत्यं विभावयेत् ।।44।।

हे महाभागे ! इस श्रेष्ठ मन्त्र का जप, दिवा तथा रात्रि में करें। इसे जप करने पर महाज्ञानी बन जाते हैं। वह गाणपत्य का लाभ करते हैं ।।39।।

मैं ही शिव हूँ, मैं ही ब्रह्म हूँ, मैं ही शिव हूँ, मैं भैरव हूँ, मैं ही भैरव हूँ; मेरी स्त्री भैरवी है। मन के द्वारा इस ज्ञान का लाभ कर, जगत् में साधकेन्द्र (= साधक-श्रेष्ठ) बन सकते हैं ।।40।।

इस प्रकार मनोरम, निर्विकार, श्रेष्ठ, नित्य ज्ञान का लाभ कर, जीव इस क्षितिमण्डल पर सर्वदा विचरण करें ।।41।।

पाद्य, अर्घ्य, आचमन प्रभृति के द्वारा परमेश्वरी की पूजा करें। जो इस प्रकार पूजा करता है, उसे सदानन्द एवं सर्वधर्म तथा अर्थ के साधक-रूप में जानें ।।42।।

हे चण्डि ! जो जीव भक्ति, क्रिया के साथ कालिका को प्रणाम करता है, वह जीव शिवत्व का लाभ करता है। यह सत्य, सत्य है। इसमें कोई संशय नहीं है ।।43।।

कहाँ हैं यम ? कहाँ हैं तपस्या ? कहाँ है विष्णु ? कहाँ है कर्महिंसक कलि ? ये समस्त मानसिक क्लेश हैं। सर्वदा सत्य भावना करें ।।44।।

एवं विधानमासाद्य प्रजपेत् भावयेत् सुधीः।
सोऽचिरेणैव कालेन शिवत्वं लभते जनः ॥45॥
सदा क्रिया प्रकर्त्तव्या क्रियया सिद्धिमुत्तमाम्।
प्राप्नोति सर्वदा सिद्धिमत एव न तां त्यजेत् ॥46॥
श्मशानसिद्धि-वैराग्यं शवसिद्धिर्वरानने।
दुर्गानुग्रहमात्रेण भविष्यति न संशयः ॥47॥
दिव्यस्तु देववत् प्रायो वीरश्चोद्धत-मानसः।
पशुभावस्तथा देवि! शुद्धश्च धरणीतले ॥48॥
श्रुत्वा हसन्ती सा काली करली कमला-कला।
दिगम्बरा दिव्यदेहा च प्राह देवं त्रिलोचनम् ॥49॥

श्री पार्वत्युवाच —

गोप्यं यत् कथितं नाथ! श्रुतं परममादरात्।
अतिगोप्यं रहस्यञ्च श्रोतुमिच्छाम्यहं पुनः ॥50॥

जो सुधी साधक एवं विध विधान का अनुसरण कर जप करता है एवं भावना करता है, वह व्यक्ति शीघ्र ही शिवत्व का लाभ करता है ।।45।।

सर्वदा ही अर्चादि क्रिया को करें। क्रिया के द्वारा सर्वदा उत्तम सिद्धि का लाभ करता है, अतः सर्वदा उस सिद्धि का त्याग न करें ।।46।।

हे वरानने! श्मशान-सिद्धि, वैराग्य एवं शवसिद्धि, दुर्गा की अनुग्रह-मात्र से ही होती है, इसमें कोई संशय नहीं है ।।47।।

दिव्य भाव का साधक प्रायः देवता के समान शुद्ध है। वीर भाव का साधक प्रायः उद्धत मना है। हे देवि! इस पृथिवी-तल पर पशु-भाव का साधक उसी प्रकार है ।।48।।

वह कराली कमला कला दिव्यदेह धारिणी दिगम्बरा काली, देवदेव हर के निकट में इसे सुनकर हँसती हुई देवदेव त्रिलोचन से बोलीं ।।49।।

श्री पार्वती ने कहा — हे नाथ! आपने परम गोपनीय जो कुछ भी कहा है, अत्यन्त आदर के साथ उसे सुन चुकी हूँ। अतिगोपनीय रहस्य मैं पुनः सुनने की इच्छा करती हूँ ।।50।।

दिव्यस्तु दुर्लभो नाथ ! वीरो-जाति-विहिंसकः ।
पशौ नाधिष्ठिता दुर्गा वीरतन्त्रे पुरा श्रुता ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि ब्रह्मवाक्यं सदाशिवः ! ॥51॥

श्री शिव उवाच —

श्रुतं भैरवतन्त्रं च योनि तन्त्रं कुलार्णवम् ।
कुलाचारं तथा गुप्तसाधनं गुरुतन्त्रकम् ॥52॥
निर्वाणं समयाचारं वीरतन्त्रं श्रुतं पुरा ।
डामरं डमरं डीनं श्रुतं काली विलासकम् ॥53॥
सप्तकोटि महाविद्या मम वक्त्राद् विनिर्गता ।
जामलं देवि ! ब्रह्माद्यं जामलं विष्णु-जामलम् ॥54॥
शिव जामलकं देवि जामलं मित्र-जामलम् ।
शक्ति-जामलकं दुर्गे ! कथितञ्च श्रुतं त्वया ॥55॥
तथापि हृदय-ग्रन्थिरस्ति ते परमेश्वरि ! ।
पुरा मुकथितं तन्त्रं पुरा देवि ! त्वया श्रुतम् ॥56॥

हे नाथ ! दिव्य पुरुष दुर्लभ है । वीर स्वभाव से ही बहुत हिंसक होते हैं । पशु में दुर्गा अधिष्ठिता नही है । ऐसा पहले वीरतन्त्र में सुन चुकी हूँ । हे सदाशिव ! सम्प्रति ब्रह्मवाक्य को सुनने की इच्छा करती हूँ ।।51।।

श्री शिव ने कहा — भैरवतन्त्र, योनितन्त्र, कुलार्णवतन्त्र, कुलाचारतन्त्र, गुप्तसाधनतन्त्र एवं गुरुतन्त्र को मुझसे सुन चुकी हो ।।52।।

पहले आपने मुझसे निर्वाणतन्त्र, समयाचारतन्त्र एवं वीरतन्त्र को सुना है । और डामरतन्त्र, डमरतन्त्र, डीनतन्त्र, काली-विलासतन्त्र को भी सुना है ।।53।।

हे दुर्गे ! सात कोटि महाविद्याएँ मेरे मुख से निर्गत हुई हैं । हे देवि ! ब्रह्मजामल, विष्णुजामल, शिवजामल, मित्र (सूर्य) जामल और शक्तिजामल को भी बता चुका हूँ, आपने भी इन्हें सुना है ।।54-55।।

तथापि हे परमेश्वरि ! आपमें हृदयग्रन्थि (=अज्ञान) है । हे देवि ! पुराकाल में मैंने सुन्दर-रूप में तन्त्र को बनाया है और आपने भी इन्हें सुना है ।।56।।

सङ्केतं समयाचारं तन्त्रसङ्केतकं तथा ।
कुलसङ्केतकं नाम सङ्केतं बहुविस्तरम् ॥57॥
श्मशान-साधनं भद्रे शवसाधनमेव च ।
एतत्ते कथितं देवि नाना-भावं पृथग्विधम् ॥58॥
किन्त्वेकं शृणु चार्वङ्गि कथयामि समासतः ।
मत्स्यं मांसञ्च मद्यञ्च मुद्रा मैथुनमेव च ।
दिव्यानां चैव वीराणां साधनं भावनाशनम् ॥59॥
न मद्यं प्रपिबेद् विप्रो न मुद्रां भक्षयेत् सदा ।
न मैथुनमगम्यायां कर्त्तव्यं सिद्धिनाशनम् ॥60॥
अवधूतः शिवः साक्षादवधूतः सदाशिवः ।
अवधूती शिवा देवी अवधूताश्रयं शृणु ॥61॥
चतुराश्रमिणां मध्ये अवधूताश्रमो महान् ।
अवधूतश्च द्विविधो गृहस्थश्च हितानुगः ॥62॥
सचेलश्चापि दिग्वासो विधियोनि-विहारवान् ।
सदारः सर्वदास्थो ह्यट्टहासो दिगम्बरः ॥63॥

हे भद्रे ! हे देवि ! मैंने अनेक विस्तार से सङ्केत, समयाचार, तन्त्रसङ्केत, कुलसङ्केत नामक सङ्केत, श्मशान-साधन, शव-साधन एवं पृथक् पृथक् नाना भावों को अपासे कहा है ।।57-58।।

हे चार्वङ्गि ! किन्तु सम्प्रति संक्षेप में आपको कुछ बता रहा हूँ, श्रवण करें । मत्स्य, मांस, मद्य, मुद्रा एवं मैथुन – ये दीव्य एवं वीर साधको के भावनाशक साधन हैं ।।59।।

विप्र मद्यपान न करें, कदापि मुद्रा (मद्यपानोपयोगी चटनी-विशेष) भक्षण न करें । अगम्या स्त्री में मैथुन कर्त्तव्य नहीं है । क्योंकि ये सभी सिद्धिनाशक हैं ।।60।।

अवधूत साक्षात् शिवस्वरूप हैं । अवधूत साक्षात् सदाशिव हैं । अवधूती साक्षात् शिवादेवी हैं । अवधूत के सम्बन्ध में इन बातों को सुनें ।।61।।

चार आश्रमों में अवधूताश्रम ही श्रेष्ठ आश्रम है । अवधूत दो प्रकार के हैं – (1) हितानुगामी वस्त्रपरिधानकारी गम्या स्त्री-गमनकारी गृहस्थ एवं (2) दिग्वासी (अकाशतलवासी गृहहीन) । दिगम्बर गृहावधूत हैं सस्त्रीक सर्वस्त्रीगामी एवं अट्टहासकारी ।।62-63।।

गृहावधूतो देवेशो द्वितीयस्तु सदाशिवः ।
न कलौ साधनं मद्यं प्रत्यक्षं वरवर्णिनि ! ।।64।।
गृहावधूतो मैथुनं न कर्त्तव्यं दिगम्बरः ।
अत एव वरारोहे ! मिश्राचारं प्रकल्पयेत् ।।65।।
एवमाचारमिश्रेण पूजयेद् यस्तु कालिकाम् ।
सन्तुष्टा सा जगद्धात्री योगमार्गविधायिनी ।।66।
स्वकरस्थश्च भोगश्च स्वकरस्थश्च मोक्षकः ।
देवीमन्त्रप्रसादेन किं न सिध्यति भूतले ।।67।।
सुरगणाश्च नरगणाश्च किन्नरगणाश्च पार्वति ! ।
शरण्यं तारिणीपादपद्मं मोक्षप्रदायकम् ।।68।।
जवापराजिता-द्रोण-करवीरैः सितेतरैः ।
गन्धैर्मालूरपत्रैश्च नैवेद्यैर्विविधैरपि ।।69।।
एवं विधि विधातव्या क्रिया सिद्धिकरात्मिका ।
तदैव जायते सिद्धिर्जीवन्मुक्तः सदाशिवः ।।70।।

गृहस्थ अवधूत हैं देवेश । द्वितीय अवधूत हैं सदाशिव ! हे वरवर्णिनि ! कलिकाल में मद्य प्रत्यक्ष सिद्धि का साधन नहीं है ।।64।।

गृहस्थ अवधूत दिगम्बर होकर मैथुन न करें । अतः हे वरारोहे ! मिश्राचार की कल्पना करें ।।65।।

एवंविध मिश्र आचार के द्वारा जो कालिका की पूजा करते हैं, जगद्धात्री कालिका सन्तुष्ट होकर उनके योगमार्ग का विधान करती हैं ।।66।।

भोग भी अपने करतलगत हो जाता है, मोक्ष भी अपने करतलगत हो जाता है । देवी के मन्त्र के प्रसाद से इस जगत् में क्या नहीं सिद्ध होता है ? अर्थात् समस्त ही सिद्ध होता है ।।67।।

हे पार्वति ! सुरगण, मनुष्यगण एवं किन्नरगणों के, मोक्ष-प्रदायक तारिणी का पादपद्म ही एकमात्र आश्रय है ।।68।।

शुक्ल एवं रक्त-जवा, अपराजिता, द्रोण एवं करवीर पुष्प के द्वारा, चन्दन एवं बिल्वपत्र के द्वारा, नानाविध नैवेद्य के द्वारा, सिद्धिकर तारिणी की आराधना-रूप क्रिया को एवं विधि विधान के द्वारा करना चाहिए । तभी साधक को सिद्धि प्राप्त होती है । साधक जीवन्मुक्त होकर सदाशिव बन जाते हैं ।।69-70।।

नारिकेलोदकं चार्द्रं जलं सर्वार्थ-साधनम् ।
कांस्ये गुडं सलवणं कृत्वा कारण-कल्पनम् ॥71॥
तदा पूजा विधातव्या मद्येन नगनन्दिनि ! ।
ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्राणी सर्व मङ्गला ।
शुक्लं रक्तं तथा पीतं कृष्णं भद्रं समीरितम् ॥72॥
शुक्लपुष्पं ब्राह्मणे तु रक्तपुष्पं च क्षत्रिये ।
वैश्ये च पीतपुष्पञ्च शूद्रे कृष्णमुदीरितम् ॥73॥
सम्विदासवयोर्मध्ये सम्विदेव गरीयसी ।
अनुकल्पानि चान्यानि न दद्यात् केवलां सुराम् ॥74॥
साम्विदा-पानमात्रेण स वीरः स च मद्यपः ।
वाग्जाल-शास्त्रे कथितं निषिद्धं नगनन्दिनि ! ॥75॥
अग्राह्यं तस्य वाक्यञ्च ग्राह्यं तन्त्रात्मकं वचः ।
शिवा कर्त्री शिवा हर्त्री शिवा शिव विधायिनी ॥76॥

वाम हस्त से अस्थिपात्र में नारिकेलोदक, आर्द्रक, सर्वार्थसाधन जल एवं गुड़ लवण इन कांस्य (कसोरा) पात्र में कल्पना करे ॥71॥

हे नगनन्दिनि ! तब मद्य से पूजा करे। ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या एवं शूद्राणी सुरा सर्वमङ्गलदायक है। शुक्लवर्ण, रक्तवर्ण, पीतवर्ण एवं कृष्णवर्ण मद्य को शुभ बताया गया है ॥72॥

ब्राह्मण के लिए शुक्ल पुष्प, क्षत्रिय के लिए रक्त पुष्प, वैश्य के लिए पीत पुष्प एवं शूद्र के लिए कृष्ण पुष्प को शुभ बताया गया है ॥73॥

सम्विदा (सिद्धि) एवं आसव में सम्विदा ही गरीयसी है। अन्य सभी अनुकल्प है। केवल सुरा का दान न करे ॥74॥

सम्विदा के पानमात्र से ही वह वीर बन जाता है, वह मद्यप भी बन जाता है। हे नगनन्दिनि ! वाग्जाल (= [illegible]) को शास्त्र में निषिद्ध कहा गया है ॥75॥

इस वाग्जाल शास्त्र का वाक्य अग्राह्य (=ग्रहण न करने योग्य) है। तन्त्र का वाक्य ही ग्राह्य है। शिवा कर्त्री है। शिवा हर्त्री है। शिवा मङ्गल-कारिणी है ॥76॥

शिवेयं रमणी देवी शिवोऽहं शिवकामिनी ।
सदाशिव-शिवाराध्या शिवानन्द-विधायिनी ॥77॥
वामानन्दः शिवानन्दो भवेद्भव-समो जनः ।
त्रयाणां भावतत्त्वज्ञो भवत्येवं वरानने ॥78॥

इति मुण्डमालातन्त्रे पार्वतीश्वर-संवादे
द्वितीयः पटलः ॥2॥

यह रमणी शिवकामिनी शिवा देवी है। मैं शिव हूं। ये सदाशिव एवं शिव की आराध्या हैं एवं शिव की आनन्ददायिनी हैं ॥77॥

हे वरानने ! वामानन्द प्राप्त कर शिवानन्द [illegible] साधक महादेवतुल्य बन जाते हैं। इस प्रकार वे शिव, [illegible] एवं [illegible] – इन तीनों के भाव तत्त्वज्ञ बन सकते हैं ॥78॥

मुण्डमालातन्त्र के द्वितीय पटल का
अनुवाद समाप्त ॥2॥

तृतीयः पटलः

कैलासशिखरासीनमिन्दु-खण्ड-विभूषितम् ।
पार्वती परया भक्त्या प्राह देवं त्रिलोचनम् ॥1॥
श्रोतुमिच्छाम्यहं नाथ तन्त्रानन्द-परिप्लुता ।

श्री पार्वत्युवाच —

देव-देव ! महादेव ! संसारार्णव-तारक !
नमस्ते देवदेवेश ! नीलकण्ठ ! त्रिलोचन ! ॥2॥
नमस्ते पार्वती-नाथ ! दशविद्या-पते नमः ।
गङ्गाधर ! जगत्-स्वामिन् ! प्रभो शङ्कर ! भो हर ! ॥3॥
निःशेष-जगदाधार ! निराधार ! निरीहक !
निर्बीज-निर्गुणाभास ! सगुणान्तकर ! प्रभो ! ॥4॥
नमस्ते विजयाधार ! विजयेश ! जयात्मक ! ।
विजयानन्द सन्तोष ! विजया-प्राणवल्लभ ! ॥5॥
जगदीश ! जगद्-वन्द्य ! जयेश ! जगदीश्वर ! ।
विश्वनाथ ! प्रसीद त्वं प्रसन्नो भव शङ्कर ! ॥6॥

देवी पार्वती तन्त्रानन्द से पूर्ण होकर कैलास-शिखर पर समासीन, चन्द्रखण्ड-विभूषित, देवदेव त्रिलोचन से अत्यन्त भक्ति के साथ कहने लगीं – हे नाथ ! मैं आपसे (दुर्गामार्ग को) सुनना चाहती हूँ ।।1।।

श्री पार्वती ने कहा — हे देवदेव ! हे महादेव ! हे संसार-समुद्र तारक ! हे देवेश ! हे नीलकण्ठ ! हे त्रिलोचन ! आपको नमस्कार ।।2।।

हे पार्वतीनाथ ! हे दशविद्यापते ! हे गङ्गाधर ! हे जगत्स्वामिन् ! हे प्रभो ! हे शङ्कर ! हे हर ! आपको नमस्कार ।।3।।

हे निखिल जगत् के आधार ! हे निराधार ! हे निष्क्रिय ! हे निर्बीज (= निष्कारण) ! हे निर्गुणाभास ! हे सगुणान्तकर ! हे प्रभो ! आपको नमस्कार ।।4।।

हे विजयाधार ! हे विजयेश ! हे जयात्मक ! हे विजयानन्द-सन्तुष्ट ! हे विजयाप्राणवल्लभ ! आपको नमस्कार ।।5।।

हे जगदीश ! हे जगद्वन्द्य ! हे जयेश ! हे जगदीश्वर ! हे विश्वनाथ ! आप अनुग्रह करें। हे शङ्कर ! आप प्रसन्न होवें ।।6।।

श्री शिव उवाच —

सप्तकोटि-महाविद्या उपविद्या तथैव च ।
श्री विष्णु-कोटिमन्त्रेषु कोटिमन्त्रे शिवस्य च ॥7॥
शूद्राणामधिकारोऽस्ति स्वाहा-प्रणव-वर्जिते ।
सर्वेषां दुर्लभे मार्गे दुर्गामार्गो महेश्वरि ! ॥8॥
भक्तानां खलु शक्तानां सुलभात् सुलभः प्रिये ! ।
नातः परतरो देवो नातः परतरं सुखम् ॥9॥
नातः परतरा विद्या नातः परतरं पदम् ।
शृणु देवि ! वरारोहे ! सारात् सारतरं प्रिये ! ॥10॥
केवलं दक्षिणं मार्गमाश्रित्य यदि साधकः ।
भावयेत् परमां विद्यामुमेशो नात्र संशयः ॥11॥
शृणु चण्डि ! वरारोहे ! करालास्ये ! दिगम्बरि ! ।
स्तौमि त्वां सततं भक्त्या नमस्ते जगदम्बिके ! ॥12॥

श्री शिव ने कहा — [illegible] महाविद्याएँ [illegible]) हैं । उसी प्रकार उपविद्याएँ भी सात कोटि हैं । स्वाहा एवं प्रणव [illegible] श्रीविष्णु के कोटि मन्त्रों में तथा शिव के [illegible] मन्त्रों में शूद्र का अधिकार है । हे महेश्वरि ! सभी के लिए दुर्गामार्ग दुर्लभ मार्ग है ॥7-8॥

हे प्रिये ! [illegible] के लिए यह दुर्गामार्ग सुलभ से भी सुलभ है । इसकी अपेक्षा श्रेष्ठ देवता नहीं है, इसकी अपेक्षा श्रेष्ठ सुख नहीं है ॥9॥

इसकी अपेक्षा श्रेष्ठ विद्या नहीं है, इसकी अपेक्षा श्रेष्ठ स्थान नहीं है । हे देवि ! हे वरारोहे ! हे प्रिये ! सार से सारतर का श्रवण करें ॥10॥

यदि साधक केवल दक्षिणमार्ग का आश्रय कर, परम विद्या की भावना करता है, तब वह उमेश बन जाता है । इसमें संशय नहीं है ॥11॥

हे चण्डि ! हे वरारोहे ! हे करालास्ये ! हे दिगम्बरि ! आप श्रवण करें । मैं सर्वदा भक्ति के साथ आपकी स्तुति करता हूँ । हे जगदम्बिके ! आपको नमस्कार ॥12॥

श्री शिव उवाच —

घोरदंष्ट्रे! करालास्ये! मृग-मांस-बलि-प्रिये!।
चण्ड-मुण्ड-क्षयकरे! मुण्डमाला-विभूषिते!।।13।।
नमस्तेऽस्तु महामाये! दुर्गे! महिष-मर्दिनि!।
नमस्ते जगदीशान-दयिते! सर्वमङ्गले!।।14।।
वक्ष्ये परमतत्त्वं वै सारात् सारं परात् परम्।
शृणु देवि! जगद्धात्रि! सावधानाऽवधारय।।15।।
योनिमुद्रा-प्रकरणं पूर्वैरगदितं मया।
त्रिकोणं गुणसंयुक्तं योनिं परम-कारणम्।
संगच्छेत् तु शिवा-बुद्ध्या शिवस्पर्शी न संशयः।।16।।
तुषेण बद्धो व्रीहिः स्यात् तुषाभावे तु तण्डुलः।
कर्मबद्धो भवेद् जीवः कर्म-मुक्तः सदाशिवः।।17।।
जीवानां परमो रोगः कर्मभोगः स दारुणः।
तस्मात् तारां जगद्धात्रीं पूजयेद् भक्ति भावतः।।18।।

श्री शिव ने कहा — हे घोरदंष्ट्रे! हे करालास्ये! हे मृग-मांस बलि-प्रिये! हे चण्ड-मुण्ड-क्षयकारी! हे मुण्डमाला-विभूषिते! हे महामाये! हे दुर्गे! हे महिषमर्दिनि! आपको नमस्कार! हे जगदीशान! हे दयिते! हे सर्वमङ्गले! आपको नमस्कार ।।13-14।।

मैं सार से सार परात् परम तत्त्व को कह रहा हूँ। हे देवि! हे जगद्धात्रि! आप श्रवण करें, सावधान होकर अवधारण करें ।।15।।

मैंने पहले योनिमुद्रा के प्रकरण को नहीं बताया था। गुणसंयुक्त परम कारण त्रिकोण योनि की भावना शिव बुद्धि से करें। इससे शिव-स्पर्श बन जायेंगे इसमें कोई सन्देह नहीं है ।।16।।

तुष के द्वारा आबद्ध रहने पर व्रीहि (धान) कहा जाता है, तुष न रहने पर, तण्डुल बनता है। कर्म के द्वारा बद्ध रहने पर जीव कहा जाता है। कर्ममुक्त बन जाने पर सदाशिव बन जाते हैं ।।17।।

जीवों का कर्मभोग ही परम रोग है। वह अति भयंकर है। अतः भक्तिभाव से जगद्धात्री तारा की पूजा करे ।।18।।

भस्म-जटा-व्याघ्रचर्म-धारी परम-पावनः ।
निरन्तरं जपेद् यस्तु साधकेन्द्रो धरातले ।
स धन्यः सोऽपि वीरश्च दिव्यश्च परमः शुभः ॥19॥
भावशुद्धिर्ज्ञानशुद्धिः शवशुद्धिस्तु सङ्गता ।
चिताशुद्धिः पीठशुद्धिर्ध्यान शुद्धिस्तु सच्छिवा ॥20॥
ज्ञात्वा परम-तत्त्वं वै ज्ञानं मोक्षैकसाधनम् ।
भजेत् तु परया बुद्ध्या जीवः शिवत्वमाप्नुयात् ॥21॥
विहारं जगदम्बायाः सहस्रारे मनोरमम् ।
सदाशिवेन संयोगं यः करोति स पण्डितः ॥22॥
ज्ञानिनाञ्च मतं वक्ष्येऽज्ञानिनाञ्च मतं मुदा ।
ज्ञानाज्ञान-समायुक्तः सर्वदा विहरेद् भुवि ॥23॥
इड़ा वामे स्थिता नाड़ी विधुस्तत्रापि तिष्ठति ।
दक्षेऽपि पिङ्गला नाड़ी सूर्यस्त्रापि तिष्ठति ॥24॥

जो साधक श्रेष्ठ धरातल पर परम पवित्र बनकर, भस्म, जटा एवं व्याघ्रचर्म का परिधान कर, निरन्तर मन्त्र का जप करता रहता है, वह धन्य है, वह कवि है, वह वीर है, वह दिव्य है, वह श्रेष्ठ पशु है ।।19।।

भावशुद्धि, शवशुद्धि, परशुद्धि – एकान्तरूप में सङ्गत है । चिताशुद्धि, पीठशुद्धि, ध्यान शुद्धि सद्रूपिणी शिवास्वरूप हैं ।।20।।

परम तत्त्व को जानकर उत्तम बुद्धि के द्वारा उसकी भजना करे । क्योंकि ज्ञान ही मोक्ष का एकमात्र साधन है । जो एवंविध प्रकार से भजना करता है, वह शिवत्व को प्राप्त होता है ।।21।।

सहस्रार में जगदम्बा के मनोरम विहार को जो जानता है एवं जो सदाशिव के साथ जगदम्बा के संयोग को साधित करता है, वह पण्डित है ।।22।।

ज्ञानियो के मत को बताऊँगा । आनन्द के साथ अज्ञानियो के मत को बताऊँगा । ज्ञान एवं अज्ञान से युक्त होकर लोग सर्वदा भूमण्डल पर विचरण करता है ।।23।।

वाम में इड़ा नाड़ी अवस्थिता है । वहाँ भी चन्द्रमा रहते हैं । दक्षिण में पिङ्गला नाड़ी अवस्थिता हैं । वहाँ सूर्य रहते हैं ।।24।।

मध्ये सुषुम्ना तन्मध्ये ब्रह्म-नाड़ी मनोहरा ।
मध्यगं खं विदध्याद् यो जनो मृत्युञ्जयो भवेत् ।।25।।
चित्रिणी-मध्यगं वायुं पूरणं रेचनं यदा ।
करोति वामनासाग्रैः मर्त्यं मर्त्यं सुरेश्वरि ! ।।26।।
दक्षे तु दक्षिणा वामा विगमा चलिता सिता ।
नाड़ी वामे कपाला च विजिह्वा शूलकारिणी ।।27।।
कलङ्का निष्कलङ्का च सव्य-दक्षिणतः क्रमात् ।
भित्त्वा च क्रमशश्चक्रं योगीन्द्रैरप्यलभ्यगम् ।।28।।
नभो मध्यगतं चक्रं सहस्राब्जं मनोरमम् ।
कालीपुरं तत्र रम्यं सर्ववर्णात्मकं प्रिये ! ।।29।।
विधाय चैनां मनसा बुद्ध्या कायेन चण्डिकाम् ।
तत्रैव ध्यान-मनसा बुद्ध्या कायेन चण्डिकाम् ।।30।।

मध्य में सुषुम्ना नाड़ी अवस्थित है। इसके मध्य में मनोहरा ब्रह्मनाड़ी है। जो व्यक्ति इसके भी मध्यगत आकाश को धारण कर सकता है, वह शिव बन सकता है ।।25।।

हे सुरेश्वरि ! जब साधक वाम नासा के अग्रभाग के द्वारा चित्रिणी नाड़ी के मध्यगत वायु का पूरण एवं रेचन करता है, तब वह मर्त्य मर्त्य मृत्युञ्जय बन जाता है ।।26।।

शरीर के दक्षिण भाग में दक्षिणा, वामा, विगमा एवं सिता नाड़ी चली गयी हैं (= अवस्थित हैं)। वाम भाग में कपाला, शूलकारिणी, विजिह्वा, कलङ्का एवं निष्कलङ्का नाड़ी हैं ।।27।।

वामभाग में एवं दक्षिण भाग में ये यथाक्रम से क्रमशः योगीन्द्र के लिए भी अलभ्य चक्र को भेद करते हुए चली गयी हैं ।।28।।

हे प्रिये ! आकाश के मध्यभाग में मनोहर सहस्रदल पद्म-चक्र अवस्थित है। वहाँ पर मनोहर सर्ववर्णात्मक कालीपुर है – ऐसा जानें ।।29।।

वहाँ पर देह, मन एवं बुद्धि के द्वारा इन चण्डिका की भावना कर, देह, मन एवं बुद्धि के द्वारा चण्डिका का ध्यान करे ।।30।।

तत्रैव ध्यान-मनसा प्रकरोति जपार्चनम् ।
यदि ध्यानं वरारोहे ! करोति सततं मुदा ।
तदैव जायते सिद्धिर्मुक्तिर व्यभिचारिणी ॥31॥
न च ध्यानं न वा पूजा न स्तुतिः परमार्थिका ।
पूजयेत् तां जगद्धात्रीं कुसुमैर्मानसोद्भवैः ।
कामरूपे द्विजागारे श्वपचस्य गृहेऽथवा ॥32॥
हरिद्वारे प्रयागे च विमुक्तिः पार्वती-मुखे ।
यत्र कुत्र मृतो ज्ञानी तत्रैव मोक्षमाप्नुयात् ॥33॥
दुर्गा स्मरणजं पुण्यं दुर्गा स्मरणजं फलम् ।
दुर्गायाः स्मरणेनैव किं न सिध्यति भूतले ॥34॥
शैवो वा वैष्णवो वापि शाक्तो वा गिरिनन्दिनि ! ।
भजेद् दुर्गा स्मरेद् दुर्गा जपेद् दुर्गा हरप्रियाम् ।
तत्क्षणाद् देव-देवेशि ! मुच्यतते भवबन्धनात् ॥35॥

वहाँ पर, जो ध्यानयुक्त मन से जप एवं अर्चना करता है, हे वरारोहे ! यदि वह आनन्द के साथ सर्वदा ध्यान करता है, तब तत्क्षण उसे अव्यभिचारिणी सिद्धि एवं मुक्ति का लाभ होता है ॥31॥

ध्यान, पूजा एवं स्तुति, परमार्थ का साधक नहीं है। कामरूप में, ब्राह्मणगृह में अथवा श्वपच-गृह में मनोरम पुष्प के द्वारा उन जगद्धात्री की पूजा करें ॥32॥

हरिद्वार में, प्रयाग में एवं पार्वती गङ्गा के मुख में साक्षात् मुक्ति है। इनमें किसी भी स्थान पर ज्ञानी व्यक्ति यदि प्राणत्याग करते हैं, तो वहीं पर वह मोक्षलाभ करते हैं ॥33॥

दुर्गा के स्मरण जात पुण्य एवं दुर्गा के स्मरण-जन्य फल सिद्धिप्रद हैं। इस पृथिवी पर, दुर्गा के स्मरण-मात्र के द्वारा क्या सिद्धि नहीं होती है अर्थात् सभी कुछ सिद्धि होता है ॥34॥

हे गिरिनन्दिनि ! शैव, वैष्णव अथवा शाक्त – जो भी हरप्रिया दुर्गा की भजना करता है, दुर्गा का स्मरण करता है अथवा दुर्गा का जप करता है, हे देवेशि ! वह तत्क्षण भवबन्धन से मुक्त हो जाता है ॥35॥

क्षीरोद्धृतं यद्वदाज्यं तत्र क्षिप्तं न पूर्ववत् ।
पृथक्तया गुणेभ्यः स्यात् तद्वदात्मा इहोच्यते ।।36।।
क्षीरेण-सहितं तोयं क्षीरमेव यथा भवेत् ।
अविशेषो भवेत् तद्वज् जीवात्म-परमात्मनोः ।।37।।
यथा चन्द्रार्कयोर्बिम्बौ जल-पूर्ण-घटेषु च ।
घटे भग्ने जलेष्वेव प्रलीनौ चन्द्र-सूर्यकौ ।।38।।
न जायते न म्रियते आत्मा न परमः शिवः ।
आत्मज्ञानं समासाद्य संसारार्णव-लङ्घने ।
तरत्येवं सदा चण्डि ! जीवः शिवत्वमालभेत् ।।39।।
पार्वती-चरणद्वन्द्व-भजनात् किं नरो भवेत् ।
स्वर्गो भोगश्च मोक्षश्च शाक्तानां न भवेत् किम् ।।40।।

जिस प्रकार दूध से निकला हुआ घृत, पुनः दूध में निक्षिप्त होने पर पूर्ववत् दूध से एकाकार (मिश्रित) नहीं होता है, उसी प्रकार इस संसार में आत्मा, गुणों से पृथक् हो जाने पर तद्रूप हो जाती है, ऐसा कहा जाता है ।।36।।

जिस प्रकार दूध के साथ जल मिला देने पर वह दूध ही हो जाता है, उसी प्रकार जीवात्मा एवं परमात्मा अविशेष (= अभिन्नवत्) हो जाते हैं ।।37।।

जिस प्रकार जलपूर्ण घटों में चन्द्र एवं सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ने पर भी बिम्ब रूप चन्द्र एवं सूर्य आकाश में ही रहते हैं और प्रतिबिम्ब रूप चन्द्र एवं सूर्य जल में रहते हैं। (अतः दोनों (बिम्बों एवं प्रतिबिम्बों) में भेद रहता है। इस घट के टूट जाने पर जिस प्रकार प्रतिबिम्बरूप चन्द्र एवं सूर्य जल में लीन हो जाते हैं और उनमें (= बिम्ब तथा प्रतिबिम्ब में) पुनः विशेष (= भेद) नहीं रह जाता है, उसी प्रकार जीवात्मा एवं परमात्मा में अविशेष (= एकत्व-बोध) हो जाता है, उनमें भेद नहीं रहता है ।।38।।

परम शिवस्वरूप आत्मा न जन्म लेती है, न मरती है। संसार-रूप समुद्र का लङ्घन करते हुए, आत्मज्ञान का लाभ कर, सदा के लिए संसार समुद्र को पार कर लेता है। हे चण्डि ! इस प्रकार जीव शिवत्व का लाभ करता है ।।39।।

पार्वती के चरणारविन्द की भजना से मानव क्या नहीं बन सकता है अर्थात् सब कुछ बन सकता है, तो क्या शाक्तों को स्वर्ग, भोग एवं मोक्ष प्राप्त नहीं हो पायेगा ? अर्थात् ये सभी सम्भव होंगे ही ।।40।।

शाक्तानां चैव निन्दां वै ये कुर्वन्ति नराधमाः ।
तेषां लोहित-पानं वै कुर्वन्ति भैरवा गणाः ॥41॥
भैरवाश्चैव भरैव्यः सदा हिंसन्ति पामरान् ।
तेषां क्षतजपानं वै कुर्वन्ति बहुरक्तपाः ॥42॥
शाक्तान् हिंसन्ति गर्जन्ति निन्दन्ति बहुजल्पकाः ।
छिनत्ति तेषां देवेशि ! शिरांसि शिववल्लभा ॥43॥
शाक्तानामुत्तमो नास्ति स्वर्गे मर्त्ये रसातले ।
शाक्तस्तु शङ्करो ज्ञेयस्त्रिनेत्रश्चन्द्रशेखरः ।
स्वयं गङ्गाधरो भूत्वा विहरेत् क्षितिमण्डले ॥44॥
नास्ति तन्त्रसमं शास्त्रं न भक्तः केशवात् परः ।
न योगी शङ्करात् ज्ञानी न देवो दुर्गायाः परः ॥45॥
दक्षिणाऽशेषदीक्षाणां गुरोराद्यमधः क्षिपेत् ।
गतिर्मृत्युः पलार्द्धर्वोदूर्ध्वं खेदयुक्ता च मुक्तिदा ॥46॥

जो नराधम व्यक्तिगण शाक्तों की निन्दा करते हैं, भैरव एवं गणदेवतागण उनका रक्तपान करते हैं ।।41।

भैरवगण एवं भैरवीगण उन पामरों की सर्वदा हिंसा करते हैं । बहुरक्तपायीगण उनके क्षतज (रक्त) का पान करते हैं ।।42।।

बहुभाषीगण शाक्तो की हिंसा करते है, गर्जन करते हैं एवं निन्दा करते हैं । हे देवेशि ! शिववल्लभा उनके मस्तक का छेदन करते हैं ।।43।।

स्वर्ग, मर्त्य एवं रसातल मे शाक्तो की अपेक्षा उत्तम कोई नही है । शाक्त को त्रिनेत्र चन्द्रशेखर शङ्कर जाने । जो इसे जानता है, वह स्वयं गङ्गाधर बनकर क्षितिमण्डल पर विचरण करता है ।।44।।

तन्त्र के समान शास्त्र नही है । केशव से श्रेष्ठ भक्त नही है । शङ्कर से श्रेष्ठ ज्ञानी योगी नहीं है । दुर्गा से श्रेष्ठ देवता नही है ।।45।।

समस्त दीक्षाओं मे दक्षिणा देवे । गुरु को पहले दक्षिणा देवे एवं वह उनके अधोभाग में अर्थात् पदतल मे देवे । इससे गति अर्थात् दीक्षा का फल होता है । खेदयुक्त, पलार्द्ध के भी अर्ध (परिमाण) दक्षिणा देने से मृत्यु होती है । इससे अधिक (परिमाण में) दक्षिणा मुक्तिप्रद है ।।46।।

दुर्गाया मन्त्रनिकरं नाना तन्त्रे त्वया श्रुतम् ।
नाम-मन्त्रं न कुत्रापि कथितं न श्रुतं त्वया ।।47।।
दुर्गा दुर्गेति दुर्गेति दुर्गानाम परं मनुम् ।
यो भजेत् सततं चण्डि ! जीवन्मुक्तः स मानवः ।।48।।
महोत्पाते महारोगे महाविपदि सङ्कटे ।
महादुःखे महाशोके महाभये समुत्थिते ।।49।।
यः सदा संस्मरेद् दुर्गां यो जपेत् परमं मनुम् ।
स जीवलोके देवेशि ! नीलकण्ठत्वमाप्नुयात् ।।50।।
जीवः शिवः शिवा वामाऽभिरामा शिवनन्दिनि ! ।
एवं भावं समाश्रित्य क्रिया-भक्ति समन्वितः ।।51।।
भवत्येवं क्व वा दुःखं क्व भयं नरकं क्व वा ।
क्व कलिश्च क्व कालश्च सर्वं सत्यमयं वपुः ।।52।।
काल्याश्चैव हि तारायास्त्रिपुरायाश्च सुन्दरि ! ।
भैरव्या भुवनायाश्च चरितं मुक्ति दायकम् ।।53।।

नाना तन्त्रों में आपने दुर्गा के मन्त्र को सुना है। नाना मन्त्रों को मैंने कहीं पर भी नहीं बताया है, आपने भी नहीं सुना है ।।47।।

दुर्गा, दुर्गा, दुर्गा – यह दुर्गानाम श्रेष्ठ मन्त्र है। हे चण्डि ! जो मानव सर्वदा इस मन्त्र की भजना करता है, वह मानव जीवन्मुक्त है ।।48।।

महा उत्पात में, महारोग में, महाविपत्ति में, सङ्कट में, महादुःख में, महाशोक में, महाभय के उपस्थित होने पर जो सर्वदा दुर्गा का स्मरण करता है, जो दुर्गा के श्रेष्ठ मन्त्र का जप करता है, हे देवेशि! जीवलोक में वह नीलकण्ठत्व का लाभ करता है ।।49-50।।

जीव शिवस्वरूप है। हे शिवनन्दिनि ! सुन्दरी स्त्री शिवास्वरूप है। इस प्रकार भाव का आश्रय कर, क्रिया-भक्ति से समन्वित होकर जो भजना करता है, उसे दुःख कैसा ? भय कैसा ? नरक कैसा ? कलि कैसा ? काल ही कैसा ? अर्थात् उसे ये सभी नहीं होते। उसका समस्त देह सत्यमय बन जाता है ।।51-52।।

हे सुन्दरि ! काली, तारा, त्रिपुरसुन्दरी एवं भुवनेश्वरी का चरित्र मुक्तिदायक है ।।53।।

मुक्ति-शय्यां ज्ञानमयीं सदा सन्तोषकारिणीम् ।
तेनैव भावमासाद्य गच्छेद् दुःखविनाशिनीम् ।।54।।
जपनं पार्वती-देव्या पूजनं पावती-पदे ।
शरणं पार्वती-देव्याश्चरणं भवनाशनम् ।।55।
कालस्य यन्त्रणात् काली कराला कलिमर्दनात् ।
तस्मात् पदाङ्घ्रि-भजनाद् देवी-पुत्रो भवेद्-ध्रुवम् ।।56।।
पुरा निगदितं चण्डि ! नानाचारं पृथग्विधम् ।
इदानीं यागवृत्तान्तं मनसः शृणु शङ्करि ! ।।57।।
हृदपद्मे भावयेद् दुर्गां देवि ! दुर्गति-नाशिनीम् ।
करालां घोर-दंष्ट्राञ्च मुण्डमालाविभूषिताम् ।।58।।
शवारूढ़ां श्मशानास्थां तारिणीञ्च दिगम्बरीम् ।
अट्टहासां ललजिह्वां मेघश्यामां वरप्रदाम् ।।59।।
भवानीं यः स्मरेन्नित्यमन्ते स पार्वतीपतिः ।
सहस्रारे स्थितं लिङ्गं तप्तचामीकर प्रभम् ।।60।।

ज्ञानमय मुक्तिशय्या सर्वदा सन्तोष प्रदान करता है । इसीलिए इस भाव का अवलम्बन कर दुःखविनाशिनी दुर्गा के निकट गमन करें ।।54।।

पार्वती देवी का जप, पार्वती के पद का पूजन, पार्वती देवी का शरण, पार्वती देवी का चरण, भव (= जन्म)-नाशक है ।।55।।

काल को नियन्त्रित करती हैं, अतः वह 'काली' हैं । कलि का मर्दन करती हैं; अतः वह 'कराला' हैं । अतः उनके पाद-पद्म की भजना से (साधक) निश्चय ही देवी का पुत्र बन सकता है ।।56।।

हे चण्डि ! पृथक्-पृथक् प्रकार के नाना आचारों को पहले आपसे मैंने सुना है । हे शङ्करि ! सम्प्रति मानस-याग के वृत्तान्त को बता रहा हूँ, श्रवण करें ।।57।।

हे देवि ! हृत्पद्म में उन कराला, घोरदंष्ट्रा, मुण्डमाला-विभूषिता, शवारूढ़ा, श्मशान-वासिनी, तारिणी, दिगम्बरी, अट्टहासा, ललजिह्वा, मेघश्यामा एवं वरप्रदा दुर्गतिनाशिनी दुर्गा की भावना करें ।।58-59।।

सहस्रारस्थित, उत्तप्त स्वर्ण के समान प्रभाविशिष्ट लिङ्ग (सदाशिव) का एवं भवानी का जो सर्वदा स्मरण करता है, वह देहान्त में पार्वतीपति बन जाता है ।।60।।

कदा शुभ्रं कदा कृष्णं पीतं नीलं कदा कदा ।
कदा वर्णमयं लिङ्गं स्वरादि-परिभूषितम् ॥61॥
कदा सिंह-स्थितं लिङ्गं कदा चैव वृषस्थितम् ।
पद्ममध्ये स्थितं लिङ्गं ज्योतिर्मयमचिन्त्यकम् ॥62॥
जीवादि-भूषितं लिङ्गं कर्णिकोपरि संस्थितम् ।
सदाशिवं ततो भक्त्या प्रणमेद् भक्ति-संयुतः ॥63॥
तदा सिद्धिमवाप्नोति नान्यथा कल्पकोटिभिः ।
किं बहूक्त्या महेशानि ! गुरुभक्त्या च सिद्ध्यति ॥64॥

इति मुण्डमालातन्त्रे पार्वतीश्वसंवादे
तृतीयः पटलः ॥3॥

कभी शुभ्र, कभी कृष्ण, कभी पीत, कभी नील, कभी स्वरादिभूषित वर्णमय इन लिङ्ग को सर्वदा भक्ति के साथ प्रणाम करें ॥61॥

कभी सिंहस्थित, कभी वृषस्थित, कभी सहस्रार पद्म के मध्य में स्थित, अचिन्त्य ज्योतिर्मय लिङ्ग को सर्वदा भक्ति के साथ प्रणाम करे ॥62॥

कर्णिका के ऊर्ध्वभाग में स्थित जीवादि से भूषित सदाशिव लिङ्ग को भक्तियुक्त होकर सर्वदा प्रणाम करें ॥63॥

इससे सर्वदा सिद्धिलाभ कर सकते हैं। अन्यथा कोटि कल्पों में भी सिद्धिलाभ नहीं होता है। हे महेशानि ! अधिक कहने का प्रयोजन नहीं है, गुरु-भक्ति के द्वारा सिद्धिलाभ होता है ॥64॥

मुण्डमालातन्त्र के पार्वती एवं ईश्वर के संवाद में तृतीय पटल का
अनुवाद समाप्त ॥3॥

चतुर्थः पटलः

श्री देव्युवाच —

पृच्छाम्येकं महाभाग ! योगेन्द्र ! भक्त-वत्सल ! ।
पृच्छामि परमं तत्त्वं देवदेव ! सदाशिव ! ।।1।।

श्री शिव उवाच —

कथयिष्ये जगद्धात्रि ! दुर्गायाश्शक्तिं शृणु ।
एका दुर्गा जगद्धात्रि एकोऽहं परमः शिवः ।।2।।
मदंशाश्चैव ये भूतास्ते शैवा नात्र संशयः ।
त्वदंशाश्चैव शाक्ताश्च सत्यं वै गिरिनन्दिनि ! ।।3।।
बहुवर्ष-सहस्रान्ते शैवाः शक्ति-परायणाः ।
शाक्ताश्च शङ्कर देवि ! यस्य कस्य कुलोद्भवाः ।।4।।
चाण्डाला ब्राह्मणाः शूद्रा क्षत्रिया वैश्या-सम्भवाः ।
एते शाक्ता जगद्धात्रि ! न मनुष्याः कदाचन ।
पश्यन्ति मानुषान् लोके केवलं चर्मचक्षुषा ।।5।।

श्री देवी ने कहा — हे महाभाग ! हे योगेन्द्र ! हे भक्त-वत्सल ! मेरी एक विषय में जिज्ञासा है । हे देवदेव ! हे सदा-शिव ! मैं परम तत्त्व की जिज्ञासा कर रही हूँ ।।1।।

श्री शिव ने कहा — हे जगद्धात्रि ! मैं दुर्गा के [illegible] को बताऊँगा, आप श्रवण करें । जगद्धात्री दुर्गा एक हैं । परम शिव मैं भी एक हूँ ।।2।।

जो सभी भूतगण मेरे अंशभूत हैं, वे सभी शैव हैं । इसमें कोई संशय नहीं है । हे गिरिनन्दिनि ! जो समस्त भूतगण आपके अंश से सम्भूत हैं, वे सभी शाक्त हैं । यह अति सत्य है ।।3।।

शैवगण, जिस किसी भी वंश में क्यों न उत्पन्न हों, वे अनेक सहस्र वर्षों के अन्त में शक्ति-परायण बन जाते हैं । हे देवि ! शाक्तगण शङ्कर-स्वरूप हैं ।।4।।

हे जगद्धात्रि ! चण्डाल-वंश-सम्भूत या ब्राह्मण-वंश-सम्भूत या शूद्र-वंश-सम्भूत या वैश्य-कुलोद्भूत होने पर भी जो लोग शक्ति परायण होते हैं, वे सभी शाक्त हैं । ये कदापि मनुष्य नहीं हैं । लोक में केवल चर्मचक्षु के द्वारा इन्हें मनुष्य रूप में देखा जाता है ।।5।।

श्रद्धयाऽश्रद्धाया वापि यः कश्चिद् मानवः स्मरेत् ।
दुर्गा दुर्गशतोत्तीर्णः स याति परमां गतिम् ॥6॥
यथेन्द्रश्च कुबेरश्च वरुणः साधको यथा ।
तथा च साधको लोके दुर्गाभक्ति-परायणः ॥7॥
अभक्त्यापि च भक्त्या वा यः स्मरेद् रुद्रगेहिनीम् ।
सुखं भुक्त्वेह लोके तु स यास्यति शिवालयम् ॥8॥
इहैव स्वर्ग-नरकं मोक्षं वा गिरिनन्दिनि ! ।
इहलोके तु वासः स्यात् सर्वं शक्तिमयं जगत् ।
दुर्गायाः शतनामानि शृणु त्वं भवगेहिनि ! ॥9॥

दुर्गाशतनामस्त्रोत्रम्

दुर्गा भवानी देवेशी विश्वनाथ-प्रिया शिवा ।
घोरदंष्ट्रा करालास्या मुण्डमाला-विभूषिता ॥10॥
रुद्राणी तारिणी तारा माहेशी भव-वल्लभा ।
नारायणी जगद्धात्री महादेव-प्रिया जया ॥11॥

जो कोई मनुष्य श्रद्धा से या अश्रद्धा से दुर्गा का स्मरण करता है, वह शत दुःखों से उत्तीर्ण होकर परम गति को प्राप्त होता है ॥6॥

इन्द्र, कुबेर या वरुण जिस प्रकार 'साधक' है, दुर्गा-भक्ति परायण व्यक्ति भी इहलोक में उसी प्रकार 'साधक' हैं ॥7॥

जो व्यक्ति भक्ति के साथ अथवा अभक्ति के साथ रुद्रगृहिणी दुर्गा का स्मरण करता है, वह इहलोक में सुख का भोग कर, देहान्त होने पर शिवलोक में जाते हैं ॥8॥

हे गिरिनन्दिनि ! इस लोक में स्वर्ग है, नरक है, फिर मोक्ष भी है। इहलोक में वास हो, इसमें हानि नहीं है क्योंकि यह समस्त जगत् शक्तिमय है। हे भवगेहिनि ! दुर्गा के शतनाम का आप श्रवण करें ॥9॥

दुर्गा का शतनाम-स्त्रोत्र

दुर्गा, भवानी, देवेशी, विश्वनाथ-प्रिया, शिवा, घोर-दंष्ट्रा, करालास्या, मुण्डमाला-विभूषिता ॥10॥

रुद्राणी, तारिणी, तारा, माहेशी, भववल्लभा, नारायणी, जगद्धात्री, महादेव-प्रिया, जया ॥11॥

विजया च जयाराध्या सर्वाणी हर-वल्लभा ।
अस्मिता चाणिमा देवी लघिमा गरिमा तथा ॥12॥
महेश-शक्ति विश्वेशी गौरी पर्वतनन्दिनी ।
नित्या च निष्कलङ्का च निरीहा नित्य-नूतना ॥13॥
रक्ता रक्तमुखी वाणी वसुदृक्ता वसुप्रदा ।
रामप्रिया रामरता रघुनाथ-वर-प्रदा ॥14॥
राज्येश्वरी राज्यरता कृष्णा कृष्ण-वर-प्रदा ।
यशोदा राधिका चण्डी द्रौपदी रुक्मिणी तथा ॥15॥
गुहप्रिया गुहरता गुहवंश-विलासिनी ।
गणेशजननी माता विश्वरूपा च जाह्नवी ॥16॥
गङ्गा काशी कालिका च भैरवी भुवनेश्वरी ।
निर्मला च सुगन्धा च देवकी देव-पूजिता ॥17॥
दक्षजा दक्षिणा दक्षा दक्षयज्ञ-विनाशिनी ।
सुशीला सुन्दरी सौम्या मातङ्गी कमला कला ॥18॥

विजया, जया आराध्या सर्वाणी हरवल्लभा, अस्मिता, अणिमा, देवी, लघिमा, गरिमा ।।12।।

महेशशक्ति, विश्वेशी, गौरी, पर्वतनन्दिनी नित्या, निष्कलङ्का, निरीहा, नित्यनूतना ।।13।।

रक्ता, रक्तमुखी, वाणी, वसुदृक्ता, वसुप्रदा, रामप्रिया, रामरता, रघुनाथ-वरप्रदा ।।14।।

राज्येश्वरी, राज्यरता, कृष्णा कृष्णवर-प्रदा यशोदा, राधिका, चण्डी, द्रौपदी, रुक्मिणी ।।15।।

गुहप्रिया, गुहरता, गुहवंश-विलासिनी, गणेशजननी, माता, विश्वरूपा जाह्नवी ।।16।।

गङ्गा, काशी, कालिका, भैरवी, भुवनेश्वरी, निर्मला, सुगन्धा, देवकी, देवपूजिता ।।17।।

दक्षजा, दक्षिणा, दक्षा, दक्षयज्ञ-विनाशिनी सुशीला, सुन्दरी, सौम्या, मातङ्गी, कमला, कला ।।18।।

निशुम्भनाशिनी शुम्भनाशिनी चण्ड-नाशिनी ।
धूम्रलोचन-संहन्त्री महिषासुर-मर्दिनी ।।19।।
उमा गौरी कराला च कामिनी विश्वमोहिनी ।
जगदीश-प्रिया जन्म-नाशिनी भवनाशिनी ।।20।।
घोर-वक्त्रा ललजिह्वा चाट्टहासा दिगम्बरा ।
भार्गी स्वर्गदा देवी भोगदा मोक्षदायिनी ।।21।।
इत्येवं शतनामानि कथितानि वरानने ।
नाम-स्मरणमात्रेण जीवन्मुक्तो न संशयः ।।22।।
यः पठेत् प्रातरुत्थाय स्मृत्वा दुर्गापदद्वयम् ।
मुच्यते जन्मबन्धेभ्यो नात्र कार्या विचारणा ।।23।।
सन्ध्याकाले दिवाभागे निशायां वा निशामुखे ।
पठित्वा शतनामानि मन्त्र-सिद्धिं लभेद् ध्रुवम् ।।24।।
अज्ञात्वा स्तवराजन्तु दशविद्यां भजेद् यदि ।
तथापि नैव सिद्धिः स्यात् सत्यं सत्यं महेश्वरि ! ।।25।।

निशुम्भनाशिनी, शुम्भनाशिनी, चण्डनाशिनी, धूम्रलोचन-संहन्त्री, महिषासुर मर्दिनी ।।19।।

उमा, गौरी, कराला, कामिनी, विश्वमोहिनी, जगदीश प्रिया, जन्मनाशिनी, भवनाशिनी ।।20।।

घोरवक्त्रा, लोलजिह्वा, अट्टहासा, दिगम्बरा, भार्गी, स्वर्गदा, देवी, भोगदा, मोक्षदायिनी ।।21।।

हे वरानने ! इस प्रकार मैंने शतनाम का कथन किया है । इन नामों के स्मरण-मात्र से ही जीव जीवन्मुक्त हो जाता है । इसमें कोई सन्देह नहीं है ।।22।।

जो व्यक्ति प्रातःकाल शय्या से उठकर 'दुर्गा दुर्गा' इन पदद्वय का स्मरण कर, इस शतनाम का पाठ करता है, वह जन्मबन्धन से मुक्त हो जाता है । इस विषय में अन्य कुछ भी विचार न करें ।।23।।

सन्ध्याकाल में, दिवाभाग में, निशामुख (प्रदोष) में या रात्रि में, इस शतनाम का पाठ करने से निश्चय ही मन्त्रसिद्धि का लाभ करता है ।।24।।

हे महेश्वरि ! इस स्तवराज को न जानकर, यदि कोई दशमहाविद्या की भजना करता है, फिर भी उसे सिद्धिलाभ नहीं होती है । यह सत्य, सत्य है ।।25।।

कामरूपे कामभागे कामिनी काममन्दिरे ।
कामिनी-वल्लभो भूत्वा विहरेत् क्षिति-मण्डले ।।26।।
वामभागे तु रमणीं संस्थाप्य वरवर्णिनि ! ।
ताम्बूल-पूरित मुखः सर्वदा तारिणीं भजेत् ।।27।।
महानिशाभाग-मध्ये वामे तु वामलोचनाम् ।
कृत्वा तु यो जपेन्मन्त्रं सिद्धिदं सर्वदेहिनाम् ।।28।।
विलोक्य मुख-पद्मञ्च वामाया रमणी-मुखम् ।
प्रकरोत्यट्टहासञ्च ततो दुर्गा प्रसीदति ।।29।।
परं ब्रह्म परं धाम परमानन्द-कारकम् ।
नित्यानन्दं निर्विकारं निरीहं तारिणीपदम् ।।30।।
ध्यात्वा मोक्षमवाप्नोति सत्यं परम-सुन्दरि ! ।
यथा दुर्गा तथा वामा यथा वामा तथा शिवा ।।31।।
शिव-शक्तिमयो भूत्वा विहरेत् सर्वदा शुचिः ।
विना काली-पदद्वन्द्वं कः शक्तो धरणीतले ।।32।।

कामरूप के कामपीठ में कामिनी के काममन्दिर में इस स्तव-नाम का पाठ करके, साधक कामिनीवल्लभ बनकर इस क्षितिमण्डल पर विचरण करता है ।।26।।

हे वरवर्णिनि ! मुख में ताम्बूल रखकर, अपने वामभाग में रमणी को बैठाकर सर्वदा तारिणी की भजना करें ।।27।।

महानिशा के मध्यभाग में अपनी वाम दिशा में वामलोचना को बैठाकर, जो व्यक्ति इस तारिणी के सिद्धिप्रद मन्त्र का जप करता है, तारिणी उन समस्त जीवों के लिए सिद्धिप्रदा बन जाती हैं ।।28।।

जो व्यक्ति तारिणी के मुखपद्म को एवं वामा रमणी के मुख को देखकर अट्टहास करता है, देवी दुर्गा (उसके) इस (कार्य) से प्रसन्न होती हैं ।।29।।

हे सुन्दरि ! परब्रह्म-रूप परमपद परमानन्दकारक नित्यानन्दमय निर्विकार निरीह (निश्चेष्ट) तारिणीपद का ध्यान कर (साधक) मोक्षलाभ करता है । यह सत्य है । जैसी दुर्गा हैं, वैसी ही स्त्री हैं । जैसी स्त्री है वैसी है शिवा अर्थात् वामा एवं शिवा में कोई भेद नहीं है ।।30-31।।

सर्वदा शुचि रह शिव शक्तिमय बनकर विचरण करे । काली के पदयुगल को छोड़कर इस पृथ्वीतल पर कौन (कुछ भी करने में) समर्थ हो सकता है ? ।।32।।

शक्तिहीनः शवः साक्षाच्छक्तियुक्तः सदाशिवः ।
शक्तियुक्तो भवेद् विष्णुरथवा विष्णुरेव हि ॥33॥
राजमार्गं शक्तिमार्गं जानीहि जगदम्बिके ! ।
अन्य-पूजा न कर्त्तव्या न स्तुतिर्न च भावना ॥34॥
न च ध्यानं योगसिद्धिर्नान्यमन्त्रं विचक्षणैः ।
केवलं कालिकापाद-पद्मं भव विघट्टनम् ॥35॥
नान्यो देवो न वा तीर्थं न ध्यानं न च जल्पना ।
न तीर्थ-भ्रमणं चण्डि ! न वा च योग-धारणा ॥36॥
स्तुतिर्दुर्गा नीतिर्दुर्गा स्मृतिर्दुर्गा सदाशिवः ।
क्षुधा निद्रा तृषा भ्रान्तिः क्षान्तिर्दुर्गा मतिर्गतिः ॥37॥
शक्तिः शिवः शिवः शक्तिः शक्तिर्ब्रह्मा जनार्दनः ।
शक्तिः सूर्यश्च चन्द्रश्च कुबेरो वरुणश्च यः ॥38॥

शक्तिहीन हो जाने पर साक्षात् शव बन जाते हैं और शक्तियुक्त होने पर ही सदाशिव बन जाते हैं। विष्णु शक्तियुक्त बने रहते हैं अथवा विष्णु ही शक्ति हैं ॥33॥

हे जगदम्बिके! राजमार्ग ही शक्तिमार्ग है। अन्य देवता की पूजा कर्तव्य नहीं है, अन्य की स्तुति कर्तव्य नहीं है, अन्य की भावना भी कर्तव्य नहीं है ॥34॥

विचक्षण व्यक्ति अन्य देवता के मन्त्र का जप न करें, न कि अन्य देवता का ध्यान करें। भवयन्त्रणा विनाशी-कालिका के पादपद्म का (साधक) ध्यान करें। वैसा करने पर ही योगसिद्धि प्राप्त होती है ॥35॥

अन्य देवता नहीं, अन्य तीर्थ नहीं; अन्य देवता का ध्यान (वस्तुतः) ध्यान नही, अन्य देवता की स्तुति - (वस्तुतः) स्तुति नहीं है। हे चण्डि! अन्य देवता के तीर्थ का भ्रमण न करें, अन्य योग एवं अन्य की धारणा भी न करें ॥36॥

दुर्गा ही स्तुति है, दुर्गा ही नीति है, दुर्गा ही स्मृति एवं सदा-शिव हैं। दुर्गा क्षुधा हैं, दुर्गा निद्रा है, दुर्गा तृष्णा है, दुर्गा भ्रान्ति है, दुर्गा क्षान्ति है, दुर्गा मति हैं एवं दुर्गा ही गति हैं ॥37॥

शक्ति शिव है, शिव शक्ति है, शक्ति ब्रह्मा है। शक्ति जनार्दन है। ये जो सूर्य, चन्द्र, कुबेर एवं वरुण हैं – ये सभी शक्ति हैं ॥38॥

शक्तिरूपं जगत् सर्वं यो न वेत्ति स पातकी ।
एवं शक्तिमयं विश्वं यो वेद धरणीतले ॥39॥
स वेद धरणीमध्ये कालिकां जगदम्बिकाम् ।
स एव सर्वशास्त्रेषु कोविदः सर्ववल्लभः ॥40॥
श्मशान-सिद्धिं लभते नात्र कार्या विचारणा ।
शून्यागारं श्मशानं वा शून्यं परमकोविदः ।
यो वा गच्छति तत्रैव स विश्वेशो भवेद् ध्रुवम् ॥41॥
निशाभागे चतुर्दश्याममायां हरवल्लभे ! ।
जपेदयुतसंख्यञ्च स सिद्धः सर्वकर्मसु ॥42॥
स योगीन्द्रः स भावज्ञः स धीरः सर्वकर्मसु ।
नित्यानन्दः स विज्ञेयः सर्वकार्य-विशारदः ॥43॥
प्रभातेऽश्वत्थ-मूले च गत्वा परम-कोविदः ।
पूजयेत् परया भक्त्या समिषैर्लोहितैरपि ॥44॥

यह समस्त जगत् शक्तिरूप है – इसे जो नहीं जानता है, वह पातकी है। इस धरणीतल पर, जो इस विश्व को शक्तिमय रूप में जानता है, वह इस पृथ्वीतल पर, जगदम्बिका कालिका को भी जानता है। वह ही समस्त शास्त्रों में पण्डित है एवं वही सभी का प्रभु बन सकता है ।।39-40।।

जो (साधक) श्मशान-सिद्धि का लाभ करता है, वह इस विषय में कोई विचार न करे। जो श्रेष्ठ पण्डित शून्यागार में, श्मशान में या शून्य (निर्जन) स्थान में किसी प्रकार की श्रेष्ठ भजना (साधना) के लिए गमन करता है, वह निश्चय ही विश्वेश्वर बन जाता है ।।41।।

हे हरवल्लभे ! चतुर्दशी के निशाभाग में या अमावस्या के निशाभाग में जो दस हजार मन्त्र जप करता है, वह समस्त कर्मों में सिद्ध बन जाता है ।।42।।

वह योगीन्द्र है, वह भावज्ञ है, वह समस्त कर्मों में धीर (पण्डित) होता है। उसे सर्वकार्य-विशारद एवं नित्यानन्द जानें ।।43।।

श्रेष्ठ पण्डित, प्रभातवेला में अश्वत्थ के मूल में गमन कर, समिष रक्त के द्वारा परम भक्ति के साथ पूजा करें ।।44।।

बिल्वैर्बिल्वदलैर्वापि बिल्वपुष्पैर्वरानने ! ।
जपेल्लक्षं चतुर्दश्यामारभ्य वरवर्णिनि ! ॥45॥
पञ्चमेन यजेद्देवीं बिल्वमूले दिवानिशम् ।
तदा वाक्सिद्धिमाप्नोति क्षणे वाचस्पतिर्भवेत् ॥46॥
आसनं द्वादशविधं मण्डूकासनमुत्तमम् ।
भद्रासनं तथा पद्मासनं सिद्धासनं तथा ॥47॥
सिद्धसिद्धासनं देव्यासनञ्च कुक्कुटासनम् ।
वीरासनं परं भद्रे ! चासनं वरदासनम् ॥48॥
सिंहासनं परं देवि ! श्मशानासन मुत्तमम् ।
शवासनं वरारोहे ! देवानामपि दुर्लभम् ।
यदाश्रयेत् परं ब्रह्मासनं परमभूषितम् ॥49॥
वामभागे स्त्रियं स्थाप्य धूपामोद-सुगन्धिभिः ।
ताम्बूल-चर्वणाद्यैश्च पूजयेद् भवरोहिणीम् ॥50॥
भवानीं नाम्नीं विद्यां ब्रह्मविद्यां मनोहराम् ।
स्तुत्वा मोक्षमवाप्नोति तत्क्षणादेव शङ्करि ! ॥51॥

अथवा हे वरानने ! हे वरवर्णिनि ! बि[illegible] बिल्वदल अथवा बिल्वफल के द्वारा पूजा [illegible] ॥45॥

जो [illegible] पूजा करता है, वह वाक्सिद्धि का [illegible] है ॥46॥

हे देवि ! [illegible] उत्तम है । भद्रासन, पद्मासन, [illegible], वीरासन, वरदासन, श्रेष्ठ [illegible] है ॥47-48॥

हे वरारोहे ! [illegible] है । जो परम गुण भूषित श्रेष्ठ ब्रह्मासन को [illegible] कर धूप के सुगन्ध एवं सुगन्धित पुष्पों के द्वारा [illegible] भवरोहिणी की पूजा करता है ॥49-50॥

हे शङ्करि ! [illegible] भवानी का स्तव करके, तत्क्षण मोक्षलाभ कर लेता है ॥51॥

विश्वमातर्जगाधारे ! विश्वेश्वरि ! नमोऽस्तु ते ।
करालवदने ! घोरे ! चन्द्रशेखर-वल्लभे ! ।।52।।
मां तारय महाभागे ! देहि सिद्धिमनुत्तमाम् ।
काम-कल्पलता-रूपे ! कामेश्वरि ! कलामते ! ।
कामरूपे ! च विजये ! निस्तारे ! शववाहिनि ! ।।53।।
गृहीत्वा शवचण्डालं धृत्वा भालं मुखं शिरः ।
नासां कर्णौ च हृत्पद्मं नाभिं लिङ्गं गुदन्तथा ।।54।।
बाहू पृष्ठञ्च जठरं धृत्वा धृत्वा मुहुर्मुहुः ।
आदौ मायां पुनर्मायां पुनर्मायां नियोजयेत् ।।55।।
वधूबीजं तथा लज्जा सर्वाङ्गे निःक्षिपेन्मनुम् ।
अष्टोत्तर-मनुं जप्त्वा कृत्वा च शव-बन्धनम् ।।56।।
पुनर्विहार-बीजेन नील-द्रव्येण चक्षुषी ।
सत्त्वेन रजसा देवि ! तमसा नगनन्दिनि ! ।
हरबीजेन संमार्ज्य स सिद्धेश्वरतामियात् ।।57।।

हे विश्वमातः ! हे [illegible] ! हे विश्वेश्वरि ! आपको नमस्कार । हे करालवदने ! हे घोरे ! हे चन्द्रशेखर-वल्लभे ! हे महाभागे ! मुझे संसार सागर से उत्तीर्ण करें ! हे काम-[illegible] ! हे कामेश्वरि ! हे कलामते ! हे कामरूपे ! हे विजये ! हे निस्तारे ! हे शववाहिनि ! मुझे श्रेष्ठ सिद्धि प्रदान करें ।।52-53।।

चण्डाल के शव को ग्रहण कर, ललाट, मुख, मस्तक को धारण कर, नासा, दो कर्ण, हृत्पद्म, नाभि, लिङ्ग, गुद (गुह्यदेश), बाहुद्वय, पृष्ठ, जठर को बार-बार धारण कर, पहले माया (ह्रीं), पुनः माया, पुनः माया का उच्चारण करें ।।54-55।।

सर्वाङ्ग में वधूबीज (स्त्रीं) और लज्जा (ह्रीं) मन्त्र का भी निक्षेप (जप) करें । उसके बाद एक सौ आठ बार मन्त्र जप कर, शव का बन्धन करें ।।56।।

हे देवि ! हे नगनन्दिनि ! सत्त्व, रज., तमोगुण मय विहार बीज से नील द्रव्य के द्वारा शव के चक्षु. का बन्धन करें । हरबीज के द्वारा मार्जना करने पर (साधक) सिद्धेश्वरत्व का लाभ करता है ।।57।।

वायुस्तम्भं जलस्तम्भं वह्निस्तम्भं नगात्मजे ।
तत्क्षणादेव देवेशि ! जायते नात्र संशयः ।।58।।
शून्यागारे महेशानि ! भजेद् धनद-दिङ्मुखः ।
शङ्खमाला गृहीतव्या स्फाटिकी वाथ राजनी ।।59।।
चामीकर-मयी माला प्रवाल-घटिताऽथवा ।
मूर्द्धिर्ण देशे कुल्लुकाञ्च जप्त्वा शतमनुत्तमम् ।।60।।
तदा मन्त्रं जपेन्मन्त्री महेशो नात्र संशयः ।
स शाक्तः शिवभक्तश्च भैरवश्च सदाशिवः ।
कुलीनश्च कुलज्ञश्च योजपेत् तारिणी-मनुम् ।।61।।
हृत्पद्मगां जगद्धात्रीं मूर्द्धिर्ण संस्थां सुरेश्वरीम् ।
भुजङ्गिनीं जागरिणीं भुजगादि-विभूषिताम् ।।62।।
नारदाद्यैः साधकेन्द्रैः सेवितां सिद्ध-सेविताम् ।
अश्वत्थे विल्वमूले वा स्वजाया-मन्दिरेऽथवा ।।63।।

हे नगात्मजे ! हे [illegible] ! [illegible] एवं वह्निस्तम्भ उत्पन्न होता है। इसमें कोई संशय नहीं है ।।58।।

हे महेशानि ! शून्यागार में [illegible] की ओर मुख करके भजना करे। शङ्खमाला, स्फटिकमाला अथवा [illegible] ।।59।।

अथवा स्वर्णमयी माला या प्रवाल की माला को ग्रहण कर, मस्तक में कुल्लुका का जप कर, [illegible] तब वह महेश बन जायेगा। इसमें कोई संशय नहीं है। जो कुलीन एवं कुलज्ञ साधक तारिणीतन्त्र का जप करता है, वह शाक्त है, शिवभक्त है, वह भैरव एवं सदाशिव है ।।59-60।।

जो कुलीन एवं कुलज्ञ साधक तारिणी मन्त्र का जप करता है, वह महेश बन जाता है। अश्वत्थ के मूल में अथवा बिल्व के मूल में अथवा अपनी स्त्री के गृह में, हृत्पद्मस्थ जगद्धात्री का, [illegible] सुरेश्वरी का, सर्पादि विभूषिता जागरिणी भुजङ्गिनी का अथवा सिद्ध-सेवित नारदादि साधकेन्द्रों के द्वारा पूजित परदेवता देवी का या कामिनी का ध्यान करे ।।61-63।।

देवीं वा कामिनीं वापि ध्यायेत् परम-देवताम् ।
आद्यां ज्योतिर्मयीं विद्यामभयां वरदां शिवाम् ॥64॥
प्रणमेत् स्मृतिभिश्चण्डीं सर्वदोष-निकृन्तनीम् ।
श्मशान-स्थः शवस्थो वा प्रपठेत् कवचोत्तमम् ॥65॥
तदा श्मशाने देवेशि ! शवे वा वरवर्णिनि ! ।
सिद्धिर्भविष्यति तदा परदेशा न भैरवाः ॥66॥
उन्मत्तः क्रोधनश्चण्डो भैरवो वटुकात्मकः ।
संहारो भीषणश्चैव तथा च कालभैरवः ॥67॥
महाकालभैरवश्च एते वै वसुसंख्यकाः ।
दृष्ट्वा श्मशानं देवेशि ! शवसाधनमेव च ॥68॥
नृत्यन्ति भैरवाः सर्वे गर्जन्ति रक्तलोचनाः ।
अद्य मत्सदृशो वापि अद्यैव वातुलोऽपि वा ॥69॥
शव-श्मशानयोर्मध्ये न जानामि कथञ्चन ।
मा भैषीर्भैरवाः सर्वे वदिष्यन्ति च बन्धनात् ॥70॥

[illegible] आद्या ज्योतिर्मयी विद्यारूपिणी चण्डी को स्मृति के साथ प्रणाम करें । श्मशानस्थ अथवा शवस्थ होकर उत्तम कवच का पाठ करें ॥64-65॥

हे देवेशि ! हे वरवर्णिनि ! [illegible] श्मशान में या शव में [illegible] प्राप्त होगी, [illegible] । [illegible] भैरव भी [illegible] नहीं रहते ॥66॥

उन्मत्त भैरव, क्रोध भैरव, चण्ड भैरव, वटुक भैरव, संहार भैरव, भीषण भैरव, काल भैरव, महाकाल भैरव — ये आठ भैरव कहे जाते हैं ।

हे देवेशि ! रक्तलोचन समस्त भैरवगण श्मशान एवं शव-साधन को देखकर नृत्य करते हैं, गर्जन करते हैं । अद्य मेरे सदृश अथवा अद्य वातुल भी नृत्य करने लगते हैं ॥67-69॥

शव एवं श्मशान के मध्य में किसी प्रकार भी कुछ भी नहीं जानता हूँ । सभी भैरव कहते हैं — बन्धन से डरो मत ॥70॥

सिंह-व्याघ्र-वराहाद्याः के वा गर्जन्ति सर्वतः ।
मा भैर्षीश्चैव मा भैर्षी मा भैर्षीश्चैव च साधक ! ।
यो वा वदिष्यति पुरः स गुरुस्तत्त्वकोविदः ॥71॥
विना तन्त्रपरिज्ञानात् विना गुरुनिषेवणात् ।
प्राणायामाद् विना ध्यानाद् विना मन्त्र विचालनात् ॥72॥
विना ज्ञानाद् विना न्यासाद् विना शवविबन्धनात् ।
विना योगाद् विनाऽरोगाद् विना कारणकारणात् ॥73॥
विना शक्त्या विना भक्त्या विना युक्ति-विबन्धनात् ।
विना रोगाद् विना भोगाद् विना कुसुमसञ्चयात् ॥74॥
विना भावाद् विना लाभाद् विना सत्सङ्गसेवनात् ।
विना जापाद् विना तापाद् विनापि काममन्दिरात् ।
न हि सिद्ध्यति देवेशि ! प्रत्यक्षं हरवल्लभा ॥75॥
यदि भाग्यवशाद् देवि ! प्रत्यक्षं हरवल्लभा ।
तदैव जायते सिद्धिर्महाविद्या प्रसीदति ॥76॥

इति मुण्डमालातन्त्रे पार्वतीश्वर संवादे चतुर्थः पटलः ॥4॥

[illegible] गर्जन कर रहे हैं । हे साधक ! [illegible] साक्षात्-रूप में [illegible] ।

हे देवेशि ! [illegible] के बिना, प्राणायाम के बिना, [illegible] ज्ञान के बिना, न्यास के बिना, [illegible] कारण के कारण के बिना, [illegible] के बिना, रोग के बिना, भोग के बिना, [illegible] के बिना, सत्सङ्ग की सेवा के बिना, [illegible] के बिना, हरवल्लभादेवी प्रत्यक्ष-रूप में सिद्ध नहीं होती हैं ।।72-75।।

यदि [illegible] तब सिद्धि उत्पन्न होती है । महादेवी प्रसन्ना होती हैं ।।76।।

मुण्डमालातन्त्र के हरपार्वती के संवाद में चतुर्थ पटल का अनुवाद समाप्त ॥4॥

पंचमः पटलः

एकदा पार्वती देवी कैलास-निलयाश्रया ।
अट्टहासं प्रकुर्वन्ती प्राह गद्गदया गिरा ॥1॥

श्री पार्वत्युवाच —

देवदेव ! महादेव ! विश्वनाथ ! सदाशिव ! ।
पृच्छामि जगदीशान ! मार-मन्दिर-घर्षणम् ॥2॥
किंविधं वापि भो नाथ ! कस्मिन् काले महेश्वर ! ।
शिवशक्तिमयं ब्रह्म नित्यानन्दमयं वपुः ॥3॥
नवकन्या-पूजनञ्च श्रुतं विश्वेश्वर ! प्रभो ! ।
कुमारी-पूजनं देव श्रुतं तव प्रसादतः ॥4॥

श्री शिव उवाच —

शृङ्गारं द्वादशविधं विपरीतं चतुर्विधम् ।
चतुर्विधञ्च शैवानां नरेषु करणेषु च ॥5॥

एकबार कैलास-निलय-निवासिनी पार्वती देवी अट्टहास करती हुई गद्गद्वाक्य से बोलीं ॥1॥

श्री पार्वती बोलीं — हे देवदेव ! हे महादेव ! हे विश्वनाथ ! हे सदाशिव ! हे जगदीशान ! मैं काम मन्दिर घर्षण (शृंगार) के विषय में जिज्ञासा कर रही हूँ ॥2॥

हे नाथ ! हे महेश्वर ! काम-मन्दिर घर्षण कैसा होता है ? एवं वैसा किस समय करना चाहिए ? ब्रह्म शिवशक्तिमय नित्यानन्द शरीर-स्वरूप है – ऐसा सुन चुकी हूँ ॥3॥

हे प्रभो ! हे विश्वेश्वर ! नवकन्या के पूजन (के विषय में) सुन चुकी हूँ। हे देव ! आपके अनुग्रह से कुमारी पूजन (के विषय में) भी सुन चुकी हूँ ॥4॥

श्री शिव ने कहा — शृंगार द्वादश प्रकार के हैं। विपरीत शृंगार चार प्रकार के हैं। शैवों का शृंगार चार प्रकार के हैं। हे विश्वेशि ! करण-भूत मनुष्यों में जो इस बात को नही जानता है, वह पशु है। इस विषय में कोई सन्देह

यो न जानाति विश्वेशि ! स पशुर्नात्र संशयः ।
पशोरग्रे न प्रकाश्यं न प्रकाश्यं कथञ्चन ॥6॥
पशुस्तु दारुणः शत्रुः सर्वभाव-विलोपकृत् ।
कल्पकोटिशतेनापि वत्सरेणापि शङ्करि ! ।
न हि सिद्ध्यति विश्वेशि ! सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥7॥
शृङ्गार-रस-लावण्यं यो न जानाति पण्डितः ।
स मूर्खः सर्वशास्त्रेषु शक्ति-भ्रष्टो न संशयः ॥8॥
शृङ्गार-रस-लावण्ये शाक्तानन्दो यथा भवेत् ।
न शैवे वैष्णवे नाऽपि सौरे वा गाणपत्यके ॥9॥
तथानन्दो महेशानि ! जायते न कथञ्चन ।
शिवो जातिः शिवो गोत्रं शिवो धर्मः शिवो मतिः ।
शिवः कर्त्ता शिवः पाता शिवो हर्त्ता शिवात्मकः ॥10॥
शिवो बुद्धिः शिवः शान्तिः शिवो गतिः शिवो मतिः ।
शिवः क्रिया शिवो भक्तिः शिवो मुक्तिः शिवात्मिका ॥11॥

[illegible] में प्रकट न करें, प्रकट न करें ॥5-6॥

[illegible]) भयंकर शत्रु है। हे शङ्करि ! हे विश्वेशि ! [illegible] भी पशु सिद्धिलाभ नहीं कर सकता। यह मैं सत्य, सत्य कह रहा हूँ ॥7॥

जो पण्डित शृङ्गार रस के लावण्य को नहीं जानता है, वह समस्त शास्त्रों में ही मूर्ख है, वह शक्ति-भ्रष्ट है। इसमें संशय नहीं है ॥8॥

हे महेशानि ! शृङ्गार रस के लावण्य में जिस प्रकार शाक्तानन्द होता है, शैव, वैष्णव, सौर या गाणपत्य में उस [illegible] किसी भी प्रकार से नहीं होता है ॥9॥

शिव ही जाति है, शिव ही गोत्र है, शिव ही धर्म है, शिव ही मति है। शिव ही कर्त्ता है, शिव ही पाता (रक्षक) है, शिव ही हर्त्ता (संहारक) है, शिव ही शिवात्मक हैं ॥10॥

शिव ही बुद्धि है, शिव ही शान्ति है, शिव ही गति है, शिव ही मति है, शिव ही क्रिया है, शिव ही भक्ति है, शिव ही शिवात्मक मुक्ति है ॥11॥

शिवोऽहं नात्र सन्देहो जीवोऽहं शिव एव हि ।
इत्येव यस्य मनसि वर्त्तते गिरि-नन्दिनि ! ।
तदैव जायते सिद्धिर्मुक्तिरव्यभिचारिणी ।।12।।
शक्तिमार्गे वरारोहेऽवधूतः शङ्करः स्वयम् ।
अवधूती यस्य रामाऽवधूतस्तु स्वयं भवेत् ।
यत्र कुत्र निवासश्च कैलासो नात्र संशयः ।।13।।
मन्दिरं तस्य कैलासं स्तम्भं मणिमयं स्मृतम् ।
वृक्षाश्च पर्वताश्चैव क्षुद्राः सर्वप्रिये ! शिवे ! ।।14।।
क्षुद्राश्च बान्धवा रुद्राः सुप्रधानाः सदाशिवः ।
भैरवाः किङ्कराः सर्वे भैरव्यश्चेटिका दिकाः ।।15।।
एवं कैलास-भवनं सर्वानन्दकरं परम् ।
मनोरमं सुखमयं सर्वशक्तिमयं तथा ।
सर्वप्रियं गुणमयं सर्वसौख्यादि-सम्भवम् ।।16।।
एवं सर्वमयं सौख्यं यो वेद क्षमातले प्रिये ! ।
सर्वशक्तियुतो भूत्वा विहरेत् क्षिति-मण्डले ।।17।।

हे गिरिनन्दिनि ! मैं शिव हूँ, यह जीव भी शिव ही है - इस प्रकार भाव जिसके मन में रहता है, तभी उसकी सिद्धि एवं अव्यभिचारिणी मुक्ति होती है । इसमें कोई सन्देह नहीं है ।।12।।

हे वरारोहे ! शक्तिमार्ग में अवधूत स्वयं ही शङ्कर-स्वरूप है । जिसकी सुन्दरी स्त्री अवधूती है, वह स्वयं ही अवधूत बन सकता है । उनका वास जिस किसी भी स्थान पर हो, वह स्थान कैलास है - इसमें संशय नहीं है ।।13।।

उनका गृह कैलास-स्वरूप है । (गृह के) सभी स्तम्भ मणिमय हैं-ऐसा कहा गया है । हे सर्वप्रिये शिवे ! वहाँ के सभी क्षुद्र वृक्ष पर्वत स्वरूप हैं ।।14।।

उसके क्षुद्र बान्धवगण रुद्र-स्वरूप हैं, सुप्रधान बान्धवगण सदाशिव-स्वरूप हैं, उनके समस्त भृत्य भैरव-स्वरूप हैं एवं उनकी दासी प्रभृति भैरवी-स्वरूपा हैं ।।15।।

एवंविध कैलास भवन सर्वानन्दकर, परम मनोहर, सुखमय एवं सर्वशक्तिमय है । यह (भवन) सभी के प्रिय, सर्वगुणमय एवं सर्व सौख्यादि के जनक है ।।16।।

हे प्रिये ! इस पृथिवीतल पर जो कैलास को एवं विध सर्वगुणमय, सुखप्रद-रूप में जानता है, वह पृथिवीतल पर सर्वशक्तिमय बनकर विचरण करता है ।।17।।

कृष्णाष्टम्यां नवम्यां वा प्रजपेदयुतं निशि ।
तदा सिद्धिमवाप्नोति मन्त्रध्यानपरःसरम् ॥18॥
एवं क्रिया प्रकर्त्तव्या गुप्ता गुप्ततरा स्मृता ।
गुप्ता गुप्ततरा पूजा प्रकटात् सिद्धिनाशिनी ॥19॥
अन्तः शाक्ता बहिः शैवाः सभायां वैष्णवा मताः ।
नानारूपधराः कौला विचरन्ति महीतले ॥20॥
एवं विधान-सम्भूतं श्रुतं तन्त्रं च मोहनम् ।
कुलज्ञानं कुलीनस्य योगिनीहृदयं श्रुतम् ॥21॥
सम्मोहनं वीरतन्त्रं श्रुतं श्रीतन्त्रमुत्तमम् ।
कुलार्णवं तथा कालीतन्त्रं काली विलासकम् ॥22॥
श्रीकाली कल्पलतिका श्रुता च परमादरात् ।
मतभेदे च गुप्ता सा पूजा प्रकट-नाशिनी ॥23॥

मन्त्रध्यानपूर्वक कृष्णा अष्टमी या कृष्णा नवमी की रात्री में अयुत संख्यक मन्त्र जप करें । वैसा करने पर, सिद्धिलाभ करेंगे ॥18॥

इसी प्रकार पूजा की क्रिया को भी सुन्दर रूप में करनी चाहिए एवं विध पूजा-क्रिया गुप्ता से भी गुप्ततरा है – ऐसा कहा गया है । गुप्ता से भी गुप्ततरा पूजा प्रकट हो जाने पर सिद्धि का नाश हो जाता है ॥19॥

नानारूपधारी कौलगण अन्तर में शाक्त, बाहर शैव, सभा में वैष्णव बनकर महीतल पर विचरण करते हैं – ऐसा कहा गया है ॥20॥

इस प्रकार विधान-जनक मोहन तन्त्र को सुना चुका हूँ । कुलीन के कुलज्ञान का जनक योगिनी-हृदय को सुना चुका हूँ ॥21॥

सम्मोहन, वीरतन्त्र एवं उत्तम श्रीतन्त्र का श्रवण कर चुका हूँ । कुलार्णवतन्त्र, कालीतन्त्र, कालीविलास तन्त्र को भी सुना चुका हूँ ॥22॥

परम आदर के साथ श्रीकाली कल्पलतिका को सुना चुका हूँ । मतभेद में वह पूजा गुप्ता है । इसके प्रकाशित हो जाने पर सिद्धिनाश हो जाता है ॥23॥

अन्तः शाक्ता बहिः शाक्ता क्रिया-शाक्ता वरानने !।
भक्ति-शाक्ता ध्यान-शाक्ताः कामशाक्ता महेश्वरि !।
गतिशाक्ताः शक्तिशाक्ताः सर्वकर्मसु नान्यथा ।।24।।
अन्तः शैवा बहिः शैवाः सभायां वा गृहेऽथवा ।
वैष्णवास्तादृशा एव सर्वकालेषु शङ्करि !।
इत्येवं परमो भावो गदितः सर्वयोनिषु ।।25।।
एवं भावं समाश्रित्य शाक्ता परम-पूजकाः ।
नित्यानन्दमयाः सर्वे त्रिनेत्राश्चन्द्रशेखराः ।।26।।
सदा शक्ति-विहारज्ञ सदानन्द-परिप्लुताः ।
सदानन्दः स विज्ञेयः सर्वकर्मसु कौशलाः ।।27।।
कुलधर्मं समाश्रित्य ये वसन्ति महीतले ।
ते शिवास्ताः शिवा देव्यो भवन्ति कुलधर्मतः ।।28।।
कुलीनः शङ्करो ज्ञेयः कुलीनस्तु हरिः स्वयम् ।
कुलीनो वासवो देवः कुलीनस्तु पितामहः ।।29।।

हे वरानने ! शाक्तगण अन्दर से शाक्त हैं, बाहर से भी शाक्त हैं, क्रिया में भी शाक्त हैं। हे महेश्वरि ! वे लोग भक्ति में शाक्त हैं, ध्यान में शाक्त हैं, काम में शाक्त हैं, गति में शाक्त हैं, समस्त कर्मों की शक्ति में भी शाक्त हैं; वे अन्य प्रकार के नहीं हैं ।।24।

हे शङ्करि ! सभा में अथवा गृह में शैवगण अन्दर से शैव हैं, बाहर भी शैव हैं। सभी कालों में वैष्णवगण भी इसी प्रकार ही हैं अन्दर से वैष्णव हैं, बाहर में भी वैष्णव हैं। समस्त योनियों में इस प्रकार परम भाव को कहा गया है ।।25।

परम पूजक शाक्तगण इस विध भाव का आश्रय कर अवस्थान करते हैं। वे सभी नित्यानन्दमय त्रिनेत्र चन्द्रशेखर के तुल्य हैं ।।26।

वे लोग सर्वदा आनन्द से परिप्लुत होकर सर्वदा शक्ति के साथ विहार करते हैं। उन्हें समस्त कर्मों में कुशल एवं सदानन्दमय रूप से जानें ।।27।।

जो लोग पृथिवीतल पर कुलधर्म का आश्रय करके वास करते हैं, वे लोग कुलधर्म के प्रभाव से शिवस्वरूप बन जाते हैं, उनकी स्त्रियाँ शिवा स्वरूपा बन जाती हैं ।।28।।

देवदेव शङ्कर को कुलीन जानें। स्वयं हरि भी कुलीन हैं। इन्द्र देव भी कुलीन हैं। पितामह भी कुलीन हैं ।।29।।

कुलीना मुनयः सर्वे कुलीनाः पितरः स्वयम् ।
किन्नराश्च कुलीनाश्च नराश्च पशुजीविनः ।।30।।
असुराश्च कुलीनाश्च कुलजा न कुलीनकाः ।
अतो न भक्तिर्नो मुक्तिरसुराणां कदाचन ।।31।।
राक्षसाश्च कुलीनाश्च गन्धर्वाप्सर-यक्षजाः ।
देवीभक्तिं समास्थाय कृतार्थाश्च महीतले ।।32।।
विना दुर्गा-परिज्ञानाद् विफलं पूजनं जपः ।
तपः क्रिया विशुद्धिः स्यादेतत् सर्वमनर्थकम् ।।33।।
मूर्खो वा पण्डितो वापि ब्राह्मणो वा वरानने ! ।
क्षत्रियो वैश्यजः शूद्रश्चाण्डालो वरवर्णिनि ! ।
सर्वे तुल्याश्च शाक्ताश्च एतत् सर्वार्थ साधकम् ।।34।।
शृणु देवि ! वरारोहे ! मम वाक्यं सुनिश्चितम् ।
शृङ्गार-रसलावण्यं कोविदः सर्वकर्मसु ।।35।।
शृङ्गाराज्जायते सृष्टिः शृङ्गाराज्जायते रतिः ।
शृङ्गाराच्छङ्करस्तुष्टः शृङ्गारादपि पार्वती ।।36।।

समस्त मुनिगण कुलीन-स्वरूप हैं। पितृपुरुषगण स्वयं कुलीन-स्वरूप हैं। किन्नरगण कुलीनस्वरूप हैं। पशुजीवी मनुष्यगण एवं असुरगण भी कुलीन बन सकते हैं। किन्तु कुलज होने से ही कुलीन नहीं होता है। अतः अकुलीन असुरगणों में कदापि भक्ति नहीं होती, मुक्ति भी नहीं होती ।।30-31।।

कुलीन राक्षसगण एवं गन्धर्ववंशजात, अप्सरावंशजात, यक्षवंशजात व्यक्तिगण देवीभक्ति का अवलम्बन कर, इस पृथिवी पर कृतार्थ बन जाते हैं ।।32।।

दुर्गा के परिज्ञान के बिना पूजा एवं जप विफल है। तपस्या एवं पूजा-क्रिया की विशुद्धि - ये सभी भी अनर्थक (व्यर्थ) हो जाते हैं - ऐसा जानें ।।33।।

हे वरानने ! हे वरवर्णिनि ! मूर्ख या पण्डित अथवा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं चण्डाल - शाक्त होने पर ही सभी तुल्य बन जाते हैं - यह समस्त पुरुषार्थों का साधन है ।।34।।

हे देवि ! हे वरारोहे ! मेरे इस सुनिश्चित वाक्य का श्रवण करें। शृंगार-रस के लावण्य को जानने पर ही समस्त कर्मों मे पण्डित बन जाते हैं ।।35।।

शृंगार से सृष्टि होती है, शृंगार से रति उत्पन्न होती है। शृंगार से शङ्कर तुष्ट होते हैं। शृंगार से पार्वती भी तुष्टा हो जाती हैं ।।36।।

सन्तुष्टा त्वञ्च सन्तुष्टो ह्यहमेव वरानने ! ।
शृङ्गार-शब्दं ललितं कर्कशं वा सुरेश्वरि ! ॥37॥
शृङ्गार-शब्द-मात्रेण जना यान्ति सद्गतिम् ।
स्त्रियो देव्यः स्त्रियः प्राणाः स्त्रिय एव विभूषणम् ॥38॥
स्त्रीद्वेषो नैव कर्त्तव्यस्तासु निन्दा प्रहारकम् ।
वर्जयेद् देवदेवेशि ! घृणा-लज्जा-विवर्जितः ॥39॥
स्त्रीरूपं तारिणीरूपं यो वेत्ति धरणीतले ।
स श्रीपतिश्च विज्ञेयः स एव पार्वतीपतिः ॥40॥
कुब्जे शनैश्चरे वारे गुरौ वा भार्गवे तथा ।
तृतीयां वा द्वितीयां वा पूजयेद् भक्तिभावतः ॥41॥
प्रथमो भक्ति-सम्पन्नो जनो वापि जनार्दनः ।
आद्यां ज्योतिर्मयीं देवीं चतुर्थीं वापि शङ्करि ! ॥42॥
पूजयेत् पञ्चमीं विद्यां पञ्चमेन विभूषिताम् ।
पञ्चानन-प्रियां दुर्गां पूजयेद् भक्तिभावतः ॥43॥

हे वरानने ! हे सुरेश्वरि ! ललित या कर्कश शृङ्गार शब्द का श्रवण कर, आप सन्तुष्ट हैं, मैं भी सन्तुष्ट हूँ ।।37।।

शृङ्गार शब्द मात्र के द्वारा मनुष्यगण सद्गति को प्राप्त होते हैं । स्त्रीगण समस्त देवीस्वरूपा हैं । स्त्रियाँ प्राणस्वरूपा हैं, स्त्रीगण ही सभी के विभूषण हैं ।।38।।

स्त्री के प्रति द्वेष नहीं करना चाहिए । उनकी निन्दा न करें । हे देवेशि ! उनके प्रति घृणा एवं लज्जा से विवर्जित रहें । उनके ऊपर प्रहार का भी वर्जन करें ।।39।।

इस धरणीतल पर जो व्यक्ति स्त्रीरूप को तारिणी रूप में जानता है, उसे श्रीपति जानें; वही पार्वतीपति है ।।40।।

मङ्गलवार, शनिवार, गुरुवार या शुक्रवार को तृतीया या द्वितीया तिथि में भक्तिभाव से पूजा करें ।।41।।

हे शङ्करि ! प्रथम भक्तिसम्पन्न मनुष्य अथवा लोकपीड़क मनुष्य आद्या ज्योतिर्मयी देवी की अथवा चतुर्थी देवी भुवनेश्वरी की पूजा करे ।।42।।

अथवा पञ्चम के द्वारा विभूषित पञ्चमी विद्या भैरवी की पूजा करे । भक्तिपूर्ण होकर शिवप्रिया दुर्गा की पूजा करें ।।43।।

एषा क्रिया वरारोहे ! सात्त्विकी राजसी तथा ।
तामसी चैव देवेशि ! श्रुता पूजा महेश्वरि ! ॥44॥
या या पूजा निगदिता सा सा पूजा त्वया श्रुता ।
इदानीं कुण्ड-पुष्पेण गोल-पुष्पेण शङ्करि ! ॥45॥
चक्रपुष्पेण शूलेन वज्रपुष्पेण पार्वति ! ।
कालपुष्पेण देवेशि ! पूजयेद् हरवल्लभाम् ॥46॥
तदा सिद्धिमवाप्नोति सत्यं सत्यं न संशयः ।
कुलमार्गरतो जीवः शिव एव न संशयः ॥47॥
कुलधर्मार्थिनो जन्तुर्विचरेत् कुलमार्गके ।
कुलपुष्पं समाश्रित्य कुलीनाश्रममाश्रयेत् ॥48॥
कलौ मत्स्य कलौ मांसं मद्यं मुद्राश्च मैथुनम् ।
यथा दिव्यस्तथा वीरो नास्ति भिन्नः शुचिस्मिते ! ॥49॥
भक्षणात् पञ्चमस्यापि न दोषो जायते नृणाम् ।
अशक्तानामकर्तव्यं सर्वयोनि-विवर्द्धनम् ॥50॥

हे वरारोहे ! यह पूजा क्रिया सात्त्विक, राजसिक एवं तामसिक होती है । हे महेश्वरि ! इन तीन प्रकार की पूजाओं को आपने सुना है ॥44॥

जिस जिस पूजा के विषय में मैंने बताया है, उस उस पूजा को आपने सुना है । हे शङ्करि ! अब मैं कुण्डपुष्प एवं गोलपुष्प के द्वारा की जाने वाली पूजा के विषय में बता रहा हूँ ॥45॥

हे पार्वति ! हे देवेशि ! कुण्डपुष्प के द्वारा, गोलपुष्प के द्वारा, चक्रपुष्प के द्वारा, शूलपुष्प के द्वारा, वज्रपुष्प के द्वारा तथा कालपुष्प के द्वारा हरवल्लभा की पूजा करें ॥46॥

तब सिद्धिलाभ होता है । यह सत्य, सत्य है इसमें कोई संशय नहीं है । कुलमार्ग में रत जीव शिव ही है, इसमें कोई संशय नहीं है ॥47॥

कुलधर्म फल-प्रार्थी व्यक्ति सर्वदा कुलमार्ग में विचरण करे । कुलपुष्प का आश्रय कर कुलीनाश्रम में वास करें ॥48॥

कलिकाल में मत्स्य, मांस, मद्य, मुद्रा एवं मैथुन विहित है । दिव्य जिस प्रकार है, वीर भी उसी प्रकार है । हे शुचिस्मिते ! वे भिन्न नहीं हैं ॥49॥

पञ्चम के भक्षण से मनुष्य में किसी प्रकार का दोष उत्पन्न नहीं होता है । समस्त प्राणियों के सर्वविवर्द्धक मद्यादिक, अशक्त को नहीं करना चाहिए ॥50॥

मद्यपानं न कर्त्तव्यं न कर्त्तव्यं कलौ युगे।
शाक्तानां चैव शैवानां कर्त्तव्यं सर्व सिद्धिदम् ।।51।।
महापीठाश्रमं यानि महापीठस्य दर्शनात्।
महापीठे यजेद् देवीं भक्त्या परम-यत्नतः ।।52।।
पूजयेद् रक्त-पुष्पैश्च रक्तगन्धानुलेपनैः।
बिल्वपत्रैस्तथा पुष्पैर्मणि पुष्पैश्च चम्पकैः ।।53।।
रक्ताम्बुजै रक्तमाल्यै रक्ताभरण भूषणैः।
महिषैश्च यजेद् देवीं मेषजैः क्षतजैरपि ।।54।।
छागलैर्लो हितैर्देवीं गात्रजैर्ब्राह्मणैरपि।
एवं विधि-विधानेन पूजनं तव सुन्दरि! ।।55।।
कर्त्तव्यं जीवलोकेषु गुह्यं तव महेश्वरि!।
एवं तव विधातव्या पूजा त्रिभुवनेश्वरि! ।।56।।
तदा सिद्धेश्वरो भूत्वा गाणपत्यं लभेत् तु सः।
न प्रकाश्यं पशोरग्रे मम दिव्यं सुरेश्वरि! ।।57।।

मद्यपान नहीं करना चाहिए। कलियुग में साधारण लोगों के लिए यह कर्त्तव्य नहीं है, किन्तु शाक्त एवं शैवों के लिए सर्वसिद्धिप्रद मद्यपान कर्त्तव्य है ।।51।।

महापीठ के दर्शन के लिए महापीठाश्रम में गमन करें। परम यत्न के साथ, भक्ति के साथ महापीठ में देवी की पूजा करें ।।52।।

रक्त चन्दन, रक्त अनुलेपन, रक्त पुष्प, [illegible] बिल्वपत्र, मणिपुष्प एवं चम्पकपुष्प के द्वारा देवी की पूजा करें ।।53।।

रक्ताम्बुज, रक्तमाल्य, रक्त आभरण, रक्तभूषण, महिष एवं मेषजात रक्त के द्वारा देवी की पूजा करें ।।54।।

हे सुन्दरि! छाग के रक्त एवं उसके गात्रोत्पन्न रक्त के द्वारा देवी की पूजा करें। ब्राह्मणगण भी इस विधि के अनुसार आपकी पूजा करें ।।55।।

हे महेश्वरि! जीवलोक में आपका यह गुह्य पूजन कर्त्तव्य है। हे त्रिभुवनेश्वरि! इस प्रकार आपकी पूजा का अनुष्ठान (साधक) करे ।।56।।

जो इस प्रकार पूजा करता है, वह सिद्धेश्वर बनकर गाणपत्य का लाभ करता है। हे सुरेश्वरि! मेरे दिव्य (= पूजा) को पशु के समक्ष इसे प्रकाशित नहीं करना चाहिए ।।57।।

पशोर्दर्शनमात्रेण नश्यन्ति धीर-शुद्धयः ।
महासिद्धिकरी पूजा मानसी मुक्तिदायिनी ॥58॥
अन्तर्यागात्मिका सर्व-जीवत्व-परिनाशिनी ।
बाह्यपूजा राजसी च सर्वसौभाग्य-दायिनी ॥59॥
भक्ति-मुक्ति-प्रदा चैव सर्वापत् परिनाशिनी ।
सर्वदोषक्षयकारी सर्वशत्रुनिपातिनी ॥60॥
न वीराणां पशूनाञ्च बाह्यपूजाऽधमाधमा ।
केवलानाञ्च दिव्यानां बाह्य-पूजाधमा इति ॥61॥
तोड़ले यामले देवि ! श्रुता पूजा च विस्तरात् ।
तथापि पूजा संक्षेपात् मयोक्ता गिरिनन्दिनि ! ॥62॥
स्तुतिपाठाद् दृढ़ज्ञानात् पूजनाच्छिव-सुन्दरि ! ।
सुप्रसन्ना महाविद्या-जपात् सिद्धिर्भविष्यति ॥63॥

पशु के दर्शन मात्र से धीरजनों की शुद्धियाँ नष्ट हो जाती है। यह पूजा महासिद्धिकारक है, मानसी पूजा मुक्तिदायिनी है ॥58॥

अन्तर्यागात्मिका समस्त पूजा जीवत्व का नाश करता है। राजसी बाह्य पूजा समस्त सौभाग्य को प्रदान करता है ॥59॥

यह राजसी पूजा भोग एवं मोक्ष को प्रदान करता है, समस्त विपत्तियों का नाश करता है, समस्त दोषों का क्षय करता है, समस्त शत्रुओं का निपात करता है ॥60॥

(यह राजसी पूजा) समस्त रोगों का क्षय करता है, समस्त बन्धनों का भेदन करता है। वीर एवं पशुओं का यह बाह्य-पूजा अधमाधमा नहीं है। केवल दिव्यगणों के लिए यह बाह्यपूजा अधमाधमा है ॥61॥

हे देवि ! तोड़लतन्त्र में एवं यामलतन्त्र में विस्तारपूर्वक आपने पूजा के विषय में सुना है। तथापि हे गिरिनन्दिनि ! यहाँ पर संक्षेप में पूजा के विषय में मैंने बताया है ॥62॥

हे शिवसुन्दरि ! स्तुतिपाठ, दृढ़ज्ञान एवं पूजन से महाविद्या सुप्रसन्ना हो जाती हैं। जप से सिद्धि होती है ॥63॥

जपाद्भक्तिर्जपान्मुक्तिर्जपात् सिद्धिर्जपात् क्रिया ।
जपात् तन्त्रं जपान्मन्त्रं जपाद् यन्त्रं सुरेश्वरि ! ॥64॥
जपात् कान्तिर्जपात्क्रान्तिर्जपाच्छ्रद्धा जपाद् दया ।
जपात् तुष्टिर्जपात् पुष्टिर्जपाद् गतिर्जपान्मतिः ॥65॥
जपाद् बुद्धिर्जपाल्लक्ष्मीर्जपाज् ज्ञानिर्जपात् स्थितिः ।
जपात् शान्तिर्जपाच्छान्तिर्जपाच्छान्तिर्न संशयः ॥66॥

इति मुण्डमालातन्त्रे पार्वतीश्वर संवादे
पञ्चमः पटलः ॥5॥

हे सुरेश्वरि ! जप से भक्ति प्राप्त होती है, जप से मुक्ति प्राप्त होती है। जप से सिद्धि प्राप्त होती है। जप से क्रिया, जप से तन्त्र, जप से मन्त्र एवं जप से यन्त्र की प्रप्ति होती है ॥64॥

जप से कान्ति, जप से क्रान्ति, जप से श्रद्धा, जप से दया, जप से तुष्टि, जप से पुष्टि, जप से गति एवं जप से मति प्राप्त होती है ।।65।।

जप से बुद्धि, जप से लक्ष्मी, जप से ज्ञान एवं जप से स्थिति प्राप्त होती है। जप से शान्ति प्राप्त होती है, शान्ति प्राप्त होती है, क्षान्ति प्राप्त होती है, इसमें कोई संशय नहीं है ॥66॥

मुण्डमालातन्त्र में पार्वतीश्वर सम्वाद में पञ्चम पटल का
अनुवाद समाप्त ॥5॥

षष्ठः पटलः

श्रीदेव्युवाच —

पुरा श्रुतं महादेव ! शवसाधनमेव च ।
श्मशान-साधनं नाथ ! श्रुतं परममादरात् ॥1॥
न स्तोत्रं कवचं नाथ ! श्रुतं न शवसाधनं ।
कवचेन महादेव ! स्तोत्रेणैव च शङ्कर ! ।
कथं सिद्धिर्भवेद् देव ! क्षिप्रं तद् ब्रूहि साम्प्रतम् ॥2॥

शिव उवाच —

शृणु देवि ! वरारोहे ! दुर्गे ! परमसुन्दरि ! ।
सिद्ध्यर्थे विनियोगः स्यात् शङ्करस्य नियन्त्रणात् ॥3॥

दुर्गाकवचम्

सिद्धिं सिद्धेश्वरी पातु मस्तकं पातु कालिका ।
कपालं कामिनी भालं पातु नेत्रं नगेश्वरी ॥4॥
कर्णौ विश्वेश्वरी पातु हृदयं जगदम्बिका ।
काली सदा पातु मुखं जिह्वां नील-सरस्वती ॥5॥

श्री देवी ने कहा — हे महादेव ! [illegible] सुना है। हे नाथ ! [illegible] भी मैंने सुना है ॥1॥

हे नाथ ! [illegible] नहीं सुना है, [illegible] भी नहीं सुना है। हे महादेव ! हे देव ! हे शङ्कर ! कवच के द्वारा एवं स्तोत्र के द्वारा किस प्रकार सिद्धि प्राप्त होती है [illegible] शीघ्र बतायें ॥2॥

श्री शिव ने कहा — हे वरारोहे ! हे परम सुन्दरि ! हे दुर्गे ! शङ्कर के शासन (उपदेश) के अनुसार सिद्धि [illegible] कवच का प्रयोग किया जाता है ॥3॥

दुर्गा कवच

सिद्धेश्वरी सिद्धि की रक्षा करें। [illegible] मस्तक की रक्षा करें। कामिनी कपाल एव ललाट की रक्षा करें। नगेश्वरी नेत्र की रक्षा करें ॥4॥

विश्वेश्वरी दोनों कर्णों की रक्षा करें। जगदम्बिका हृदय की रक्षा करें। काली सर्वदा मुख की रक्षा करें। नील सरस्वती जिह्वा की रक्षा करें ॥5॥

करौ कराल-वदना पातु नित्यं सुरेश्वरी ।
दन्तं गुह्यं नखं नाभिं पातु नित्यं हिमात्मजा ॥6॥
नारायणी कपोलञ्च गण्डागण्डं सदैव तु ।
केशं मे भद्रकाली च दुर्गा पातु सुरेश्वरी ॥7॥
पुत्रान् रक्षतु मे चण्डी धनं पातु धनेश्वरी ।
स्तनौ विश्वेश्वरी पातु सर्वाङ्गं जगदीश्वरी ॥8॥
उग्रतारा सदा पातु महानील-सरस्वती ।
पातु जिह्वां महामाया पृष्ठं मे जगदम्बिका ॥9॥
हरप्रिया पातु नित्यं श्मशाने जगदीश्वरी ।
सर्वान् पातु च सर्वाणी सदा रक्षतु चण्डिका ॥10॥
कात्यायनी कुलं पातु सदा च शववाहिनी ।
घोरदंष्ट्रा करालास्या पार्वती पातु सर्वदा ॥11॥
कमला पातु बाह्यं मे मन्त्रं मन्त्रेश्वरी तथा ।
इत्येवं कवचं देवि देवानामपि दुर्लभम् ॥12॥

करालवदना सुरेश्वरी दोनों हाथों की सर्वदा रक्षा करें । हिमात्मजा दन्त, गुह्य, नाभि एवं नखों की नित्य रक्षा करें ॥6॥

नारायणी कपोल एवं गण्डद्वय की सर्वदा रक्षा करें । सुरेश्वरी भद्रकाली दुर्गा केश की रक्षा करें ॥7॥

चण्डी मेरे पुत्रों की रक्षा करें । धनेश्वरी धन की रक्षा करें । विश्वेश्वरी स्तनद्वय की रक्षा करें । जगदीश्वरी सर्वाङ्ग की रक्षा करें ॥8॥

उग्रतारा महानील सरस्वती सर्वदा मेरी रक्षा करें । महामाया जिह्वा की रक्षा करें । जगदम्बिका पृष्ठ की रक्षा करें ॥9॥

जगदीश्वरी हरप्रिया सर्वदा मेरी रक्षा करें । सर्वाणी सभी की रक्षा करें । चण्डिका मेरी सर्वदा रक्षा करें ॥10॥

शववाहिनी कात्यायनी सर्वदा कुल की रक्षा करें । घोरदंष्ट्रा करालास्या पार्वती सर्वदा रक्षा करें ॥11॥

कमला मेरे बाह्यदेश की रक्षा करें । मन्त्रेश्वरी मेरे मन्त्र की रक्षा करें । हे देवि ! इस प्रकार यह कवच देवताओं के लिए भी दुर्लभ है ॥12॥

यः पठेत् सततं भक्त्या सिद्धिमाप्नोति निश्चितम् ।
सिद्धिकाले समुत्पन्ने कवचं प्रपठेत् सुधीः ॥13॥
अज्ञात्वा कवचं देवि ! यश्च सिद्धिमुपक्रमः ।
स च सिद्धिं न वाप्नोति न मुक्तिं न च सद्गतिम् ॥14॥
अतएव महामाये ! कवचं सिद्धिकारकम् ।
देवानाञ्च नराणाञ्च किन्नरगणाञ्च दुर्लभम् ।
पठित्वा कवचं चण्डि ! शीघ्रं सिद्धिमवाप्नुयात् ॥15॥
महोत्पाते महादुःखे महाविपदि सङ्कटे ।
प्रपठेत् कवचं देवि ! पठित्वा मोक्षमाप्नुयात् ॥16॥
शून्यागारे श्मशाने वा कामरूपे महाघटे ।
स्ववामा-मन्दिरे कालेऽप्यथवा काममन्दिरे ।
मन्त्री मन्त्रं जपेद् बुद्ध्या भक्त्या परमया युतः ॥17॥
मूले दले फले वाप्यनले कालेऽनिलेऽनले ।
जले पठेत् प्राणबुद्ध्या मनसा साधकोत्तमः ॥18॥

जो सर्वदा भक्ति के साथ इस कवच का पाठ करता है, वह निश्चय ही सिद्धिलाभ करता है। सुधी व्यक्ति सिद्धिकाल उपस्थित होने पर कवच का पाठ करें ॥13॥

हे देवि ! इस कवच को न जानकर जो सिद्धि लाभ के लिए प्रयत्न करता है, वह सिद्धि लाभ नहीं करता है, मोक्ष को भी प्राप्त नहीं करता, सद्गति का लाभ भी नहीं करता है ॥14॥

हे महामाये ! इसलिए यह कवच सिद्धिकारक है। [illegible] देवगण, मनुष्यगण एवं किन्नरगण के लिए भी दुर्लभ है। हे चण्डि ! कवच का पाठ करने पर शीघ्र सिद्धि लाभ करता है ॥15॥

हे देवि ! महा उत्पात में, महान् दुःख में, महाविपत्ति में, एवं महासङ्कट में इस कवच का पाठ करें। इस कवच का पाठ करने से मोक्षलाभ किया जा सकता है ॥16॥

मन्त्री [illegible] भक्ति युक्त होकर शून्यागार में, श्मशान में, कामरूप में, महाघट में, [illegible] मन्दिर में अथवा काममन्दिर में ज्ञानपूर्वक मन्त्र जप करें ॥17॥

साधकोत्तम मूल में, दल में, फल में, अनल में अथवा अनिल में एवं जल में, शुद्ध [illegible] (= [illegible]) मन के द्वारा जप करें ॥18॥

नाड़ीशुद्धिं ततः कृत्वा भावशुद्धिं महेश्वरि ।
विहरेद् धरणी-मध्ये सर्वशास्त्रार्थकोविदः ।
चितामारुह्य सिद्धेशो नीलकण्ठत्वमाप्नुयात् ॥१९॥
वामे चलति कालिन्दी दक्षिणे खलु जाह्नवी ।
मध्ये कुलाचला नाड़ी दुर्लभा धरणीतले ॥२०॥
चित्रिणी पद्मिनी शङ्खा विजृम्भा शोणदा तथा ।
कङ्काला कुटजा वीणा कपोला शोणजा खला ।
निजदेहे वसन्त्येता ब्रह्मनाड़ी समाश्रिताः ॥२१॥
सर्वासां धारणी मध्ये गौरी सूक्ष्मा च चित्रिणी ।
घण्टाकर्णा लोलजिह्वा विकटा चन्द्रवल्लभा ॥२२॥
महानीला वीरभद्रा मनजा नर्मदा प्रभा ।
बलाका काकिनी रक्ता कालघण्टा शिवा सिता ॥२३॥
दर्दुरा च दुरगन्धा विशोका वदनाऽनघा ।
जृम्भिणी पक्ववशा शोणा यशोदा नर्मदा नदा ॥२४॥
खगा खगवती नाड़ी कोला हेला हलाहला ।
इड़ा च पिङ्गला चैव सुषुम्ना प्राणरूपिणी ॥२५॥

हे महेश्वरि ! [illegible] भावशुद्धि करके पृथिवी पर विचरण करे [illegible] सिद्धेश्वर बनकर नीलकण्ठत्व का लाभ करता है ॥19॥

[illegible] कुलाचला नाड़ी विद्यमान है । वह पृथिवी में दुर्लभ है ॥20॥

[illegible] शोणजा [illegible] ब्रह्मनाड़ी [illegible] हैं ॥21॥

[illegible] इन [illegible] में गौरी, सूक्ष्मा, चित्रिणी, [illegible] महानीला, वीरभद्रा, [illegible] शिवा, सिता, दर्दुरा, दुरगन्धा, विशोका, [illegible] यशोदा, नर्मदा, नदा, खगा, खगवती, [illegible] – ये नाड़ियाँ अवस्थित हैं । इनमें इड़ा, पिङ्गला एवं सुषुम्ना – [illegible] अर्थात् प्रधान हैं ॥22-25॥

गान्धारी कोटराक्षी च कुलजा कुलपण्डिता ।
सव्ये कनखला नाड़ी दक्षिणे कामपालिका ॥26॥

विहारं नीलकण्ठस्य देवानामपि दुर्लभम् ।
क्रोड़े विश्वम्भरा कामा कराला पद्मवाहिनी ॥27॥

घनभा घनदा चण्डी सुशीला वरपण्डिता ।
विश्वाख्या विश्वरमणी बहुपादा कटाक्षजा ।
नन्दिनी शोणदा गङ्गा काशी कमलवासिनी ॥28॥

एवं यदि महामाये ! भावयेत् सुरपूजिताम् ।
तदैव जायते सिद्धिः सत्यं सत्यं न संशयः ॥29॥

बहुपादकटा घोरा निर्जिता घनभेदिनी ।
नाड़ी-विहार-सम्पर्काज्जीवन्मुक्तो न संशयः ॥30॥

शृणु देवेशि ! घोराभे ! करालास्ये ! दिगम्बरे ! ।
चिन्तामणि-प्रसादेन किं न सिद्ध्यति भूतले ॥31॥

वाम में गान्धारी, कोटराक्षी, कुलजा एवं कुलपण्डिता नाड़ी अवस्थित है एवं दक्षिण में कनखला, कामपालिका नाड़ी अवस्थित है ॥26॥

नीलकण्ठ का विहार-स्थान देवगणों के लिए भी दुर्लभ है। क्रोड़ में विश्वम्भरा, कामा, कराला, पद्मवाहिनी, घनभा, घनदा, चण्डी, सुशीला, वरपण्डिता, विश्वाख्या, विश्वरमणी, बहुपादा, कटाक्षजा, नन्दिनी, शोणदा, गङ्गा, काशी एवं कमलवासिनी अवस्थित है ॥27-28॥

हे महामाये ! सुरपूजिता देवी की भावना इसी प्रकार करे। तभी सिद्धि उत्पन्न होती है। यह सत्य, सत्य है। इसमें कोई संशय नहीं है ॥29॥

बहुपदा, कटा, घोरा, निर्जिता एवं घनभेदिनी – इन सभी नाड़ियों के विहार के सम्बन्ध में (सम्बन्धित होने पर) जीव जीवन्मुक्त हो जाता है। इसमें कोई संशय नहीं है ॥30॥

हे देवेशि ! हे घोराभे ! हे करालास्ये ! हे दिगम्बरे ! सुनें। इस पृथिवी पर, चिन्तामणि के प्रसाद से कौन-सी सिद्धि नहीं होती है अर्थात् समस्त ही सिद्ध हो जाती है ॥31॥

मूले चतुर्दले पद्मे स्वाधिष्ठाने च षड्दले ।
मणिपूरेऽनाहते च विशुद्धाज्ञाख्यके प्रिये ! ।।32।।
एवं चक्रं परिन्यस्तं दश-द्वादश-षोडशैः ।
दलैस्तु शङ्करं वर्णं न्यस्तं परमतत्त्वतः ।।33।।
यजेत् कालीपुरं देवि ! ब्रह्माद्यैः परिसेवितम् ।
नीलकण्ठं त्रिलोकेशं सहस्राब्ज-निवासिनम् ।।34।।
कोटीशं कुलकोटीशं साधकेन्द्रैः सुशोभितम् ।
ध्यायेत् परम-निर्विण्णो देवः परम-पावनः ।।35।।
जीवः शिवस्तु विज्ञेयो विशेषः सर्वदा रतिः ।
ब्रह्मतत्त्वं वरारोहे ! देवानामपि दुर्लभम् ।।36।।
स्वरादि-निष्ठितं लिङ्गं स्वर-व्यञ्जन-भूषितम् ।
वर्णमाला-परिव्यस्तं लिङ्गं भुवन-शोभितम् ।।37।।

हे प्रिये ! मूलाधार में चतुर्दल पद्म में, स्वाधिष्ठान में षड्दलपद्म में, मणिपुर में दशदल पद्म में, अनाहत में, विशुद्ध में तथा आज्ञाचक्र में परमतत्त्व शङ्कर की पूजा करे। इन्हीं क्रम से ये चक्र विन्यस्त हैं तथा दश, द्वादश तथा षोडश दलों के द्वारा युक्त हैं तथा वर्णों से युक्त न्यस्त हैं ।।32-33।।

हे देवि ! ब्रह्मादि देववृन्द के द्वारा परिसेवित कालीपुर की पूजा करे। सहस्रार पद्म-निवासी त्रिलोकेश नीलकण्ठ की पूजा करे ।।34।।

परम निर्वेदयुक्त होकर, साधकेन्द्रों के द्वारा सुशोभित कोटीश एवं कुल-कोटीश का ध्यान करे। यह देव परम पवित्र कारक है ।।35।।

जीव को शिवरूप जाने। इनमें सर्वदा रति को ही विशेष (ज्ञान-रूप में) जाने। हे वरारोहे ! ब्रह्मतत्त्व देवगणों के लिए भी दुर्लभ है ।।36।।

स्वरादिवर्णों में अधिष्ठित लिङ्ग स्वर एवं व्यञ्जन के द्वारा भूषित है। भुवन-शोभित लिङ्ग, वर्णमाला के द्वारा परिव्याप्त है ।।37।।

महाबीजं महोत्साहैर्नादितं परमार्थकम् ।
नीलकण्ठं महादेवं मदा शक्ति-ममन्वितम् ।
ध्यायेत् तु पृजयेद् देवं मनमा वचमा तथा ॥38॥
तदैव माधको लोके चान्तर्याग परायणः ।
अन्तर्यागं महामाये माधकानामगम्यकम् ॥39॥
ब्रह्माण्डं वै शरीरन्तु मर्वेषां प्राण-धारिणाम् ।
ब्रह्माण्डे ये गुणा मन्ति ते तिष्ठन्ति कलेवरे ॥40॥
शरीरं तत्त्वघटितं नानारस-परिप्लुतम् ।
चन्द्रबिन्दु-समायुक्तं नादबिन्दु-विभूषितम् ॥41॥
शरीरं शङ्करस्थापि दुर्लभं मुक्तिदायकम् ।
यावन्मुक्तिर्महामाये ! तावदेव हि माधकः ॥42॥
तावत् क्रिया च भक्तिश्च मुक्तिरव्यभिचारिणी ।
महाघोरे समाक्लेशे शरीरं ब्रह्मणः पद्म ।
पारिजात-प्रसूनञ्च देहजं मर्वमङ्गलम् ॥43॥

महा उत्साह के साथ परमार्थ-साधक महाबीज के नादित (—अव्यक्त शब्द में प्रकाशित) अर्थात् अव्यक्तरूप में प्रकाशित करे। शक्ति समन्वित नीलकण्ठ महादेव का सर्वदा ध्यान करें एवं वाक्य तथा मन के द्वारा देवदेव की पूजा करें ।।38।।

तभी इस लोक में साधक अन्तर्याग-परायण बन जाते हैं। हे महामाये ! अन्तर्याग को साधकों के लिए अगम्य जानें ।।39।।

समस्त प्राणियों का यह शरीर ब्रह्माण्ड स्वरूप है। इस ब्रह्माण्ड में जो समस्त गुण हैं, इस शरीर में वे समस्त गुण हैं ।।40।।

यह शरीर तत्त्वघटित नाना रसों के द्वारा परिप्लुत है, चन्द्रबिन्दु के द्वारा समायुक्त है एवं नादतत्त्व तथा बिन्दुतत्त्व से विभूषित है ।।41।।

यह मुक्तिदायक शरीर शंकर के लिए दुर्लभ है। हे महामाये ! जब तक मुक्ति नहीं होती है, तब तक साधक है, तब तक क्रिया है, तब तक भक्ति है। इसके बाद अव्यभिचारी मुक्ति है। महाघोर में एवं महाकष्ट में इस शरीर की ब्रह्मस्थान-रूप में भावना करें ।।42-43।।

गृहीत्वा कालिकां देवीं मुण्डमालाविभूषिताम् ।
पूजयेत् परया भक्त्या शिव एव न संशयः ॥44॥
ब्रह्माण्ड-घटितां मूर्त्तिं मूर्द्धजैश्च विभूषिताम् ।
चतुर्भुजां लोलजिह्वां नानाशक्ति-समन्विताम् ।
पूजयेत् परमानन्दो निजशक्ति-समन्वितः ॥45॥
वामे स्ववामां देवेशि ! नानालङ्कार-भूषिताम् ।
कुचावाक्रम्य देवेशि ! प्रजपेन् तु समः शिवः ॥46॥
निज-चक्रे करालास्यां मुक्तकेशो दिगम्बरः ।
सहस्रं वायुतं वापि जपेन्मदन-मन्दिरे ॥47॥
श्वेतं वा लोहितं वापि कुसुमं पञ्चमान्वितम् ।
एवं विधि-विधानेन महाकाल्यै निवेदयेत् ॥48॥
दिवा पूजा विधातव्या निशि पूजा महेश्वरि ! ।
सन्ध्या पूजा प्रकर्त्तव्या सदा सिद्धिमवाप्नुयात् ॥49॥

देहजात सर्वमङ्गला पारिजात-कुसुम को ग्रहण कर, मुण्डमाला विभूषिता कालिका देवी की पूजा परम भक्ति के साथ करे। इससे शिव बन जाते हैं। इसमें संशय नहीं है ॥44॥

परमानन्द साधक निज शक्ति से समन्वित होकर, केश-विभूषिता, चतुर्भुजा, लोलाजिह्वा, नानाशक्ति-समन्विता, ब्रह्माण्ड-घटिता मूर्त्ति की पूजा करे ॥45॥

हे देवेशि ! अपने वाम भाग में, नानालङ्कारों से भूषिता अपनी स्त्री को बैठाकर उसके स्तनद्वय का आक्रमण कर, जप करे। वैसा करने पर, शिवतुल्य बन जावेंगे ।46॥

मुक्त केश एवं दिगम्बर होकर, काम मन्दिर में अपने चक्र में कराल-वदना महाकाली की पूजा करे अथवा दस हजार या एक हजार जप करे ॥47॥

इस प्रकार विधि-विधान के द्वारा महाकाली को पञ्चमान्वित श्वेत या लोहित पुष्प निवेदन करें ॥48॥

हे महेश्वरि ! दिवा में पूजा का अनुष्ठान करे। रात्रि में भी पूजा करे एवं सन्ध्या में भी पूजा करे। वैसा करने पर सिद्धिलाभ कर लेते हैं ॥49॥

न दिवा न निशाभागे न सन्ध्यायां कदाचन।
पूजयेन्न जगद्धात्रीं मोहेन परिपूजयेत् ॥50॥
दिवा न पूजयेद् देवीं रात्रौ नैव च नैव च।
सर्वदा पूजयेद देवीं दिवारात्रौ न पूजयेत् ॥51॥
यथा इड़ा पिङ्गला च सुषुम्ना ब्रह्म-भेदिनी।
नाड़ीभ्रमण-सम्पर्कान्मुक्तिं प्राप्नोति साधकः ॥52॥
विना नाड़ी-परिज्ञानं विना नाड़ी निषेवणम्।
विना बिल्वकरं देवि! न हि सिद्ध्यति भूतले ॥53॥
सव्ये बिल्वं करे दक्षे मालां संगृह्य साधकः।
प्रजपेत् पार्वती-मन्त्रं सर्व-कार्यार्थ-सिद्धये ॥54॥
घोरदंष्ट्रां करालाम्यामट्टहासां दिगम्बराम्।
प्रणम्य भक्त्या देवेशीं जपेच्चिन्तामणिं मनुम् ॥55॥
चिन्तामणि-प्रसादेन किं न सिद्ध्यति भूतले।
चिन्तामणिं कल्पलतां गृहीत्वा परमां शिवाम्।
जपत्वा महामनुं चण्डि! देव-देवेश्वरो भवेत् ॥56॥

कदापि जगद्धात्री की पूजा दिन में न करें, निशाभाग में पूजा न करें, सन्ध्या में भी पूजा न करें। लोग मोहवश पूजा करते हैं ॥50॥

दिन में जगद्धात्री की पूजा न करें। रात्रि में तो कदापि नहीं। सर्वदा देवी की पूजा करें। किन्तु दिवारात्रि में पूजा न करें। 51॥

जिस प्रकार इड़ा, पिङ्गला एवं सुषुम्ना ब्रह्मनाड़ी का भेदन करती हुई गयी है, साधक उन नाड़ियों के भ्रमण के ज्ञान से मुक्तिलाभ करता है ॥52॥

हे देवि! इन सभी नाड़ियों के ज्ञान, इन सभी नाड़ियों की भावना एवं बिल्वकर के बिना भूतल पर कोई सिद्धिलाभ नहीं करता है ॥53॥

साधक वाम हस्त में बिल्व एवं दक्षिण हस्त में माला का ग्रहण कर, समस्त कार्यार्थों की सिद्धि के लिए पार्वतीमन्त्र का जप करें ॥54॥

घोरदंष्ट्रा, करालास्या, अट्टहासा, दिगम्बरा देवेशी को भक्ति के साथ प्रणाम कर, चिन्तामणि-मन्त्र का जप करें ॥55॥

चिन्तामणि के अनुग्रह से भूतल पर क्या सिद्ध नहीं होता है अर्थात् समस्त ही सिद्ध होता है। हे चण्डि! कल्पलता, चिन्तामणि-तुल्या, परमा शिवा को ग्रहण कर, महामन्त्र का जप करके (साधक) देवदेवेश्वर बन सकता है ॥56॥

जीवः शिवत्वं लभते ज्ञानात् तु वर वर्णिनि ।
गुरुपादाब्जकं देवि ! रहस्यं परमाद्भुतम् ॥57॥
विचित्रं चारुपादाब्जं पार्वत्या शङ्करस्य च ।
भजेदैक्यं विधानेन जीवन्मुक्तः स एव हि ॥58॥
पिण्डे युक्ताः पदे युक्ता रूपे युक्ता वरानने ! ।
गुणातीताश्च ये भक्तास्ते मुक्ता नात्र संशयः ॥59॥

श्री पार्वत्युवाच —

न पिण्डं न पदं रूपं न जानामि सुरोत्तम् ! ।
कथ्यतां मे दयासिन्धो ! निश्चितं मतमुत्तमम् ॥60॥

श्री शिव उवाच —

गुह्याद् गुह्यतरं देवि सारमेकं वदाम्यहम् ।
पिण्डं कुण्डलिनीशक्तिः पदो हंसः प्रकीर्त्तितः ।
रूपश्चापि वरारोहे ! ध्यानमेव न संशयः ॥61॥
महाकुण्डलिनीं देवीं यो भजेत् तु भुजङ्गिनीम् ।
स कृतार्थः स धन्यश्च स देवो वीरसत्तम ॥62॥

हे वरवर्णिनि ! ज्ञान से जीव शिवत्व का लाभ करता है । हे देवि ! गुरु का पादपद्म परम अद्भुत रहस्यमय है ॥57॥

जो (साधक) विधान के अनुसार पार्वती एवं शङ्कर के विचित्र एवं सुन्दर पादपद्म में ऐक्य की भावना करता है, वही जीवन्मुक्त हो जाता है ॥58॥

हे वरानने ! जो भक्तगण पिण्ड में (कुलकुण्डलिनी शक्ति में) युक्त (रत) हैं, जो भक्त, पद में (परम शिव में) युक्त हैं, जो भक्त, उनके रूप में (=ध्यान में) युक्त हैं, वे भक्तगण मुक्त हैं, इसमें संशय नहीं है ॥59॥

श्री पार्वती ने कहा — हे सुरोत्तम ! मैं पिण्ड को नहीं जानती, पद को नहीं जानती, रूप को भी नहीं जानती । हे दयासिन्धो ! इस विषय में उत्तम निश्चित मत को मुझे बतावें ॥60॥

श्री शिव ने कहा — हे देवि ! गुह्य से गुह्यतर एक सार तत्त्व को मैं बताऊँगा । पिण्ड हैं कुण्डलिनी शक्ति । पद हंस (परमशिव) कहे गये हैं । हे वरारोहे ! ध्यान ही रूप है; इसमें संशय नहीं है ॥61॥

जो भुजङ्गिनी महाकुण्डलिनी की भजना करता है, वह कृतार्थ है, वह धन्य है, वह देव है एवं वह वीरसत्तम है ॥62॥

स गुणी साधको ज्ञानी स मानी स च पण्डितः ।
स कृती सर्व-ब्रह्माण्डे देवत्वं लभते ध्रुवम् ॥63॥
ये दिव्याः साधकेन्द्राश्च ये वीराः साधकोत्तमाः ।
पशवः पशवो ज्ञेयाः सर्वशास्त्रार्थ-कोविदाः ॥64॥
भावशुद्धिं समास्थाय सर्वशास्त्रार्थ-कोविदः ।
साधको मुक्तिमाप्नोति सत्यं सत्यं वरानने ! ॥65॥
शृणु देवि ! जगद्धात्रि ! सर्वमङ्गल-मङ्गलम् ।
तन्त्रञ्च शृणुयाद् देवि ! ब्रह्मनिर्वाणमाप्नुयात् ॥66॥
निशाभागे जपेन्मन्त्रं वामायुक्तो महेश्वरि ! ।
अयुतं भक्ति-भावेन जीवन्मुक्तः स एव हि ॥67॥
सहस्रमयुतं वापि कुजवारे निशामुखे ।
जपेच्चिन्तामणिं मन्त्रं क्ष्मातले नात्र संशयः ।
चिन्तामणि-प्रसादेन किं न सिद्ध्यति भूतले ॥68॥
यथाविधि-विधानञ्च कृत्वा च मन्मथालयम् ।
व्रजेत् तु भक्तिभावेन स गच्छेत् परमां गतिम् ॥69॥

वह गुणी है, वह साधक है, वह ज्ञानी है, वह मानी है, वह पण्डित है। वह समस्त ब्रह्माण्ड में कृती है। वह निश्चय ही देवत्व का लाभ करता है ॥63॥

जो व्यक्ति दिव्य हैं, वे साधकेन्द्र हैं। जो व्यक्ति वीर हैं, वे साधकोत्तम हैं। पशुगण समस्त शास्त्रार्थ में पण्डित होने पर भी उन्हें 'पशु' ही जानें ॥64॥

हे वरानने ! समस्त शास्त्रार्थवित् साधक व्यक्ति भावशुद्धि का आश्रय करके मुक्ति को प्राप्त होते हैं। यह सत्य सत्य है ॥65॥

हे देवि ! हे जगद्धात्रि ! समस्त मङ्गलों के मङ्गल तन्त्र का श्रवण करें। वैसा करने पर, ब्रह्मनिर्वाण का लाभ करें ॥66॥

हे महेश्वरि ! स्त्री-युक्त होकर निशाभाग में जो भक्तिमान् साधक, भक्तिभाव से दस हजार मन्त्र का जप करता है, वह जीवन्मुक्त होता है ॥67॥

इस पृथिवी पर, मङ्गलवार को निशामुख में एक हजार या दस हजार चिन्तामणि-मन्त्र का जप करें। इसमें कोई संशय नहीं है कि, चिन्तामणि के अनुग्रह से इस पर भूतल क्या सिद्ध नहीं होता है ? अर्थात् सब कुछ सिद्ध होता है ॥68॥

जो साधक यथाविधि अनुष्ठान कर, भक्तिभाव से मन्मथ-गृह (काम-मन्दिर) में गमन करता है, वह परम गति का लाभ करता है ॥69॥

नभोगतं महापद्मं सर्वदेवैः सुपूजितम् ।
तन्मध्यस्थं महादेवं नीलकण्ठं सदाशिवम् ॥70॥
महाशक्ति-युतं देवि ! सर्वानन्दं मनोहरम् ।
शुक्लं रक्तं नीलवर्णं पीतादिवर्ण-शोभितम् ॥71॥
मनसा चिन्तितं देवि ! देवं परम-कारणम् ।
ध्यानञ्च मनसा देवि ! मनसा परिपूजितम् ।
मनसा पूजयेल्लिङ्गं मनसा तर्पणादिकम् ॥72॥
मनसा कालिकां तारां मनसा तु भुजङ्गिनीम् ।
मनसा ब्रह्मनाड़ीं वै विद्ध्यात् सर्वकामदाम् ॥73॥
इत्येवं ध्यानयोगेन मनसा जगदम्बिकाम् ।
पूजयेत् परया बुद्ध्या स विश्वेशो भवेद् ध्रुवम् ॥74॥
सुषुम्ना-मध्यगां कालीं करालवदनां शिवाम् ।
प्रणमेत् पार्वतीं देवीं महानील-सरस्वतीम् ॥75॥
उग्रतारा क्रमं वक्ष्ये देवानामपि दुर्लभम् ।
त्रिकोण वलयाम्भोजे महानील-सरस्वतीम् ।
महाबुद्धि-स्वरूपेण भावयेत् तामहर्निशम् ॥76॥

नभोगत (= मस्तकगत) महापद्म सर्वदेवों के द्वारा सूपूजित है । हे देवि ! महाशक्तियुक्त सर्वानन्दमेय शुक्ल, रक्त, नील, एवं पीतादि वर्णशोभित मन के द्वारा चिन्तनीय है, मन के द्वारा पूजनीय है, मन के द्वारा ध्येय, परम कारणों के कारण, मनोहर, नीलकण्ठ, महादेव, सदाशिव देव की पूजा करें, मन के द्वारा तर्पणादि करें ।।69-72।।

मन के द्वारा तारा एवं कालिका की पूजा करे । मन के द्वारा भुजङ्गिनी कुलकुण्डलिनी की पूजा करें । समस्त कामप्रदा ब्रह्मनाड़ी के भावना मन के द्वारा करें ।।73।।

जो साधक एकाग्रचित से मन के द्वारा एवं विधि ध्यान करने के साथ ही साथ जगदम्बिका की पूजा करता है, वह निश्चय ही विश्वेश्वर बन जाता है ।।74।।

सुषुम्ना नाड़ी के मध्यगत कराल-वदना काली को, शिवंगृहिणी पार्वती देवी को एवं महानील सरस्वती देवी को प्रणाम करें ।।75।।

(सम्प्रति) देवताओं के लिए दुर्लभ उग्रतारा देवी की पूजा के क्रम को बताऊँगा । त्रिकोण वलय पद्म में उन महानील सरस्वती देवी की भावना, महाबुद्धि-स्वरूप में करें ।।76।।

हृत्पद्मे भावयेच्चण्डीं हृत्पद्मे भावयेच्छिवम् ।
हृत्पद्मे भावमासाद्य पूजयेद् वरवर्णिनि ! ॥77॥
यावन्नानात्व-भावश्च तावदेवं पृथग्विधम् ।
तावत् क्रिया पृथग् भावा तावन्नानाविधा मता ॥78॥
तावद्भिन्नाश्च देवाश्च ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वराः ।
गणेशश्च दिनेशश्च वह्निं वरुणमेव च ।
कुबेरश्चापि दिक्पालमेतत् सर्वं पृथक्-पृथक् ॥79॥
तावन्नानाविधाश्चेष्टाः स्त्री-नपुंसक-पुङ्गवाः ।
तावद् बिल्वदलं भिन्नं देवेशि ! तुलसी-दलात् ॥80॥
तावज्जवा-द्रोण-कृष्णा-करवीराणि भूतले ।
विभिन्नानि च देवेशि ! सत्यं वै तुलसीदलात् ॥81॥
तावद् दिव्यश्च वीरश्च तावत् तु पशुभावकः ।
तावत् मन्त्रे भेदबुद्धिस्तावद् देवे पृथक् क्रिया ॥82॥

हृत्पद्म में चण्डी की भावना करे । हृत्पद्म में शिव की भावना करे । हे वरवर्णिनि ! भाव का अवलम्बन कर हृत्पद्म में पूजा करे ।।77।।

जब तक भेदभाव रहता है, तब तक समस्त ही पृथक्-पृथक् है । तब तक पृथक्-पृथक् भावों की क्रिया भी नानारूप होती हैं-ऐसा कहा गया है ।।78।।

तब तक ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर प्रभृति देवगण भिन्न-भिन्न हैं । गणेश, सूर्य, वरुण, वह्नि, कुबेर एवं दिक्पालगणों को (साधक ऐसा) सोचते हैं कि ये भिन्न-भिन्न हैं ।।79।।

तब तक नानारूप चेष्टाएँ की जाती है । स्त्री, पुरुष एवं नपुंसक में भेद (भावना) रहती है । हे देवेशि ! तब तक तुलसी पत्र से बिल्वपत्र को (साधक) भिन्न (रूप में) सोचता है ।।80।।

हे देवेशि ! भूतल पर, तब तक जवा, द्रोण, अपराजिता एवं करबीर में तुलसी-पत्र से, सत्य सत्य ही भेद (भावना) रहती है ।।81।।

तब तक ही दिव्य एवं वीर हैं, तब तक ही पशु हैं । तब तक ही तन्त्र में भेदबुद्धि है । तब तक ही देवताओं के लिए पृथक्-पृथक् पूजा-क्रिया की जाती है ।।82।।

हरौ हरे भेदबुद्धिर्जायते जगदम्बिके ! ।
करालवदना काली श्रीमदेकजटा शिवा ॥83॥
षोडशी भैरवी भिन्ना भिन्ना च भुवनेश्वरी ।
छिन्ना भिन्नाऽन्नपूर्णा च भिन्ना च बगलामुखी ॥84॥
मातङ्गी कमला भिन्ना भिन्ना वाणी च राधिका ।
भिन्ना चेष्टा क्रिया भिन्ना भिन्न आचार-संग्रहः ॥85॥
यावन्नैक्यं पादपद्मे भवान्या नैव जायते ।
अद्वैते तारिणीपाद-पद्मे परम-पावने ॥86॥
ज्ञानपारे समुत्पन्ने हृत्पद्म-निलये तथा ।
ऐक्यं भवति चार्वङ्गि ! सर्व ब्रह्ममयात्मकम् ॥87॥
(ऐक्यं भवति देवेशि !) सर्वजीवेषु शङ्करि ! ।
न च पापं न वा पुण्यं न यमो नरकं न च ।
न सुखं नापि दुःखञ्च न रोगेभ्यो भयं तथा ॥88॥

हे जगदम्बिके ! तब तक ही हरि एवं हर में, मनुष्यों में भेदबुद्धि उत्पन्न होती है। करालवदना काली, श्रीमत् एकजटा शिवा से भिन्न रहती हैं ।।83।।

(तब तक) षोडशी एवं भैरवी भिन्ना हैं। (तब तक) भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, अन्नपूर्णा भिन्ना हैं। (तब तक) बगलामुखी भी भिन्ना है ।।84।।

(तब तक) मातङ्गी एवं कमला भिन्ना हैं; वाणी एवं राधिका भिन्ना हैं; चेष्टाएँ भिन्ना हैं; क्रियाएँ भिन्ना हैं; आचार समूह भी भिन्न हैं ।।85।।

जब तक भवानी के पादपद्म में ऐक्य ज्ञान उत्पन्न नहीं होता है; जब तक परम पावन तारिणी के अद्वैत (एक) पादपद्म में ऐक्य-ज्ञान उत्पन्न नहीं होता है, तब तक यह भेद रहता है ।।86।।

हे चार्वङ्गि ! हृत्पद्म-गृह में ज्ञान का पार (= पराकाष्ठा) उत्पन्न होने पर, समस्त ही ब्रह्ममय है – एवं विध ऐक्य ज्ञान उत्पन्न होता है ।।87।।

हे देवेशि ! समस्त जीव को यह ऐक्यज्ञान (प्राप्त) हो सकता है। हे शङ्करि ! यह ऐक्यज्ञान उत्पन्न होने पर, पाप नहीं है, पुण्य नहीं है, यम (मृत्यु) नहीं है, नरक नहीं है, सुख नहीं है, दुःख नहीं है। इसी प्रकार, रोग से भय भी नहीं है ।।88।।

न भयं नापि शोकश्च सर्वं ब्रह्ममयात्मकम्।
ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या वैश्यजा शूद्रजाऽन्त्यजा ॥89॥

तथैव तारिणी-विद्या यथा विद्या तथा तथा।
एवं ज्ञानं महेशानि! यथा वै जायते प्रिये! ॥90॥

तथैव विद्या देवेशि! विद्या-विद्या-विरोधिनी।
जायते नात्र सन्देहो ब्रह्मनन्दमयो भवेत् ॥91॥

अद्वैतञ्च गुणातीतं निर्गुणं प्रकृतेः परम्।
परमानन्द-संयुक्तो मुक्तिं यास्यति निश्चितम् ॥92॥

इति सत्यं पुनः सत्यं सत्यं चण्डि! वरानने!।
तत्त्वज्ञानात् परं नास्ति नास्ति देवः सदाशिवात् ॥93॥

नास्ति भावस्तु मध्यस्थान् नास्ति दुर्गा-समं पद्म।
सोऽहं सोऽहं पुनः सोऽहं सोऽहमित्येव जायते ॥94॥

(तब) भय नही है, शोक भी नही है। तब समस्त ही ब्रह्ममयस्वरूप हैं। जिस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य हैं, उसी प्रकार वैश्यजात, शूद्रजात एवं अन्त्यज भी हैं अर्थात् उस समय उनमे कोई भेद नही रहता ।।89।।

अन्यान्य विद्याएँ जिस प्रकार हैं, यह तारिणी विद्या भी उसी प्रकार है, उनमें कोई भेद नहीं है। हे महेशानि! हे प्रिये! एवं विधिज्ञान जिस प्रकार उत्पन्न होता है, हे देवेशि! उसी प्रकार अपराविद्या एवं अविद्या विरोधिनी विद्या भी उत्पन्न होती है। इस विषय मे कोई सन्देह नहीं है। उस समय समस्त ही ब्रह्मानन्दमय बन जाता है। ।।90-91।।

परमानन्द संयुक्त साधक निर्गुण गुणातीत अद्वैत को प्रकृति से भिन्न जानकर निश्चय ही मुक्तिलाभ कर लेते हैं ।।92।।

हे वरानने! हे चण्डि! यह सत्य है, यह सत्य है। यह सत्य है कि तत्त्वज्ञान से श्रेष्ठ ज्ञान नही है और सदाशिव से श्रेष्ठ देवता कोई नहीं है ।।93।।

मध्यस्थ भाव से श्रेष्ठ भाव नही है। दुर्गा के तुल्य स्थान भी नहीं है। मैं वही हूँ। वही मैं हूँ। एवं विधि 'सोऽहं' ज्ञान बार-बार उत्पन्न होता है ।।94।।

तदेव चिरकालेन सोऽहं ज्ञानं प्रजायते।
नानात्वबुद्धिं कृत्वा वै सात्त्विकीं परमात्मिकाम् ॥95॥
गृहीत्वा च वरारोहे! जायते पमार्थवित्।
ज्ञानात् परतरं नास्ति नास्ति नास्ति वरानने! ॥96॥
लब्ध्वा हि तत्त्वं परमं मुच्यते देह-बन्धनात्।
कुलवारे कुलीनस्तु कुलधर्मं कुलव्रतम् ॥97॥
आश्रयेत् परमानन्दः परमानन्दमेव च।
न कुलीने परा बुद्धिर्न कुलीने परा गतिः ॥98॥
न कुलीने परा मुक्तिर्न कुलीने परा क्रिया।
एवं वदति यो जन्तुः स मुक्तिं न च याति वै ॥99॥
इहैव स्वर्गो देवेशि! इह कैलास-मन्दिरम्।
इहैव भुक्तिर्भक्तिश्च मुक्तिरव्यभिचारिणी ॥100॥
भोगः स्वर्गश्च मोक्षश्च करस्थश्चैव शङ्करि!।
शाक्तानां त्रिपुरेशानि! सत्यं वच्मि न संशयः ॥101॥

चिरकाल के लिए वह 'सोऽहं' ज्ञान उत्पन्न होता है। हे वरारोहे! परमात्म-विषयक सात्त्विक नानात्व बुद्धि का परित्याग कर, ऐक्य बुद्धि को ग्रहण कर, (साधक) परमार्थवित् बन जाता है। हे वरानने! ज्ञान से श्रेष्ठतर और कुछ भी नहीं है, नहीं है ।।95-96।।

(साधक) परम तत्त्व का लाभ करके देह-बन्धन से मुक्त हो जाता है। कुलीन कुलवार में कुलधर्म का एवं कुलव्रत का आश्रय ले ।।97।।

परमानन्द का साधक परमानन्द का आश्रय ले। कुलीन में श्रेष्ठ बुद्धि नहीं है। कुलीन में श्रेष्ठ गति नहीं है ।।98।।

कुलीन में श्रेष्ठ मुक्ति नहीं है। कुलीन में श्रेष्ठ क्रिया नहीं है। — इस प्रकार की बातें जो जीव करता है, वह मुक्तिलाभ नहीं करता ।।99।।

हे देवेशि! इस पृथिवी पर ही स्वर्ग है। इस पृथिवी पर ही कैलास मन्दिर है। इस पृथिवी पर ही भोग, भक्ति एवं अव्यभिचारी मुक्ति विद्यमान है ।।100।।

हे शङ्करि! हे त्रिपुरेशानि! शाक्तगणों के लिए भोग, स्वर्ग एवं मोक्ष करतलस्थित है। यह मैं सत्य कह रहा हूँ। इसमें कोई संशय नहीं है ।।101।।

श्रीपार्वत्युवाच —

नीलकण्ठ ! महादेव ! महेश्वर ! जगद्दुर्गे ! ।
पृच्छामि परमं तत्त्वं ब्रूहि नाथ। जगत्-प्रभो ! ।।102।।
कथं वा जायते भक्तिर्मुक्तिर्भुक्तिर्महेश्वरः ।
जीवः शिवत्वं लभते केन रूपेण शङ्कर ! ।।103।।

श्री शिव उवाच —

विश्वेश्वरि ! जगद्धात्रि ! महामाये ! महेश्वरि ! ।
गुह्याद् गुह्यतरं वाक्यं शृणुष्व नगनन्दिनि ! ।।104।।
शान्तं दान्तं कुलीनञ्च सर्व-शास्त्रार्थ-कोविदम् ।
एवं गुरुं महेशानि ! आश्रयेत् भक्तिभावतः ।।105।।
ततः प्रथमतो लब्ध्वा गुरुं परमकारणम् ।
गृह्णीयात् परमं मन्त्रं देव्याश्च वरवर्णिनि ! ।।106।।
सेतुं च कुल्लुकां कृत्वा मन्त्रसङ्केतकं तथा ।
समयाचार-सङ्केतं ज्ञानभावं समभ्यसेत् ।।107।।

श्री पार्वती ने कहा — हे नीलकण्ठ ! हे महादेव ! हे महेश्वर ! हे जगद्दुर्गे ! मैं परम तत्त्व की जिज्ञासा कर रही हूँ। हे नाथ ! हे प्रभो ! आप बतावें ।।102।।

हे महेश्वर ! किस प्रकार से भोग, भक्ति एवं मुक्ति उत्पन्न होती है। हे शङ्कर ! जीव किस प्रकार से शिवत्व का लाभ करता है ।।103।।

श्री शिव ने कहा — हे विश्वेश्वरि ! हे जगद्धात्रि ! हे महामाये ! हे महेश्वरि ! हे नगनन्दिनि ! गुह्य से गुह्यतर वाक्य का श्रवण करें ।।104।।

हे महेश्वरि ! जो शान्त, दान्त, कुलीन एवं समस्त शास्त्रार्थ में पण्डित हैं, एतादृश व्यक्ति को भक्तिभाव से गुरु बनाकर (मानकर) उनका आश्रय लें ।।105।।

हे वरवर्णिनि ! उसके बाद पहले परमकारण-गुरु का लाभ कर, देवी के श्रेष्ठ मन्त्र को, उन गुरु के निकट से ग्रहण करें ।।106।।

सेतु, कुल्लुका, मन्त्र-सङ्केत एवं समयाचार सङ्केत करके ज्ञान-भाव का अभ्यास करें ।।107।।

पूजयेत् परया भक्त्या पार्वतीं पटलक्रमात् ।
यथा गुरु-विधानेन पूजयेत् परदेवताम् ॥108॥
चतुर्भुजां दशभुजां सहस्रभुज-संयुताम् ।
लोलजिह्वां करालास्यां मुण्डमाला-विभूषिताम् ॥109॥
प्रणमेत् प्रजपेद् ध्यायेद् देवीं द्रव्यैः प्रपूजयेत् ।
जवापराजिता-द्रोण —करवीरैर्मनोहरैः ॥110॥
पूजयेद् रक्तकुसुमैः सुगन्धैश्चारुशोभनैः ।
नानापुष्पैश्च देवेशि ! पूजयेद् भक्ति-भावतः ॥111॥
पाद्यार्घ्याचमनीयाधैर्नानाद्रव्यैर्मनोहरैः ।
गन्धैः पुष्पैश्च धूपैश्च दीपैरम्बर-भूषणैः ॥112॥
नैवेद्यैर्विविधैर्द्रव्यैस्ताम्बूलैश्चर्वणोत्कटैः ।
पुनराचमनीयैश्च पूजयेद् जगदम्बिकाम् ॥113॥
एवं पूजा विधातव्या यथा शक्त्या वरानने ! ।
पूजयित्वा च प्रणमेत् पार्वतीं तन्त्रजैस्तवैः ॥114॥

तन्त्रों के क्रमानुसार परम भक्ति के साथ पार्वती की पूजा करें । गुरु के विधान के अनुसार, यथाविधि पर-देवता की पूजा करें ॥108॥

चतुर्भुजा, दशभुजा अथवा सहस्रभुजा, लोलजिह्वा, करालास्या मुण्डमालाविभूषिता देवी की पूजा करें एवं ध्यान करें ॥109॥

उन्हें नाना द्रव्यों के द्वारा एवं जवा, अपराजिता, द्रोणपुष्प एवं मनोहर करवीर पुष्प के द्वारा पूजा करें एवं प्रणाम करें तथा उनके मन्त्र का जप करें ॥110॥

हे देवेशि ! भक्तिभाव से मनोहर, सुन्दर, सुगन्ध रक्तपुष्प के द्वारा एवं अन्यान्य नाना प्रकार के पुष्पों के द्वारा देवी की पूजा करें ॥111॥

पाद्य, अर्घ्य, आचमन प्रभृति के द्वारा मनोहर नाना द्रव्यों के द्वारा, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप वस्त्र एवं भूषण के द्वारा जगदम्बिका की पूजा करें ॥112॥

विविध द्रव्ययुक्त अनेक नैवेद्य, चर्वण काल में तीव्र गन्ध देनेवाले अनेक ताम्बुलों के द्वारा एवं आचमनीय के द्वारा जगदम्बिका की पूजा करें ॥113॥

हे वरानने ! शक्ति के अनुसार इस प्रकार जगदम्बिका की पूजा करनी चाहिए । इस प्रकार पूजा कर प्रणाम करें एवं तन्त्रोक्त स्तव के द्वारा स्तुति करें ॥114॥

स्तोत्रस्य कवचस्यापि पठनाद् जगदम्बिके ! ।
भक्ति-मुक्ति-प्रदा चण्डी भक्तिदा सर्वमङ्गला ॥115॥
बाह्यपूजा प्रकर्त्तव्या गुरुवाक्यानुसारतः ।
अन्तर्यागात्मिका पूजा बाह्यपूजा महेश्वरि ! ।
सर्वपूजा विधातव्या यावद् ज्ञानं न जायते ॥116॥
एवं विधि-प्रमाणेन जपेन तपसापि वा ।
माहेशी सा प्रसन्नाऽभूत् स्तवेन कवचेन च ॥117॥
ततो देवी महेशानि ! सिद्धविद्या यदा भवेत् ।
तदेव पूजया सिद्धिः क्रियया बुद्धियुक्तया ॥118॥
एवं देव्यनुग्रहतो ज्ञानमुत्पद्यते खलु ।
तदा कालात्यये चण्डि ! या भक्तिः सा च निष्फला ।
केवला प्रेयसी भक्तिर्महादेवस्य भाविनी ॥119॥

श्री पार्वत्युवाच –

श्रुतं परम-तन्त्रं वै सारात् सारं परात् परम् ।
यच्छ्रुत्वा मोक्षमाप्नोति कर्मपाश- निकृन्तनात् ॥120॥

हे जगदम्बिके ! स्तोत्र एवं कवच के पाठ से सर्वमङ्गला भक्तिप्रदा चण्डी प्रसन्न होकर भक्ति एवं मुक्ति प्रदा बन जाती हैं ॥115॥

गुरु के वाक्य के अनुसार बाह्य पूजा उत्तमरूप से करनी चाहिए । हे महेश्वरि ! जब तक तत्त्वज्ञान उत्पन्न नहीं होता है, तब तक बाह्य पूजा, अन्तर्यागात्मिका पूजा – समस्त पूजा ही करनी चाहिए ॥116॥

इस विधि प्रमाणक स्तव, कवच, जप एवं तपस्या के द्वारा वह महेश्वरी प्रसन्न हुई थीं ॥117॥

हे महेशानि ! उसके बाद देवी जब सिद्धविद्या बनती हैं, तभी बुद्धियुक्त (ज्ञान के साथ) पूजा क्रिया के द्वारा सिद्धि प्राप्त होती है ॥118॥

तब एवंविध देवी के अनुग्रह से निश्चय ही तत्त्वज्ञान उत्पन्न होता है । हे चण्डि ! कालातीत में (अकाल में) जो भक्ति है, वह भक्ति सम्पूर्ण निष्फल है । महादेव के प्रति भावयुक्त भक्ति ही केवल प्रेयसी बनती है ॥119॥

श्री पार्वती ने कहा – सार से भी सार, श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ, परम तत्त्व का श्रवण कर चुकी हूँ । जिसका श्रवण करके जीवगण कर्मपाश का छेदनपूर्वक मोक्ष का लाभ करते हैं ॥120॥

श्री शिव उवाच —

शृणु देवि ! वरारोहे ! ममैव निश्चितं वचः ।
विना दुर्गा-परिज्ञानाद् विफलं पूजनं जपः ॥121॥
दुर्गा हि परमो मन्त्रो दुर्गा हि परमो जपः ।
दुर्गा हि परमं तीर्थं दुर्गा हि परमा क्रिया ।
दुर्गा हि परमा भक्तिर्दुर्गामुक्तिर्महीतले ॥122॥
बुद्धिर्निद्रा क्षुधा छाया शक्तिस्तृष्णा तथा क्षमा ।
दया तुष्टिश्च पुष्टिश्च शान्तिर्लक्ष्मीर्मतिश्च या ॥123॥
क्रिया सर्वा वरिष्ठा च वैदिकी तान्त्रिकी च या ।
एतत् सर्वं हि दुर्गा हि दुर्गाभिन्नं न तज्जपः ॥124॥
भजेद् दुर्गापद-द्वन्द्वं स्मरेद् दुर्गामहर्निशम् ।
प्रजपेद् ! देवि ! दुर्गेति मन्त्रं परम-कारणम् ॥125॥
य एवं भक्तिमास्थाय प्रकरोति क्रियां शिवे ! ।
सर्वसिद्धियुतो भूत्वा विहरेत् क्षितिमण्डले ॥126॥

श्री शिव ने कहा — हे वरारोहे ! हे देवि ! मेरे निश्चित वाक्य का श्रवण करें । दुर्गा के परिज्ञान के बिना पूजा एवं जप विफल है ।।121।।

दुर्गा ही परम मन्त्र है, दुर्गा ही परम जप है । दुर्गा ही परम तीर्थ है । दुर्गा ही श्रेष्ठ क्रिया है । दुर्गा ही परम भक्ति है । इस महीतल पर दुर्गा ही परम मुक्ति है ।।122।।

बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, छाया, शक्ति, तृष्णा, क्षमा, दया, तुष्टि, पुष्टि, शान्ति, लक्ष्मी एवं मति – ये सभी दुर्गा हैं ।।123।।

वैदिक एवं तान्त्रिक – जो समस्त क्रियाएँ सभी की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं, वे समस्त क्रियाएँ ही दुर्गा, दुर्गा से भिन्न नहीं है । उनका जप भी दुर्गा से भिन्न नहीं है ।।124।।

दुर्गा के पदयुगल की वन्दना करे । दिवारात्रि दुर्गा का स्मरण करे । हे देवि ! परम कारण 'दुर्गा' इस मन्त्र का जप करे ।।125।।

हे शिवे ! इस प्रकार भक्ति का अवलम्बन कर जो पूजादि क्रिया को सुन्दर रूप से करता है, वह समस्त सिद्धियों से युक्त होकर क्षितिमण्डल पर विचरण करता है ।।126।।

नानातन्त्रे पृथक् चेष्टा मयोक्ता गिरिनन्दिनि !।
ऐक्यं ज्ञानं यदा देवि ! तदा सिद्धिमवाप्नुयात् ॥127॥

स्थावरे जङ्गमे चैव यदा तुल्यमना भवेत् ।
किन्न सिद्ध्यति विश्वेशि ! परत्रेह च पार्वति ! ॥128॥

एवं भक्तिश्च भुक्तिश्च मुक्तिश्च जगदम्बिके !।
तत्त्वज्ञानं तदैवान्ते ततो निर्वाणमाप्नुयात् ।
एवं वै कथितं चण्डि ! किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥129॥

श्री पार्वत्युवाच —

श्रुतं परम-तत्त्वं वै श्रुतं परम-सादरात् ।
श्रुतं काल्याश्च चरितं तारायाश्च श्रुतं मया ॥130॥

इदन्नु श्रोतुमिच्छामि मन्त्रसिद्धिः कथं भवेत् ।
विद्यासिद्धिः कथं देव ! तद् वदस्व दयानिधे ! ॥131॥

हे गिरिनन्दिनि ! नाना तन्त्रों में मैंने पृथक्-पृथक् क्रियाओं को बताया है। जब ऐक्य का ज्ञान होता है, तभी (साधक) सिद्धि-लाभ करता है ।।127।।

स्थावर एवं जंगम में जो (साधक) जब तुल्यमना बन जाता है, अर्थात् जब स्थावर एवं जंगम को समान-रूप से जानता है, हे विश्वेशि ! हे पार्वति ! उसके इहलोक में एवं परलोक में क्या सिद्धि नहीं होती है अर्थात् समस्त ही सिद्धि होती है ।।128।।

हे जगदम्बिके ! एवं विध प्रकार से तब उस (साधक) की भक्ति, भोग एवं मुक्ति होती है एवं उसे तत्त्वज्ञान भी होता है। उसके बाद देहान्त होने पर वह निर्वाणलाभ करता है। हे चण्डि ! इस प्रकार मैंने सब कुछ बताया है। पुनः आप क्या सुनने की इच्छा रखती है ? ।।129।।

श्री पार्वती ने कहा — मैं परम आदर के साथ परम तत्त्व का श्रवण कर चुकी हूँ। श्री काली के चरित्र एवं तारा के चरित्र का श्रवण कर चुकी ।।130।।

सम्प्रति मन्त्रसिद्धि किस प्रकार से होती है — इसे सुनने की इच्छा करती । हे दयानिधे ! विद्यासिद्धि किस प्रकार से होती है, उसे बताइये ।।131।।

श्री शिव उवाच —

इदानीं शृणु देवेशि ! मन्त्र-सिद्धेस्तु कारणम् ।
मन्त्रार्थं मन्त्रचैतन्यं जामले कथितं मया ।।132।।

डामरे च श्रुतं चण्डि ! कुलोड्डीशे कुलार्णवे ।
संक्षेपेण वदिष्यामि मन्त्रसिद्धेस्तु कारणम् ।।133।।

किं बहुक्त्या महेशानि ! गुरु-भक्त्या च सिद्ध्यति ।
कुलवारे महेशानि ! सहस्रमयुतं जपेत् ।।134।।

शनैश्चरे चतुर्दश्याममायां कुजवासरे ।
स्थित्वा कुलासने ज्ञानी मन्त्रसिद्धि-परायणः ।।135।।

अयुतं भक्तिभावेन सहस्रं वा वरानने ! ।
अन्तर्यागं ततः कृत्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।।136।।

अश्वत्थे वटमूले वा निम्ब-विल्वमूलेऽथवा ।
पूजयेत् परया बुद्ध्या मन्त्रसिद्धिं जनो लभेत् ।।137।।

श्री शिव ने कहा — हे देवेशि ! मन्त्र-सिद्धि के कारण को बता रहा हूँ, श्रवण करें। मन्त्रार्थ एवं मन्त्रचैतन्य को मैंने यामलतन्त्र में बताया है ।।131।।

हे चण्डि ! डामर तन्त्र में, कुलोड्डीश तन्त्र में एवं कुलार्णव तन्त्र में मन्त्रसिद्धि के कारण को मैंने बताया है। यहाँ पर संक्षेप में मन्त्रसिद्धि के कारण को मैं बताऊँगा ।।133।।

हे महेशानि ! अधिक और क्या बताऊँ ? गुरुभक्ति के द्वारा मन्त्रसिद्धि होती है। हे महेशानि ! कुलवार में एक हजार या दस हजार मन्त्र जप करें ।।134।।

हे वरानने ! मन्त्रसिद्धि परायण ज्ञानी व्यक्ति कुलासन पर उपवेशन कर, चतुर्दशी या अमावस्या को, शनिवार या मंगलवार को दस हजार या भक्तिभाव से एक हजार मन्त्र जप करें। इसके बाद अन्तर्याग करके (वह) सर्वसिद्धियों की अधिपति बन सकता है ।।135-136।।

अश्वत्थ वृक्ष के मूल में, वटवृक्ष के मूल में, निम्ब अथवा बिल्व वृक्ष के मूल में एकाग्र मन से जगदम्बिका की पूजा करें। ऐसा करने पर साधक मन्त्रसिद्धि लाभ करता है ।।137।।

विश्वेश्वरि ! महामाये ! सर्वविघ्नविनाशिनि ! ।
एवं मासत्रयं कुर्यादन्तर्यागेन सुन्दरि ।
तदा सिद्धिमवाप्नोति सत्यं सत्यं न संशयः ॥138॥
सुषुम्नान्तः स्थितां देवीं पद्मकिञ्जल्क-वासिनीम् ।
ध्यायेन्नाड़ी-विशुद्धेन मन्त्रासिद्धिरनुत्तमा ॥139॥
अथवा शृणु चार्वङ्गि ! क्रियाहीनं मतं मम ॥
केवलं ध्यानमास्थाय मन्त्रसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ॥140॥
कालिकां हृदयाम्भोजे ध्यायेत् परमदेवताम् ।
योग-सिद्धिं समास्थाय मन्त्रसिद्धिर्भवेत् नृणाम् ॥141॥
पुराऽवस्था निगदिता दुर्लभा या महीतले ।
सा पृच्छा ते निगदिता किन्न सिध्यति भूतले ॥142॥
शक्ति-जामलके सिद्धेश्वरतन्त्रे कुलाचले ।
विद्यासिद्धिर्निगदिता दुर्लभा धरणीतले ॥143॥

हे विश्वेश्वरि ! हे महामाये ! हे सर्वविघ्न विनाशिनि ! हे सुन्दरि ! इस प्रकार तीन महीने तक अन्तर्याग के द्वारा देवी की आराधना करे । वैसा करने पर (साधक) सिद्धि लाभ करता है । यह सत्य, सत्य है । इसमें कोई संशय नहीं है ॥138॥

सुषुम्ना के मध्य में अवस्थिता पद्म के सर वासिनी देवी का ध्यान नाड़ी विशुद्धि के द्वारा करे । वैसा करने पर, अति उत्तम मन्त्रसिद्धि होती है ॥139॥

अथवा हे चार्वङ्गि ! मेरे क्रियाहीन मत का श्रवण करें । केवल ध्यान का आश्रय करके निश्चय ही मन्त्रसिद्धि हो सकती है ॥140॥

योगशक्ति का आश्रय करके हृत्पद्म में पर देवता कालिका का ध्यान करे । वैसा करने पर, मनुष्यों को मन्त्रसिद्धि प्राप्त होती है ॥141॥

इस पृथिवीतल पर, मन्त्रसिद्धि की पूर्वावस्था को मैंने प्रकट किया है (= बताया है) । जो दुर्लभ है, मैंने उन प्रश्नो के उत्तरों को बता दिया है । इस पृथिवीतल पर क्या सिद्धि नहीं होता ? अर्थात् समस्त ही सिद्धि होता है ॥142॥

इस पृथिवी पर दुर्लभ विद्यासिद्धि को मैंने शक्तियामल में, सिद्धेश्वर-तन्त्र में एवं कुलाचल में बताया है ॥143॥

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा ।।144।।

बगला सिद्धविद्या च मातङ्गी कमलात्मिका।
एता दश महाविद्याः सिद्धिविद्याः प्रकीर्त्तिताः ।।145।।

एषा विद्या प्रकटिता सर्वतन्त्रेषु गोपिता।
सर्वसिद्धि-प्रदा नित्या नित्यानन्द-मयी शिवा ।।146।।

विद्यासिद्धिर्महेशानि! भविष्यति यदा भवेत्।
इन्द्रत्वं चन्द्रवदने! चन्द्रत्वं वा वरानने! ।।147।।

कुबेरत्वं शिवत्वं वा विष्णुत्वं विश्वमोहिनि!।
तत्क्षणाद् देव-देवेशि! जायते नात्र संशयः ।।148।।

विद्यासिद्धिः प्रकरणं पूर्वोक्तं त्रिपुरेश्वरि!।
इदानीं कथयाम्यत्र विद्यासिद्धिमनुत्तमाम् ।।149।।

श्मशानेऽश्वत्थमूले वा शवे वा शून्य-मन्दिरे।
प्रजपेत् कालिकां तारां महाविद्या प्रसीदति ।।150।।

काली, तारा, महाविद्या षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, महाविद्या धूमावती, बगला, सिद्धविद्या मातङ्गी एवं कमला ये दस महाविद्या 'सिद्धविद्या' के नाम से कीर्त्तिता हैं ।।144-145।।

समस्त तन्त्रों में गुप्त इस विद्या को प्रकट रूप से कहा गया। यह नित्य आनन्दमयी विद्या सर्वसिद्धिप्रदा एवं शिवा (कल्याणकारिणी) है ।।146।।

हे महेशानि! हे वरानने! जब विद्यासिद्धि होती है, तब हे चन्द्रवदने! इन्द्रत्व या चन्द्रत्व उत्पन्न होता है ।।147।।

हे विश्वमोहिनि! हे देवदेवेशि! जब विद्या सिद्ध होती है, तब कुबेरत्व, शिवत्व या विष्णुत्व उत्पन्न होता है, इसमें कोई संशय नहीं है ।।148।।

हे त्रिपुरेश्वरि! पहले विद्या सिद्धि का प्रकरण कहा गया है। सम्प्रति यहाँ पर अति उत्तम विद्या सिद्धि को कह रहा हूँ ।।149।।

श्मशान में, अश्वत्थमूल में अथवा शव में अथवा शून्य मन्दिर में कालिका तारा के मन्त्र का जप करे। इससे महाविद्या प्रसन्न होती है ।।150।।

जपेन तपस्या स्तोत्रैरन्तर्यागैर्मनोहरैः ।
पूजनैः कवचैर्देवि ! महाविद्या प्रसीदति ।।151।।
अनेनैव विधानेन पूजनं यः करोत्यहो ! ।
सुप्रसन्ना जगद्धात्री महामाया प्रसिद्ध्यति ।
कथितं मे जगद्धात्रि ! किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।।152।।

पार्वत्युवाच —

श्रुतं सिद्धेः कारणन्तु सर्वसिद्धिकरं परम् ।
यज्ज्ञात्वा मोक्षमाप्नोति जीवः परम-कोविदः ।।153।।
मन्त्रसिद्धेर्महाविद्या-सिद्धेः कारणमग्रतः ।
नानातन्त्रं श्रुतं देव-देव ! विश्वेश्वर ! प्रभो ! ।।154।।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि नीलकण्ठ ! सदाशिव ! ।
माहात्मयं कालिकायाश्च तारायाश्च सुरेश्वर ! ।।155।।
श्रोतुमिच्छाम्यहं नाथ ! यतस्त्वं कालिकापतिः ।
तारापतिस्त्वं देवेश ! वद शीघ्रं सदाशिव ! ।।156।।

हे देवि ! जप के द्वारा, तपस्या के द्वारा, स्तोत्रों के द्वारा, मनोहर अन्तर्यागों के द्वारा, पूजाओं के द्वारा, कवचों के द्वारा महाविद्या प्रसन्न होती हैं ।।151।।

जो साधक इस विधान के द्वारा देवी की पूजा करता है, महामाया जगद्धात्री उसके प्रति प्रसन्न हो जाती हैं, सिद्धि भी सिद्ध हो जाती है ।।152।।

मन्त्रसिद्धि के कारण एवं महाविद्या सिद्धि के कारण को आगे कहा जा रहा है । हे जगद्धात्रि ! मेरे निकट पुनः किस विषय को सुनने की इच्छा आप रखती हैं ? ।।153।।

पार्वती ने कहा — इस सर्वसिद्धि-कारी श्रेष्ठ मन्त्रसिद्धि के कारण को मैंने सुना है । श्रेष्ठ पण्डित जीव जिसे जानकर मोक्षलाभ कर लेता है ।।154।।

हे प्रभो ! हे देवदेव ! हे विश्वेश्वर ! मन्त्रसिद्धि एवं महाविद्यासिद्धि के कारण को मैंने पहले सुना है, नाना तन्त्रों को भी सुना है । हे नीलकण्ठ ! हे सदाशिव ! हे सुरेश्वर ! सम्प्रति कालिका एवं तारा के माहात्म्य को सुनने की इच्छा कर रही हूँ ।।155।।

हे नाथ ! सम्प्रति मैं (इसे) सुनने की इच्छा करती हूँ । चूँकि आप कालिकापति तारा के पति हैं । हे देवेश्वर सदाशिव ! आप शीघ्र बतावें ।।156।।

श्री शिव उवाच —

धन्यासि पतिभक्तासि चार्वङ्गि ! शृणु मद्वचः ।
कालिकायाश्च तारया माहात्म्यं सिद्धिदायकम् ॥157॥
यथा काली तथा तारा एकदैव हि भिन्नता ।
दक्षांशा चैव वामांशा यथानुक्रम-मारतः ॥158॥
न हि काली-समा पूज्या न हि काली-समं फलम् ।
न हि काली-समं ज्ञानं न हि काली-समं तपः ॥159॥
तस्यैव धन्या जननी धन्यस्तस्य पितामहः ।
धन्यं कुलं यशश्चण्डि ! येन काली समर्चिता ॥160॥
काली तारा समा विद्याचारे स्तुति-विचारणे ।
यन्त्रे मन्त्रे फलं तुल्यं न विशेषः कथञ्चन ॥161॥
इत्येवं भेदबुद्ध्या तु कथितं चरितं प्रिये ! ।
अभेदबुद्ध्या देवेशि सर्वास्तुल्या न संशयः ॥162॥

श्री शिव ने कहा — हे चार्वङ्गि ! आप धन्या पतिभक्ता हैं, आप मेरे वाक्यों का श्रवण करें। सिद्धिदायिका कालिका एवं तारा के माहात्म्य का श्रवण करें ॥157॥

काली जैसी हैं, तारा भी वैसी हैं। दक्ष स्कन्ध एवं वाम स्कन्ध जिस प्रकार क्रमानुसार से भिन्न हैं, काली एवं तारा भी उसी प्रकार एक ही समय में भिन्न हैं ॥158॥

काली के समान पूज्या नही है। काली के समान फल नही है। काली के समान ज्ञान नही है। काली के समान तपस्या नही है ॥159॥

हे चण्डि ! जिन्होंने काली की अर्चना सम्यक्‌रूप से किया है, उन्ही की जननी धन्या हैं, उनके पितामह धन्य हैं। उनका कुल धन्य है, उन्हीं का यश धन्य है ॥160॥

काली एवं तारा की विद्या तुल्या हैं। आचार मे, स्तुति के विचार में, मन्त्र मे एवं यन्त्र में फल तुल्य हैं, कोई विशेष (भिन्नता) नहीं है ॥161॥

हे प्रिये ! इस प्रकार भेदबुद्धि के अनुसार, उनके चरित को कहा गया है। हे देवेशि ! अभेदबुद्धि मे समस्त ही तुल्य हैं, इसमें संशय नहीं है ॥162॥

श्रीमदेकजटा देवि ! उग्रतारा सरस्वती।
व्यालानां दमने कृष्ण-रक्षणे यमुना-जले ॥163॥
पपात तारिणी विद्या नीलवर्णा सरस्वती।
देवैश्चैव हि देवेन्द्रैर्योगेन्द्रैः साधकोत्तमैः ॥164॥
साधकैर्मुनिभिः सर्वैर्गन्धर्वैः किन्नरैः खगैः।
विद्याधरैर्नर्त्तकैश्च नाना ऋषिगणैरपि।
आराधिता महाकाली महानील-सरस्वती ॥165॥
वदन्ति साधकाः सर्वे कालीं कालविनाशिनीम्।
नीलां सरस्वतीं विद्यामुग्रतारां मनोहराम् ॥166॥
कालिकायाश्च तारया माहात्म्यं देवदुर्लभम्।
कः शक्नोति महीमध्ये तस्या माहात्म्य-कोविदः ॥167॥
दशविद्याष्टादशधा-विद्यारूपां सुरेश्वरि !।
भजते यः साधकेन्द्रो भवत्येवं सुरेश्वरि ! ॥168॥
इत्येवं शृणु देवेशि ! माहात्म्यं भुवि दुर्लभम्।
यासां विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तः प्रजायते ॥169॥

हे देवि ! श्रीमन् एकजटा उग्रतारा सरस्वती सर्प के दमन से यमुना के जल पतिता हो गयी थी। इससे कृष्ण के द्वारा रक्षा किये जाने से नीलवर्णा सरस्वती रिणी विद्या का आविर्भाव हुआ था। देवगण, देवेन्द्र, साधकोत्तम योगीन्द्रगण, धक मुनिगण, समस्त गन्धर्व, किन्नर, पक्षिगण, विद्याधरगण, नर्त्तकगण एवं ना ऋषिगण – इन सभी के द्वारा महाकाली नील सरस्वती आराधिता हुई ॥163-165॥

सभी साधक काली को 'काल-विनाशिनी' कहते हैं। मनोहर महाविद्या ग्रतारा को 'नीलसरस्वती' कहते हैं। ॥166॥

कालिका एवं तारा का महात्म्य देव-दुर्लभ है। महात्म्यवित् कौन ऐसा ण्डित है, जो इस महीतल पर उनके माहात्म्य को कह सकता है ? ॥167॥

हे सुरेश्वरि ! दशविद्यारूपा या अष्टादशविद्यारूपा सुरेश्वरी की भजना जो धक श्रेष्ट करता है, वह इस प्रकार (देवीस्वरूप) बन जाता है ॥168॥

हे देवेशि ! जिन देवियों के विज्ञान-मात्र से साधक जीवन्मुक्त हो जाता है, नका महात्म्य भूमण्डल पर दुर्लभ है – ऐसा जाने ॥169॥

यथा शिवस्तथा जीवो जीवस्तु शिव एव हि।
जायते परमं ज्ञानं भावज्ञानाद् वरानने ! ॥170॥

अपरं शृणु चार्वङ्गि ! सावधानाऽवधारय।
स्तोत्रञ्च कवचं देव्याः कालिकाया महेश्वरि ! ॥171॥

ताराया न श्रुतं चण्डि ! सर्वमोहन-कारणम्।
षट्-कर्मसिद्धिदं मन्त्रं स्तोत्रं कवचमुत्तमम् ॥172॥

न प्रकाश्यञ्च कुत्रापि सर्व सम्पत्-प्रदं प्रिये !।
इदानीं कथयाम्यत्र जीवमोहन-कारणम् ॥173॥

श्री पार्वत्युवाच —

वद नाथ ! जगत्-स्वामिन् ! प्रभो ! शङ्कर ! भो हर !।
मोहनं कवचं नाथ स्तोत्रं कवच मेव हि ॥174॥

सर्वविघ्नहरं देव ! सर्वशान्ति-करं तथा।
देवानामपि दुर्ज्ञेयं वद नाथ ! जगत्-गुरो ! ॥175॥

शिव जैसे हैं, जीव भी वैसा है। जीव शिव ही है। हे वरानने ! भावज्ञान से परम ज्ञान उत्पन्न होता है ॥170॥

हे चार्वङ्गि ! अन्य विषय का श्रवण करे। हे महेश्वरि ! सावधान होकर कालिका देवी का स्तोत्र एवं कवच का अवधारण करें ॥171॥

हे चण्डि ! सभी के आनन्द के कारण, षट्कर्मों मे सिद्धिप्रद, तारा के मन्त्र, स्तोत्र एवं उत्तम कवच का श्रवण आपने (अभी तक) नही किया है ॥172॥

हे प्रिये ! सम्प्रति यहाँ पर मैं जीव के आनन्द के कारण, सर्वसम्पत् प्रद, उत्तम स्तोत्र एवं कवच को बता रहा हूँ। यह कही पर भी प्रकाश्य नही है ॥173॥

श्री पार्वती ने कहा — हे नाथ ! हे जगत् स्वामिन ! हे प्रभो ! हे शङ्कर ! हे हर ! आनन्ददायक कवच को बतावे। हे नाथ ! हे देव ! स्तोत्र एवं कवच सर्वविघ्नहर एवं सर्वशान्तिकारक है। वह देवगणों के लिए भी दुर्ज्ञेय है। हे नाथ ! हे जगद्गुरो ! आप (इसे) बतावे ॥174-175॥

श्री शङ्कर उवाच —

नमस्ते जगदीशान-दयिते ! हरवल्लभे ! ।
विश्वेश्वरि ! जगद्धात्रि ! त्रैलोक्य-मोहनं कुरु ।
मन्त्रोद्धारं प्रवक्ष्यामि सावधानात् सुरेश्वरि ! ॥176॥
नान्तं वान्तं मान्तयुक्तं .... स्वरकात्मकम् ।
कान्तं शक्तियुतं देवि जनयञ्चापरान्वितम् ॥177॥
व्यग्रजं माग्रजं कुक-युत-गोग्रजमेव हि ।
शक्तियुक्तं यन्त्र-मन्त्रं शेषं च समुदीरयेत् ॥178॥
इत्येवं मन्त्र-राजञ्च यो जपेत् जगदम्बिके ! ।
त्रैलोक्य-मोहनं कृत्वा सर्वसम्पल्लभेत् तु सः ॥179॥
वारुणं युगलं कान्तं भान्तं बिन्दु-द्वितीयकम् ।
वाग्वादिन्यमुकं मे वै वशमानय वैफटी ॥180॥
मन्त्रञ्चायुतमेवञ्च सहस्रं वाऽयुतं निशि ।
तदैव देवीं देवं वा नरं बा वशमानयेत् ॥181॥
इयं वशकरी विद्या सर्वतन्त्रेषु गोपिता ।
पूजयेद् भक्ति भावेन प्रणमेद् राजमोहिनीम् ॥182॥

श्री शङ्कर ने कहा — हे जगदीश्वर-दयिते ! हे हर वल्लभे ! आपको नमस्कार ! हे विश्वेश्वरि ! हे जगद्धात्रि ! आप त्रैलोक्य को मुग्ध कर देती हैं । हे सुरेश्वरि ! मन्त्रोद्धार को बता रहा हूँ । सावधान होकर श्रवण करें ॥176॥

हे जगदम्बिके ! जो इस प्रकार इस मन्त्रराज का जप करता है, वह त्रैलोक्य को मोहित कर समस्त सम्पत्ति का लाभ करता है ॥179॥

दो वारुण ('व' एवं 'व'), कान्त (ख) एवं भान्त (ब) को बिन्दुयुक्त करें । उसके बाद "वाग्वादिनी अमुकं मे वै वशमानय वैं फट्" योग करने पर जो मन्त्र बनता है, वह मनुष्यों को वशीभूत कर देता है ॥180॥

संयत होकर रात्रिकाल मे जो व्यक्ति इस मन्त्र का पाठ हजार या दस हजार जप करता है, वह तत्क्षण ही देव, देवी एवं मनुष्यो को अपने वश मे कर सकता है ॥181॥

यह वशकरी विद्या समस्त तन्त्रों मे गुप्त रूप में है । राजमोहिनी देवी की, भक्ति भाव से पूजा करें एवं उन्हें प्रणाम करें ॥182॥

स्मृत्वा च मनसा देवीं जपेन्मन्त्रं कुजे दिने।
शनैश्चर-दिने वापि रात्रौ स्तोत्रं पठेद् यदि।
अचिरेणैव कालेन स भवेद्राज-वल्लभः ॥183॥
घोरदंष्ट्रे ! करालास्ये ! मत्स्य-मांस-बलिप्रिये !।
नमस्ते विश्वजननि ! नमस्ते विश्व-भाविनि ! ॥184॥
नमस्ते जगदीशानदयिते ! भक्तवत्सले !।
नमस्ते परमानन्द-दायिनि राजमोहिनि !॥185॥
नमस्तेऽस्तु सदानन्दे ! नमस्ते शङ्कर-प्रिये !।
नमस्ते मङ्गले ! तुभ्यं सर्वमङ्गल-मङ्गले ! ॥186॥
विश्वमातर्जगद्धात्रि ! नमस्ते त्रिपुरेश्वरि !।
नमस्ते ब्रह्म-नमिते ! नमस्ते वरदे ! शिवे ! ॥187॥
मेघश्यामे ! जगद्धात्रि ! कराले ! विकटे ! शिवे !।
हरभार्ये ! हराराध्ये ! नमस्ते हरिपूजिते ! ॥188॥
हरीन्द्र-ब्रह्म-चन्द्रादि-पञ्चानन-सुपूजिते ।
नमस्तेऽस्तु महारौद्रे ! महाघोरे ! महोत्सवे ! ॥189॥

मंगलवार को या शनिवार को मन ही मन देवी का स्मरण करके मन्त्र जप करे। यदि रात्रि में स्तोत्र का पाठ करते हैं तो वह अति शीघ्र ही राजा का अधिपति बन जाते हैं ।।183।।

हे घोरदंष्ट्रे ! हे करालास्ये ! हे मत्स्य-मांस बलिप्रिये ! आपको नमस्कार। हे विश्वजननि ! हेविश्वभाविनि ! आपको नमस्कार ।।184।।

हेजदीश्वर-दयिते ! हे भक्तवत्सले ! आपको नमस्कार। हे परमानन्ददायिनि ! हे राजमोहिनि ! आपको नमस्कार ।।185।।

हे सदानन्दे ! आपको नमस्कार। हे शङ्करप्रिये ! आपको नमस्कार। हे मङ्गले ! आपको नमस्कार। हे सर्वमङ्गल-मङ्गले ! आपको नमस्कार ।।186।।

हे विश्वमातः ! हे जगद्धात्रि ! हे त्रिपुरेश्वरि ! आपको नमस्कार। हे ब्रह्म-नमिते ! आपको नमस्कार। हे वरदे ! हे शिवे ! आपको नमस्कार ।।187।।

हे मेघश्यामे ! हे जगद्धात्रि ! हे कराले ! हे विकटे ! हे शिवे। हे हरभार्ये ! हे हराराध्ये ! हे हरिपूजिते ! आपको नमस्कार ।।188।।

हे हरपूजिते ! हे इन्द्रपूजिते ! हे ब्रह्मपूजिते ! हे चन्द्रादिपूजिते ! हे पञ्चानन-पूजिते ! हे महारौद्री ! हे महाघोरे ! हे महोत्सवे ! आपको नमस्कार ।।189।।

महानन्दे ! महाकालि ! महाकाल-प्रपूजिते ! ।
विश्वेश्वरि नमस्ते तु नमस्ते भुवनेश्वरि !॥190॥
कामरूपे ! च कामाख्ये ! कामपुष्प-विभूषिते ! ।
सर्वकाम-प्रिये देवि ! काम-मन्दिर-नन्दिते ! ॥191॥
सर्वकाम-स्वरूपे ! च कामदेव-प्रपूजिते ! ।
कामेश्वरि ! कलानाथ-वदने ! कामवल्लभे ! ॥192॥
क्रिया-मार्गरते ! कामे ! निष्कामे ! कमलात्मिके ! ।
नमस्ते ! चण्डिके ! चण्डे ! चण्डमुण्ड-विनाशिनि ! ॥193॥
राजेश्वरि ! रमे राम-पूजिते ! राजवल्लभे ! ।
रामप्रिये ! रामरते ! बलराम-प्रपूजिते ! ॥194॥
नमश्छिन्न-कपाले ! च बगले ! चण्डि ! पार्वति ! ।
नमस्ते सगुणे ! देवि ! निर्गुणे ! निर्गुणात्मिके ! ॥195॥
जगद्धात्रि ! जये ! देवि ! विजये ! हरवल्लभे ! ।
नमस्ते शङ्करानन्द-दायिके ! शङ्कर प्रिये ! ॥196॥

हे महानन्दे ! हे महाकालि ! हे महाकाल-प्रपूजिते ! हे विश्वेश्वरि ! आपको नमस्कार। हे भुवनेश्वरि ! आपको नमस्कार ॥190॥

हे कामरूपे ! हे कामाख्ये ! हे कामपुष्प-विभूषिते ! हे सर्वकामप्रदे ! हे देवि ! हे काममन्दिर-नन्दिते ! आपको नमस्कार ॥191॥

हे सर्वकाम-स्वरूपे ! हे कामदेव प्रपूजिते ! हे कामेश्वरि ! हे कला-नाथ-वदने ! हे कामवल्लभे ! आपको नमस्कार ॥192॥

हे क्रियामार्गरते ! हे कामे ! हे निष्कामे ! हे कमलात्मिके ! हे चण्डिके ! हे चण्डे ! हे चण्ड-मुण्ड-विनाशिनि ! आपको नमस्कार ॥193॥

हे राजेश्वरि ! हे रमे ! हे राम-पूजिते ! हे राजवल्लभे ! हे राम-प्रिये ! हे रामरते ! हे बलराम-प्रपूजिते ! आपको नमस्कार ॥194॥

हे छिन्नकपाले ! हे बगले ! हे चण्डि ! हे पार्वति ! हे सगुणे ! हे देवि ! हे निर्गुणे ! हे निर्गुणात्मिके ! आपको नमस्कार ॥195॥

हे जगद्धात्रि ! हे जये ! हे देवि ! हे विजये ! हे हरवल्लभे ! हे शङ्करानन्द-दायिके ! हे शङ्करप्रिये ! आपको नमस्कार ॥196॥

नमः कृष्णे ! पीतवर्णे ! शुक्लरक्त-स्वरूपिणि ! ।
महानीले ! नीलवर्णे ! महानीलसरस्वति ! ॥197॥

वागीश्वरि ! नमस्तेऽस्तु पद्मे ! पद्मविलासिनि ! ।
इति ते कथितं देवि ! स्तोत्रञ्च जनमोहनम् ॥198॥

पठनात् स्तवराजस्य किं न सिद्ध्यति भूतले ।
मन्दे चन्द्रात्मजे जीवे निशाभागे निशामुखे ।
प्रपठेत् स्तवराजञ्च सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥199॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा वरवर्णिनि ! ।
स्तोत्र-प्रपठनाद् देवि ! जगद्वशमयो भवेत् ।
वशीकरणमेतत्तु स्तवराजं मनोहरम् ॥200॥

यं यं मन्त्रेण देवेशि ! परमाकर्षयत्यहो ! ।
स तत्र वशतां याति देवराजसमो यदि ।
इत्येवं कथितं स्तोत्रमधुना कवचं शृणु ॥201॥

हे कृष्णे ! हे पीतवर्णे ! हे शुक्ल-रक्त-स्वरूपिणि ! हे महानीले ! हे नीलवर्णे ! हे महानील-सरस्वति ! आपको नमस्कार ॥197॥

हे वागीश्वरि ! हे पद्मे ! हे पद्म-विलासिनि ! आपको नमस्कार । हे देवि (इस प्रकार) यह जनमोहन स्तोत्र कहा गया ॥198॥

इस भूतल पर, इस स्तवराज के पाठ से क्या सिद्ध नहीं होता है अर्थात् समस्त ही सिद्ध होता है । शनिवार, बुधवार या बृहस्पतिवार को रात्रि में या रात्रि-मुख में (=प्रदोष में) इस स्तवराज का पाठ करें । वैसा करने पर सिद्धि की अधिपति बन जाते हैं ॥199॥

हे वरवर्णिनि ! हे देवि ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र — इस स्तोत्र के पाठ के द्वारा इस जगत् को उसके अपने वश में कर सकता है । यह मनोहर स्तवराज (वस्तुतः) वशीकरण है ॥200॥

हे देवेशि ! जो जो मन्त्र के द्वारा पर को आकर्षित करता है, यदि वह देवराज के समान भी हो, तो भी वह वश्य बन जाता है । इस प्रकार, यह स्तोत्र कहा गया । सम्प्रति कवच को सुनें ॥201॥

श्री शिव उवाच —

श्रृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि अप्रकाश्यं महीतले।
श्रुत्वा पठित्वा कवचं सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥202॥

॥ दुर्गाकवचम् ॥

पार्वती मस्तकं पातु कपालं जगदम्बिका।
कापालञ्चापि गण्डञ्च दुर्गा पातु महेश्वरि ॥203॥
विश्वेश्वरी सदा पातु नेत्रञ्च शिवसुन्दरी।
कर्णौ नारायणी पातु मुखं नील-सरस्वती ॥204॥
कण्ठं मे विजया पातु वक्षोमूलं शिव प्रिया।
नाभिदेशं जगद्धात्री जगदानन्द-वल्लभा ॥205॥
हृदयं चण्डिका पातु बाहू परम-देवता।
केशांश्च पञ्चमी विद्या सभायां पातु भैरवी ॥206॥
नित्यानन्दा यशः पातु लिङ्गं लिङ्गेश्वरी सदा।
भवानी पातु मे पुत्रं पत्नीं मे पातु दक्षजा ॥207॥

श्री शिव ने कहा — हे देवि ! इस महीतल पर अप्रकाश्य कवच को बता रहा हूँ, इसका श्रवण करें। इस कवच का श्रवण करके, पाठ करने पर (साधक) समस्त सिद्धियों का लाभ कर सकता है ॥202॥

दुर्गा कवच

पार्वती मस्तक की रक्षा करें। जगदम्बिका कपाल (ललाट) की रक्षा करें। महेश्वरी दुर्गा कपाल (मस्तक) एवं गण्ड देश की रक्षा करें ॥203॥

विश्वेश्वरी शिवसुन्दरी सर्वदा नेत्र की रक्षा करें। नारायणी कर्णद्वय की रक्षा करें। नीलसरस्वती मुख की रक्षा करें ॥204॥

विजया मेरे कण्ठ की रक्षा करें। शिवप्रिया मेरे वक्षःमूल की रक्षा करें। जगदानन्द-वल्लभा जगद्धात्री नाभिदेश की रक्षा करें ॥205॥

चण्डिका हृदय की रक्षा करें। परम देवता बाहुद्वय की रक्षा करें। पञ्चमी-विद्या केशों की रक्षा करें। भैरवी सभा में रक्षा करें ॥206॥

नित्यानन्द यशः की रक्षा करें। लिङ्गेश्वरी सर्वदा लिङ्ग की रक्षा करें। भवानी मेरे पुत्र की रक्षा करें। दक्षजा मेरी पत्नी की रक्षा करें ॥207॥

कामाख्या देह-कमलं पातु नित्यं नभोगतम्।
महाकुण्डलिनी नित्यं पातु मे जठरं शिवा ॥208॥
वह्निजाया सदा यज्ञं पातु कर्म स्वधा पुनः।
अरण्ये विजने पातु दुर्गा देवी रणे वने।
जले पातु जगन्माता देवी त्रिभुवनेश्वरी ॥209॥
इत्येवं कवचं देवि दुर्ज्ञेयं राजमोहनम्।
जपेन्मत्रं क्षितितले वश्यं याति महीपतिः ॥210॥
पूजया वरया भक्त्या क्रियया च विना शिवे!।
केवलं जपमात्रेण सिद्ध्यत्येव न संशयः ॥211॥
या पृच्छा ते निगदिता कथिता वरवर्णिनि!।
इदानीं देवदेवेशि! किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥212॥

इति मुण्डमालातन्त्रे पार्वतीश्वर-संवादे
षष्ठः पटलः ॥6॥

कामाख्या आकाश-गत देह कमल की सर्वदा रक्षा करे। महाकुण्डलिनी शिवा सर्वदा मेरे उदर की रक्षा करें ।।208।।

वह्निजाया सर्वदा यज्ञ की रक्षा करे। स्वधा कर्म की रक्षा करे। दुर्गादेवी निर्जन अरण्य मे, वन में, रण मे रक्षा करे। जगन्माता देवी त्रिभुवनेश्वरी जल में रक्षा करें ।।209।।

हे देवि! राजा को मोहनकारी यह दुर्ज्ञेय कवच इस प्रकार कहा गया। इस पृथिवी पर मन्त्र जप करें। इससे राजा भी वश्य बन जाते हैं ।।210।।

हे शिवे! पूजा, परा भक्ति एवं आराधना-क्रिया के बिना केवल जपमात्र के द्वारा सिद्धि हो सकती है। इसमे संशय नहीं है ।।211।।

हे वरवर्णिनि! आपकी जो जिज्ञासा है, उसका उत्तर मैंने आपको दिया है। हे देव देवेशि! अब पुनः क्या सुनने की इच्छा रखती है, बतावे ।।212।।

मुण्डमालातन्त्र में पार्वतीश्वर-संवाद में षष्ठ पटल का
अनुवाद समाप्त ॥6॥

सप्तमः पटलः

श्रीदेव्युवाच —

कथ्यतां मे दयासिन्धो ! जगदीश ! जगद्गुरो ! ।
जगत्-कर्त्ता जगत्-पाता जगद्धाता त्वमेव हि ॥1॥

त्रिषु लोकेषु विश्वेश ! त्वत्तो भिन्नः कदाचन ।
नास्ति कर्त्ता महादेव ! किमेतत् कथयामि ते ॥2॥

न गोलके न कैलासे न ब्रह्म-मन्दिरे प्रभो ! ।
न वैकुण्ठे न वा सौरे न नक्षत्रे शची-पुरे ॥3॥

वक्ता कर्त्ता च पाता च हर्त्ता च त्रिपुरेश्वर ! ।
पृच्छामि परमं तत्त्वं योगिनां योगसाधनम् ॥4॥

श्री शिव उवाच —

योगीन्द्र- हृदयाम्भोजे योगिनां हृदये तथा ।
ध्येयं गोप्यञ्च देवेशि ! ब्रह्मेति यं विदुः शिवे ! ॥5॥

श्री देवी ने कहा — हे दयासिन्धो ! हे जगदीश ! हे जगद्गुरो ! आप हमें बतावें । आप ही जगत्कर्ता हैं, आप ही जगत् के रक्षाकर्ता हैं, आप ही जगत् के धारण-कर्त्ता हैं ।।1।।

हे विश्वेश ! त्रिभुवन में कदापि आपसे भिन्न कोई कर्त्ता नही है । हे महादेव ! आप ही कर्त्ता हैं । यह और आपसे क्या बतायें ।।2।।

हे प्रभो ! हे त्रिपुरेश्वर ! गोलोक में, कैलास में, ब्रह्म-लोक में, वैकुण्ठ में, सूर्यलोक में, नक्षत्रलोक में या शचीगृह में कोई वक्ता नही है, कोई रक्षा-कर्त्ता नहीं है, कोई संहार-कर्त्ता भी नही है । योगियो के परमतत्त्व, योग के साधन की मैं जिज्ञासा कर रही हूँ ।।3-4।।

श्री शिव ने कहा — हे देवेशि ! योगिश्रेष्ठ साधक के हृत्पद्म में एवं योगियों के हृदय में एक गोपनीय ध्येय तत्त्व है । हे शिवे ! पण्डितगण उन्ही को 'ब्रह्म' के नाम से कहते हैं ।।5।।

परं ब्रह्म परं धाम सच्चिदानन्दमव्ययम् ।
योगीन्द्राणां ज्ञानगम्यमगम्यं मनसा अपि ॥6॥
अन्येषाञ्च वरारोहे ! जगद्धात्रि ! शृणु प्रिये ! ।
सर्वेषाञ्च मया ज्ञानं ज्ञातं त्वयाख्यमव्ययम् ।
नारीणां हृदयाम्भोजं न च वेद कथञ्चन ॥7॥

श्री पार्वत्युवाच —

सत्यञ्च कथितं नाथ सत्यमेव न संशयः ।
अबलानाञ्च हृदयमन्तः सारञ्च कथ्यताम् ॥8॥
पुरुषा नैव जानन्ति स्वभावात् तु व्यतिक्रमम् ।
देवदेव ! महादेव ! संसारार्णव-तारक ! ।
जानामि हृदयं पुंसां काठिन्यं लोलमानसम् ॥9॥
अतएव महादेव ! शीघ्रं वद सदाशिव ! ।
केन रूपेण सा दुर्गा सुप्रसन्ना महीतले ॥10॥

श्री शिव उवाच —

स्तवेन कवचेनापि ज्ञानेन वरवर्णिनि ! ।
प्रसन्ना च महाविद्या भवेत् परम-कारणम् ॥11॥

वह सच्चिदानन्द अव्यय पर ब्रह्म श्रेष्ठ स्थान है। वह योगिश्रेष्ठ साधकों के ज्ञान से गम्य है। अन्य लोगों के मन के द्वारा भी अगम्य हैं ॥6॥

हे वरारोहे ! हे जगद्धात्रि ! हे प्रिये ! आप श्रवण करें। अन्य सभी के लिए अगम्य, आपके द्वारा ज्ञात, उन अव्यय तत्त्व को (के विषय में) आप बता सकते हैं। वह (तत्त्व) मेरे लिए अज्ञात है। नारियों के हृत्पद्म को किसी भी प्रकार से कोई जान नहीं सकता ॥7॥

हे नाथ ! आपने सत्य ही कहा है। इसमें कोई संशय नहीं है। स्त्रियों के हृदय को – अन्तर के सार तत्त्व को मुझे बतावें ॥8॥

नारियों के स्वभाव को विपरीत हृदयवाले पुरुषगण नहीं जानते हैं। हे देवदेव ! हे महादेव ! हे संसारार्णव-तारक ! पुरुषों के हृदय कठिन हैं एवं मन चञ्चल है – ऐसा जानती हूँ ॥9॥

अतः हे महादेव ! हे सदाशिव ! आप शीघ्र बतावें। इस पृथिवी पर वह दुर्गा किस प्रकार से सुप्रसन्ना होती हैं ॥10॥

श्री शिव ने कहा — हे वरवर्णिनि ! स्तव के द्वारा, कवच के द्वारा एवं ज्ञान के द्वारा भी परम कारण महाविद्या प्रसन्न होती हैं ॥11॥

कौलिकं कौलिकां देवि ! न त्यजेत् तु कथञ्चन ।
परित्यागे वरारोहे ! सर्वं भवति निष्फलम् ॥19॥
एवं शक्ति-विधानेन शक्तः सर्वविचारणात् ।
जीवन्मुक्तः सर्वलोके जायते नात्र संशयः ॥20॥
मन्त्रार्थं मन्त्रचैतन्यं योनिमुद्रां न वेत्ति यः ।
न वेत्ति किञ्चिद् देवेशि ! सत्यञ्च वरवर्णिनि ! ॥21॥
संकेतं गुह्यसंकेतं जीव-संकेतकं तथा ।
दिव्यानाञ्चैव वीराणां पशूनां वरवर्णिनि ! ॥22॥
भाव-संकेतकं देवि ! ब्रह्म संकेतकं तथा ।
समं परमसंकेतं वीरसाधनमुत्तमम् ॥23॥
श्मशानसाधनं भद्रे ! शवसाधनमेव हि ।
एवं नानाविधानञ्च मयोक्तं यामले प्रिये ! ।
सदा सिद्धिमवाप्नोति यस्तन्त्रे खलु कोविदः ॥24॥
कथित डामरेणाथ शक्ति-यामलके प्रिये ! ।
नानातन्त्रे महेशानि ! कथितं वरवर्णिनि ! ॥25॥

हे देवि ! कौलिक एवं कौलिका का किसी भी प्रकार से त्याग न करे । हे वरारोहे ! जो इनका परित्याग करता है, उसका सब कुछ निष्फल हो जाता है ॥19॥

शक्त साधक इस प्रकार शक्ति विधान से समस्त विषय का विचार करने पर, उस विचार से वह समस्त लोको मे जीवन्मुक्त बन जाता है ॥20॥

जो मन्त्रार्थ, मन्त्रचैतन्य एवं योनिमुद्रा को नही जानता है, हे देवेशि ! हे वरवर्णिनि ! वह कुछ नही जानता है । यह सत्य है ॥21॥

हे वरवर्णिनि ! हे प्रिये ! मैंने यामल मे दिव्य, वीर एवं पशुगणों के संकेत, गुह्यसंकेत एवं जीवसंकेत को बताया है ॥22॥

हे देवि ! मैंने भाव संकेत एवं ब्रह्मसंकेत को भी बताया है । मैंने परम संकेत के साथ साथ उत्तम वीरसाधना को भी बताया है ॥23॥

हे भद्रे ! मैंने श्मशानसाधन एवं शवसाधन को भी बताया है । हे प्रिये ! मैंने यामल मे इस प्रकार नाना विधानो को भी बताया है । तन्त्रवित् पण्डित-सर्वदा सिद्धि लाभ करते हैं ॥24॥

हे प्रिये ! मैंने डामर मे एवं शक्तियामल मे भी इसे बताया है । हे वरवर्णिनि ! हे महेशानि ! नाना-तन्त्रो मे इस प्रकार नाना विधानों को मैंने बताया है ॥25॥

दुर्गासेवनमात्रेण विधिवाक्यानुसारतः ।
मुक्तिं याति नरः सत्यं लब्ध्वा तत्त्वं मनोहरम् ॥26॥

विना तत्त्व-परिज्ञानं न सुखं न परां गतिम् ।
लभते मानवः सत्यं देवेशि ! जगदम्बिके !॥27॥

काली करालवदना मुण्डमालाविभूषणा ।
कामाख्या कामिनी कन्या करालास्या दिगम्बरा ॥28॥

अट्टहासा घोरनादा मेघश्यामा भयानका ।
सर्वबीज-स्वरूपा सा महाबीज-स्वरूपिणी ॥29॥

सार्द्धपञ्चाक्षरी विद्या वशिष्ठादि-प्रपूजिता ।
सिद्धेन्द्रैश्चापि योगीन्द्रैर्मुनीन्द्रैश्चापि सेविता ॥30॥

देवेन्द्रैश्चापि वीरेन्द्रैः साधकेन्द्रैः प्रपूजिता ।
एवम्भूता महामाया सर्वतत्त्व-विभाविनी ॥31॥

सङ्केतं कालिकायाश्च तारायाश्च श्रुतं त्वया ।
कालीतन्त्रे भैरवे च श्रुतं तन्त्रे च यामले ॥32॥

विधिवाक्य के अनुसार दुर्गा की आराधना मात्र के द्वारा परम तत्त्व को जान करके मानव मुक्ति का लाभ करता है। यह सत्य है ॥26॥

हे देवेशि ! हे जगदम्बिके ! तत्त्वज्ञान के बिना मनुष्य सुख का भी लाभ नहीं करता है, परागति का भी लाभ नहीं करता है। यह सत्य है ॥27॥

काली करालवदना मुण्डमाला से अलङ्कृता हैं। वह कामाख्या, कामिनी, कन्या, करालास्या एवं दिगम्बरा हैं ॥28॥

वह अट्टहास्य एवं घोर गर्जन कारिणी, मेघ के समान श्यामवर्णा, भयानका हैं। वह सर्वबीज-स्वरूपा एवं महाबीज-स्वरूपिणी हैं ॥29॥

सार्द्ध पञ्चाक्षरी विद्या, वशिष्ठादि मुनियों के द्वारा पूजिता हैं। सिद्धेन्द्र (सिद्धश्रेष्ठ), योगीन्द्र, वीरेन्द्र, मुनीन्द्र एवं साधकेन्द्र देवेन्द्र के द्वारा सर्वतत्त्व विभाविनी एवम्भूता महामाया प्रकृष्टरूप से पूजित हुई हैं ॥30-31॥

कालीतन्त्र में कालिका एवं तारा के संकेत का आपने श्रवण किया है। भैरवतन्त्र में एवं यामलतन्त्र में भी आपने इसे सुना है ॥32॥

श्रुतं न भैरवीतन्त्रे भैरव्याश्चरितं प्रिये ! ।
भुवनायाश्च विद्यायाश्चरितं नैव सुन्दरि ! ॥33॥

इदानीञ्चापि संक्षेपाद् वदिष्यामि वरानने ! ।
पद्मा त्रिशक्तिर्धनदा वाणी पूर्णा महेश्वरि ! ॥34॥

दुर्गा भगवती देवी भुवनायाः प्रतिष्ठिता ।
एका देवी जगद्धात्री नानारूप-विधारिणी ॥35॥

तां भजेत् साधकेन्द्रश्च सर्वज्ञादि-प्रपूजिताम् ।
महामायां जगद्धात्रीं सर्वालङ्कार-भूषिताम् ॥36॥

वाणी माया पुनर्वाणी महामन्त्रस्वरूपिणी ।
ततश्च केवला माया साधकैरपि सेविता ॥37॥

पाशादि-त्र्यक्षरी विद्या यमभीति-विमर्दिनी ।
सर्वसम्पत्-प्रदा मुक्तिदायिनी मुक्ति-वल्लभा ॥38॥

महायोगमयी विद्या सर्वज्ञानमयी ततः ।
पूजिता साधकैः सर्वैः सर्वालङ्कार-भूषिता ॥39॥

हे प्रिये ! भैरवीतन्त्र में भैरवी के चरित्र को आपने नहीं सुना है। हे सुन्दरि ! भुवनाविद्या (भुवनेश्वरी) के चरित्र को भी आपने नहीं सुना है ॥33॥

हे वरानने ! हे महेश्वरि ! सम्प्रति संक्षेप में भुवनेश्वरी के चरित्र को बताऊँगा। पद्मा, त्रिशक्ति, धनदा, वाणी, अन्नपूर्णा देवी भगवती दुर्गा ये सभी भुवनेश्वरी में प्रतिष्ठित हैं अर्थात् ये सभी भुवनेश्वरी के अंगभूत हैं। एक (ही) जगद्धात्री भुवनेश्वरी देवी प्रयोजनवश नानारूपों को धारण की हुई हैं ॥34-35॥

साधकेन्द्र सर्वज्ञादि के द्वारा प्रपूजिता सर्वालङ्कार-भूषिता महामाया उन जगद्धात्री की भजना करें ॥36॥

वाणी (ऐं), माया (ह्रीं), पुनः वाणी (ऐं) अर्थात् ऐं ह्रीं ऐं यह महामन्त्र स्वरूप है। उसके बाद केवल माया भी (ह्रीं) साधकेन्द्र के द्वारा सेवित हुई हैं ॥37॥

मुक्ति के अधिपति पाशादि (आ आदि) त्र्यक्षरी विद्या यमभीति (मृत्युभय) विमर्दिनी, सर्वसम्पत् प्रदा एवं मुक्तिदायिनी है ॥38॥

एवन्ते कथिता देवि ! देवदेवैः प्रपूजिता ।
भुवनेशी महाविद्या देवानामपि दुर्लभा ॥40॥
यदि भाग्यवशादेव चतुर्थीं लभते नरः ।
चतुर्वर्गमयो भूत्वा एवं ब्रह्माधिगच्छति ॥41॥

श्री देव्युवाच —

दीनबन्धो ! दयासिन्धो ! प्रभो ! शङ्कर ! भो हर ! ।
श्रोतुमिच्छामि ! देवेश ज्ञानदः शङ्करो यतः ॥42॥
देवदेव ! महादेव ! नमस्तुभ्यं सदाशिव ! ।
नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं महेश्वर !॥43॥
विश्वेश्वर ! जगद्बन्धो ! नीलकण्ठ ! नमोऽस्तु ते ।
ज्ञानेश ! ज्ञानदानन्ददायक ! ज्ञानवर्द्धक ! ॥44॥
ज्ञानाधीश ! ज्ञानपते ! नमः कोचवधूपते ! ।
नमस्ते परमानन्द ! नमस्ते भक्तवत्सल ! ॥45॥

इसीलिए समस्त साधकों के द्वारा सर्वोत्कृष्ट पूजित, महाभोगमयी, सर्वज्ञानमयी विद्या पूजित हुई हैं ।।39।।

हे देवि! देवगणों के द्वारा आराधिता महाविद्या भुवनेश्वरी एवंविध प्रकार से मेरे द्वारा कही गयी हैं ।।40।।

यदि भाग्यवश मानव इन चतुर्थी महाविद्या भुवनेश्वरी का लाभ कर लेता है, तब तक चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष) को प्राप्त होकर ब्रह्म का लाभ कर लेते है ।।41।।

श्री देवी ने कहा — हे दीनबन्धो ! हे दयासिन्धो ! हे प्रभो ! हे शङ्कर ! हे हर ! हे देवेश ! मैं इस विषय को सुनने की इच्छा कर रही हूँ । क्योंकि बताने वाले आप शङ्कर ज्ञानप्रद हैं ।।42।।

हे देवदेव ! हे महादेव ! हे सदाशिव ! आपको नमस्कार । हे महेश्वर ! आपको नमस्कार । आपको नमस्कार । आपको नमस्कार । आपको नमस्कार ।।43।।

हे विश्वेश्वर ! हे जगद्बन्धो ! हे नीलकण्ठ ! हे ज्ञानेश ! हे ज्ञानद ! हे आनन्ददायक ! हे ज्ञानवर्द्धक ! आपको नमस्कार ।।44।।

हे ज्ञानाधीश ! हे ज्ञानपते ! हे कोचवधूपते ! आपको नमस्कार । हे परमानन्द ! आपको नमस्कार । हे भक्तवत्सल ! आपको नमस्कार ।।45।।

नमस्ते पार्वतीनाथ ! गङ्गाधर ! नमोऽस्तु ते ।
विश्वेश्वर ! जगद्बन्धो ! जगदीश ! सदाशिव ! ॥46॥
नमस्तेऽस्तु महादेव ! त्रिलोकेश ! महेश्वर ! ।
नमस्ते योगतन्त्रज्ञ ! नमः कालीपते नमः ॥47॥
नमस्तारापते ! तुभ्यं नमस्ते भैरवीपते ! ।
गौरीपते ! जगन्नाथ ! नमस्ते चण्डिकापते ! ॥48॥
गुरुरूपतरोर्बीज-फलरूप ! फलप्रद ! ।
नमस्ते सर्वबीजज्ञ ! बीजाधार ! नमोऽस्तु ते ॥49॥
उमापते ! नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं त्रिलोचन ! ।
पञ्चानन ! नमस्तुभ्यं नमस्ते शशिशेखर ! ॥50॥
शम्भो ! महेश्वर ! विभो ! विरूपाक्ष ! चतुर्भुज ! ।
नमस्ते पर्वतात्मजा-पते ! चण्डीपते ! नमः ॥51॥
त्रिलोकेश ! दयासिन्धो ! करुणामय ! शङ्कर ! ।
भक्त-वत्सल ! देवेश ! नीलकण्ठ ! सदाशिव ! ॥52॥

हे पार्वतीनाथ ! हे गङ्गाधर ! आपको नमस्कार है। हे विश्वेश्वर ! हे जगद्बन्धो ! हे जगदीश ! हे सदाशिव ! आपको नमस्कार ।।46।।

हे महादेव ! आपको नमस्कार। हे त्रिलोकेश ! हे महेश्वर ! आपको नमस्कार। हे योगतन्त्रज्ञ ! आपको नमस्कार। हे कालीपते ! आपको नमस्कार ।।47।।

हे तारापते ! आपको नमस्कार। हे भैरवीपते ! आपको नमस्कार। हे गौरीपते ! हे जगन्नाथ ! हे चण्डिकापते ! आपको नमस्कार ।।48।।

हे गुरु-रूप तरु के बीज एवं फलरूप ! हे फलप्रद ! आपको नमस्कार। हे सर्वबीजज्ञ ! हे बीजाधार ! आपको नमस्कार ।।49।।

हे उमापते ! आपको नमस्कार। हे त्रिलोचन! आपको नमस्कार। हे पञ्चानन ! आपको नमस्कार। हे शशिशेखर ! आपको नमस्कार ।।50।।

हे शम्भो ! हे महेश्वर ! हे विभो ! हे विरूपाक्ष ! हे चतुर्भुज ! हे पर्वतकन्यापते ! आपको नमस्कार। हे चण्डीपते ! आपको नमस्कार ।।51।।

हे त्रिलोकेश ! हे दयासिन्धो ! हे करुणामय ! हे शङ्कर ! हे भक्तवत्सल ! हे देवेश ! हे नीलकण्ठ ! हे सदाशिव ! आपको नमस्कार ।।52।।

नमः काशीपते ! तुभ्यं नमस्ते चन्द्रशेखर ! ।
नमश्चण्डीपते तुभ्यं नमस्ते मुक्तिद ! प्रभो ! ॥53॥

नमस्ते जगदाधार ! चतुराननं ! वत्सल ! ।
नमः क्रियापते ! तुभ्यं नमस्ते मुक्तिद ! प्रभो ! ॥54॥

अहमेवाऽबला बाला कथं जानामि ! शङ्कर ! ।
निर्गुणं सगुणं ज्ञातुं न समर्था कथञ्चन ॥55॥

श्री शिव उवाच —

निर्गुणा प्रकृतिः सत्यमहमेव च निर्गुणः ।
यदैव सगुणा त्वं हि सगुणो हि सदाशिवः ॥56॥

सत्यञ्च निर्गुणा देवी सत्यं सत्यं हि निर्गुणः ।
उपासकानां सिद्ध्यर्थं सगुणा सगुणो मतः ॥57॥

नानातन्त्रमतं देवि ! नानायत्नात् प्रकाशितम् ।
ब्रह्मस्वरूपं विज्ञातुं कः समर्थो महीतले ॥58॥

हे काशीपते ! आपको नमस्कार । हे चन्द्रशेखर ! आपको नमस्कार । हे चण्डीपते ! आपको नमस्कार । हे श्रीपते ! हे सर्वेश्वर ! आपको नमस्कार ।।53।।

हे जगदाधार ! हे चतुरानन ! हे भक्तवत्सल ! आपको नमस्कार । हे क्रियापते ! आपको नमस्कार । हे मुक्तिप्रद ! हे प्रभो ! आपको नमस्कार ।।54।।

मैं अबला बाला हूँ । मैं किस प्रकार सगुण एवं निर्गुण तत्त्व को जानूँगी । मैं किसी भी प्रकार से सगुण एवं निर्गुण को जानने में समर्थ नहीं हूँ ।।55।।

श्री शिव ने कहा — प्रकृति सत्य ही निर्गुण है । मैं भी सत्य ही निर्गुण हूँ । जब आप सगुण बनती हैं, तब सदाशिव भी सत्य ही सगुण बन जाते हैं ।।56।।

देवी निर्गुणा हैं, यह सत्य है । सदाशिव भी निर्गुण हैं, यह भी सत्य, सत्य है । उपासकगणों की सिद्धि के लिए आप सगुणा हैं । मैं 'सगुण हूँ' - इस प्रकार कहा गया है ।।57।।

हे देवि ! नाना प्रकार के यत्नों से प्रकाशित नाना तन्त्रों के मतों को आपने जान लिया है । इस पृथिवीतल पर ब्रह्म स्वरूप को जानने में कौन समर्थ हो सकता है ? अर्थात् कोई भी समर्थ नहीं हो सकता है ।।58।।

नानामार्गे विधावन्ति पशवो हतबुद्धयः ।
श्रीदुर्गाचरणाम्भोजं हित्वा यान्ति रसातलम् ।।59।।
सत्यं वच्मि दृढ़ं वच्मि हितं पथ्यं पुनः पुनः ।
न भुक्तिश्च न मुक्तिश्च विना दुर्गा-निषेवनात् ।।60।।
देवि ! दुर्गा परं ब्रह्म श्रुतं काली-श्रुतौ त्वया ।
तारा-श्रुतौ श्रुतं देवि ! श्रुता ब्रह्मविचारणा ।।61।।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च वासवश्च दिवौकसः ।
त्वत्पाद-सेवनाद् देवि ! वयं वै साधकोत्तमाः ।।62।।
न देवेशो गणपतिर्नो ब्रह्मा नो हरो हरिः ।
हरिर्हरिरहं देवि ! सर्वे पादाब्ज-भावुकाः ।।63।।
त्वत्-प्रसादान्महेशानि ! ब्रह्मा सृष्टिं करोत्यसौ ।
तत्प्रसादाद्धरिः पाता हरो हर्त्ता महीतले ।।64।।

नरगण हत बुद्धि होकर नाना प्रकार के भजन मार्गों के प्रति धावित होते हैं। वे श्रीदुर्गा के पादपद्म का परित्याग कर रसातल में गमन करते हैं ।।59।।

मैं सत्य कह रहा हूँ कि दृढ़रूप से पुनः पुनः हितकारक एवं पथ्य (स्वरूप वचन) कह रहा हूँ कि दुर्गा की आराधना के बिना भोग भी नहीं है, मोक्ष भी नहीं है ।।60।।

हे देवि ! दुर्गा पर ब्रह्म है – इसे कालीतन्त्र में आपने सुना है । हे देवि ! तारातन्त्र में आपने ब्रह्म कथा का श्रवण किया है एवं ब्रह्मविचार का भी श्रवण किया है ।।61।।

हे देवि ! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, वासव एवं देवगण तथा हमलोग आपके पाद-पद्म की सेवा करके (ही) उत्तम साधक बने हैं ।।62।।

हे देवि ! गणपति देवेश नही हैं, ब्रह्मा देवेश नही हैं, हर भी देवेश नही हैं, हरि भी देवेश नही हैं, हरि हरि ही हैं । इसी प्रकार, गणेश गणेश ही हैं । किन्तु मैं एवं सभी लोग आपके पादाब्ज-चिन्तक हैं ।।63।।

हे महेशानि ! यह ब्रह्मा इस पृथ्वीतल पर आपके अनुग्रह से सृष्टि करते हैं, आपके अनुग्रह से हरि पालन करते हैं, आपके अनुग्रह से हर संहार करते हैं ।।64।।

वासवश्चामरगणाधीशोऽमरा देवताः स्मृताः ।
ते सर्वे निर्जरा देवि! त्वत्-प्रसादान्महेश्वरि! ॥65॥

त्वत्पाद-पद्मसम्पर्कात् देव देवोऽपि शङ्करः ।
अतस्त्वं जगदीशान-दयिता! भक्तवत्सले! ॥66॥

दृष्टिं कुरु महामाये! नमस्तस्यै नमो नमः ।
त्वञ्च काली त्वञ्च तारा षोडशी त्वं वरानने! ॥67॥

त्वं देवि! भुवना बाला छिन्ना धूमा महेश्वरि! ।
त्वं देवि बगला भीमा कमला त्वं महेश्वरि! ॥68॥

मातङ्गी त्वन्नपूर्णा त्वं धनदा त्वं शिव प्रिये! ।
दुर्गा त्वं विश्वजननी दशाष्टादशरूपिणी ॥69॥

सप्तकोटि-महाविद्या उपविद्या-स्वरूपिणी ।
कुमारी रमणी-रूपा सुरूपा नगनन्दिनी ॥70॥

आपके अनुग्रह से वासव देवगणों के अधिपति हैं। आपके अनुग्रह से अमरगण 'देवता' के नाम से ख्यात होते हैं। हे देवि! हे महेश्वरि! आपके ही अनुग्रह से वे सभी निर्जर बने हैं ॥65॥

आपके पादपद्म के सम्पर्क से शङ्कर 'देवदेव' बने हैं। हे भक्तवत्सले! इसीलिए आप जगदीश्वर की दयिता (पत्नी) हैं ॥66॥

हे महामाये! मुझे दृष्टिदान करें। आपको नमस्कार, नमस्कार, नमस्कार। हे वरानने! आप काली हैं, आप तारा हैं, आप ही षोडशी हैं ॥67॥

हे देवि! आप भुवनेश्वरी हैं, आप बाला हैं, आप छिन्नमस्ता हैं, आप धूमावती हैं। हे देवि! हे महेश्वरि! आप भीमा बगला हैं, आप कमला हैं ॥68॥

हे शिव प्रिये! आप मातङ्गी हैं, आप धनदा महालक्ष्मी हैं। आप दश एवं अष्टादश मूर्त्तिधारिणी विश्वजननी दुर्गा हैं ॥69॥

आप सप्तकोटि महाविद्या एवं उपविद्या-स्वरूपिणी हैं। आप कुमारी हैं, आप ही रमणीरूपा हैं, आप ही सुरूपा नगनन्दिनी हैं ॥70॥

शिवपूज्या शिवाराध्या ब्रह्मपूज्या सुरेश्वरी।
शिवो भिन्नः शिवाभिन्ना न जीवो वामलोचना।
इति जानामि विश्वेशि! सत्यं सत्यं न संशयः ॥71॥

श्री पार्वत्युवाच —

सत्यं मे कथितं नाथ नित्यरूपोऽसि शङ्कर!।
अहञ्च त्रिषु लोकेषु पार्वतीश्वरी शङ्कर!।
विशेषं देवदेवेश! सर्वज्ञ! कथयस्व मे ॥72॥

श्री शिव उवाच —

विशेषं न च जानामि कथयस्व वरानने!।
सर्वज्ञासि महेशानि! यतः सर्वज्ञ वल्लभा ॥73॥

श्री पार्वत्युवाच —

गोलोके चैव राधाऽहं वैकुण्ठे कमलात्मिका।
ब्रह्मलोके च सावित्री भारती वाक्-स्वरूपिणी ॥74॥
कैलासे पार्वती देवी मिथिलायाञ्च जानकी।
द्वारकायां रूक्मिणी च द्रौपदी पाण्डवालये ॥75॥

आप शिवपूज्या, शिव की आराध्या एवं ब्रह्मपूज्या हैं। आप सुरेश्वरी हैं। जीव शिव से भिन्न नहीं है। वामलोचना स्त्री भी शिवा से भिन्ना नहीं है। हे विश्वेशि! इसे मैं जानता हूँ। यह सत्य, सत्य है, इसमें कोई संशय नहीं है ॥71॥

श्री पार्वती ने कहा — हे शङ्कर! आप नित्यस्वरूप हैं। हे नाथ! इसीलिए आपने मुझसे सत्य कहा है। हे शङ्कर! मैं तीनों लोकों में पार्वती हूँ एवं ईश्वरी हूँ। हे देवदेवश! हे सर्वज्ञ! मुझे विशेष बातें बतावें ॥72॥

श्री शिव ने कहा — हे वरानने! मैं विशेष नहीं जानता हूँ। आप बतावें। हे महेशानि! क्योंकि आप सर्वज्ञ की स्त्री सर्वज्ञा हैं ॥73॥

श्री पार्वती ने कहा — गोलोक में मैं राधा हूँ। वैकुण्ठ में मैं कमला हूँ। ब्रह्मलोक में मैं सावित्री हूँ एवं वाक्स्वरूपिणी भारती हूँ ॥74॥

कैलास मे मैं देवी पार्वती हूँ। मिथिला में मैं जानकी हूँ। द्वारका में मैं रूक्मिणी हूँ। पाण्डवालय में मैं द्रौपदी हूँ ॥75॥

गायत्री वेद-जननी सन्ध्याऽहञ्च द्विजन्मनाम् ।
ज्योतिर्मध्ये पूषाऽहञ्च पुष्पे कृष्णा पराजिता ॥76॥
पत्रे मालूरपत्रं हि पीठे योनि-स्वरूपिणी ।
हरिहरात्मिका विद्या ब्रह्म-विष्णु-शिवार्च्चिता ॥77॥
विशेषानुग्रहेणैव विज्ञेया शङ्कर ! प्रभो ! ।
यत्र कुत्र स्थले नाथ ! शक्तिस्तिष्ठति गच्छति ।
तत्रैवाऽहं महादेव ! निश्चितं मतमुत्तमम् ॥78॥
शक्तिमार्गं परित्यज्य योऽन्यमार्गं विधावति ।
करस्थं स मणिं त्यक्त्वा भूति-भावं विधावति ॥79॥
इत्येवञ्च महादेव ! मयोक्तं जगदीश्वर ! ।
अतः परतरं नास्ति नास्ति नास्ति सदाशिव ! ॥80॥

इति मुण्डमालातन्त्रे पार्वतीश्वर-सम्वादे
सप्तमः पटलः ॥7॥

द्विजातिगणों में मैं वेदजननी गायत्री एवं सन्ध्या हूँ। ज्योतियों में मैं पूषा हूँ। पुष्पों में मैं कृष्णा अपराजिता हूँ ॥76॥

पत्रों में मैं मालूर (बिल्व) पत्र हूँ। पीठों में मैं योनिस्वरूपिणी हूँ। मैं ही ब्रह्म, विष्णु एवं शिव के द्वारा अर्च्चित, हरि एवं हर-स्वरूपा विद्या हूँ ॥77॥

हे शङ्कर ! हे प्रभो ! विशेष अनुग्रह के द्वारा इस विद्या को जाना जा सकता है। हे नाथ ! जिस किसी भी स्थल पर शक्ति विद्यमान रहती है एवं गमन करती है। हे महादेव ! मैं तो वहीं पर रहती हूँ। यह मेरा निश्चित मत है ॥78॥

जो साधक शक्ति-मार्ग का परित्याग कर अन्य मार्ग की ओर धावित होता है, वह (वस्तुतः) करस्थित मणि का परित्याग कर ऐश्वर्य के प्रति धावित होता है ॥79॥

हे महादेव ! हे जगदीश्वर ! इस प्रकार मैंने बता दिया है। हे सदाशिव ! इसकी अपेक्षा और श्रेष्ठतर कुछ भी नहीं है, नहीं है, नहीं है ॥80॥

मुण्डमालातन्त्र में पार्वतीश्वर-संवाद में सप्तम पटल का अनुवाद समाप्त ॥7॥

अष्टमः पटलः

श्रीदेव्युवाच —

नमस्ते पार्वतीनाथ ! विश्वनाथ ! दयामय ! ।
ज्ञानात् परतरं नास्ति श्रुतं विश्वेश्वर ! प्रभो ! ॥1॥

दीनबन्धो ! दयासिन्धो ! विश्वेश्वर ! जगत्पते ! ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि गोप्यं परम-कारणम् ।
रहस्यं कालिकायाश्च तारायाश्च सुरोत्तम ! ॥2॥

श्री शिव उवाच —

रहस्यं किं वदिष्यामि पञ्चवक्त्रैर्महेश्वरि ! ।
जिह्वाकोटि- सहस्रैस्तु वक्त्रकोटि-शतैरपि ॥3॥
तथापि तस्या महात्म्यं न शक्नोमि कथञ्चन ।
तस्या रहस्यं गोप्यञ्च किं न जानासि शङ्करि ! ।
स्वस्यैव चरितं वक्तुं स्वयमेव क्षमो भवेत् ॥4॥

श्री देवी ने कहा — हे पार्वतीनाथ ! हे विश्वनाथ ! हे दयामय ! आपको नमस्कार । हे विश्वेश्वर ! हे प्रभो ! मैंने सुना है, ज्ञान से श्रेष्ठतर और कुछ नहीं है ।।1।।

हे दीनबन्धो ! हे दयासिन्धो ! हे विश्वेश्वर ! हे जगत्पते ! हे सुरोत्तम ! सम्प्रति परम कारण, गोपनीय, कालिका एवं तारा के रहस्य को सुनने की इच्छा कर रही हूँ ।।2।।

श्री शिव ने कहा — हे महेश्वरि ! मैं पाँच मुखों के द्वारा रहस्य को क्या बताऊँ ? तथापि सहस्र कोटि जिह्वाओं के द्वारा, शत कोटि मुखों के द्वारा किसी प्रकार उनके माहात्म्य को नहीं बता सकता हूँ ।।3।।

हे शङ्करि ! उनका रहस्य अति गोपनीय है । क्या आप यह नहीं जानती है ? अपने चरित्र को कहने में आप स्वयं ही समर्था हैं ।।4।।

अन्यथा नैव देवेशि! न जानाति कथञ्चन।
कालिकायाः शतं नाम नानातन्त्रे त्वया श्रुतम्।
रहस्यं गोपनीयञ्च तन्त्रेऽस्मिन् जगदम्बिके! ॥5॥
करालवदना काली कामिनी कमला कला।
क्रियावती कोटराक्षी कामाख्या कामसुन्दरी ॥6॥
कपाला च कराला च काली कात्यायनी कुहूः।
कङ्काला कालदमना करुणा कमलार्चिता ॥7॥
कादम्बरी कालहरा कौतुकी कारण-प्रिया।
कृष्णा कृष्ण-प्रिया कृष्ण-पूजिता कृष्णवल्लभा ॥8॥
कृष्णा पराजिता-कृष्ण-प्रिया च कृष्णरूपिणी।
कालिका कालरात्रिश्च कुलजा कुलपण्डिता ॥9॥
कुलधर्मप्रिया कामा काम्य-कर्म विभूषिता।
कुलप्रिया कुलरता कुलीन-परिपूजिता ॥10॥
कुलजा कमला पूज्या कैलास-गणभूषिता।
कूटजा केशिनी कामा कामदा काम-पण्डिता ॥11॥

हे देवेशि! [illegible] भी इसे बतलाया नहीं जा सकता है। [illegible] नाना तन्त्रों में आपने कालिका के शतनाम का श्रवण किया है। हे जगदम्बिके! इस तन्त्र में [illegible] गोपनीय है ॥5॥

करालवदना, काली, कामिनी, कमला, कला, क्रियावती, कोटराक्षी, कामाख्या, कामसुन्दरी ॥6॥

कपाला, कराला, काली, कात्यायनी, कुहू, कङ्काला, कालदमना, करुणा, कमलार्चिता ॥7॥

कादम्बरी, कालहरा, कौतुकी, कारणप्रिया, कृष्णा, कृष्णप्रिया, कृष्णपूजिता, कृष्णवल्लभा ॥8॥

कृष्णापराजिता, कृष्णप्रिया, कृष्णरूपिणी, कालिका, कालरात्रि, कुलजा, कुलपण्डिता ॥9॥

कुलधर्मप्रिया, कामा, काम्यकर्मविभूषिता, कुलप्रिया, कुलरता, कुलीनपरिपूजिता ॥10॥

कुलजा, कमला, पूज्या, कैलासगण भूषिता, कूटजा, केशिनी, कामा, कामदा, कामपण्डिता ॥11॥

करालस्या च कन्दर्पा कामिनी कामदायिनी ।
कोलम्बका कोलरता केशिनी केशभूषिता ॥12॥

केशवम्य प्रिया काशा काश्मीरा केशवार्चिता ।
कामेश्वरी कामरूपा कामदान-विभूषिता ॥13॥

कालहन्त्री कूर्ममांस-प्रिया कूर्मादि-पूजिता ।
केलिनी करकाकारा करकर्म-निषेविनी ॥14॥

कटकेशव-मध्यस्था कटकी कटकार्चिता ।
कटप्रिया कट-रता कटकर्म-निषेविनी ॥15॥

कुमारी- पूजनरता कुमारीगण-सेविता ।
कुलाचारप्रिया कौलप्रिया कुलनिषेविनी ॥16॥

कुलीना कुलधर्मज्ञा कुलभीति-विमर्द्दिनी ।
कामधर्मप्रिया काम्या नित्य-काम्य-स्वरूपिणी ॥17॥

कामरूपा कामहरा काममन्दिर-पूजिता ।
कामागार-स्वरूपा च कामाख्या कामभूषिता ॥18॥

करालाम्या, कन्दर्पा, कामिनी, कामदायिनी, कोलम्बका, कोलरता, केशिनी, केशभूषिता ॥12॥

केशवप्रिया, काशा, काश्मीरा, केशवार्चिता, कामेश्वरी, कामरूपा, कामदानविभूषिता ॥13॥

कालहन्त्री, कूर्ममांस प्रिया, कूर्मादिपूजिता, केलिनी, करकाकारा, करकर्मनिषेविनी ॥14॥

कटकेशवमध्यस्था, कटकी, कटकार्चिता, कटप्रिया, कटरता, कटकर्मनिषेविनी ॥15॥

कुमारीपूजनरता, कुमारीगणसेविता, कुलाचार-प्रिया, कौलप्रिया, कुलनिषेविनी ॥16॥

कुलीना, कुलधर्मज्ञा, कुलभीति-विमर्दिनी, कामधर्म-प्रिया, काम्या, नित्यकाम्यस्वरूपिणी ॥17॥

कामरूपा, कामहरा, काममन्दिर-पूजिता, कामागार-स्वरूपा, कामाख्या, काम-भूषिता ॥18॥

क्रिया-भक्तिरता काम्या कामिनी कामदायिनी ।
कौल पुष्पाम्बरा कौला निकोला कोलहन्तका ॥19॥
कौपिकी केतकी कुन्ती कुन्तलादि-विभूषिता ।
इत्येवं शृणु चार्वङ्गि ! रहस्यं सर्वमङ्गलम् ॥20॥
यः पठेत् परया भक्त्या स शिवो नात्र संशयः ।
शतनाम-प्रसादेन किं न सिध्यति भूतले ॥21॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च वासवाद्या दिवौकसः ।
रहस्य-पठनाद् देवि ! सर्वे ते विगत-ज्वराः ॥22॥
त्रिषु लोकेषु विश्वेशि ! सत्यं गोप्यमतः परम् ।
नास्ति नास्ति महामाये ! तन्त्रमध्ये कथञ्चन ॥23॥
क्रियया च विना देवि ! विना भक्त्या महेश्वरि !।
प्रसन्ना स्यात् करालास्या स्तवपाठाद् दिगम्बरी ॥24॥
सत्यं वच्मि महेशानि ! अतः परतरं न हि ।
न गोलोके न वैकुण्ठे न च कैलास मन्दिरे ॥25॥

क्रिया-भक्ति-रता, काम्या, कामिनी, कामदायिनी, कौलपुष्पाम्बरा, कौला, निकोला, कोलहन्तका ॥19॥

कौपिकी, केतकी, कुन्ती, कुन्तलादि-विभूषिता । हे चार्वङ्गि ! सर्वमङ्गल-रहस्य का इस प्रकार श्रवण करें ॥20॥

जो परम भक्ति के साथ इसका पाठ करता है, वह 'शिव' बन जाता है। इसमें कोई संशय नहीं है। इस भूतल पर शतनाम के प्रसाद से क्या नहीं सिद्ध होता है ? अर्थात् सब कुछ सिद्ध होता है ॥21॥

हे देवि ! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, वासवादि देववृन्द ये सभी इस रहस्य के पाठ के द्वारा विगत-ज्वर बन चुके हैं ॥22॥

हे विश्वेशि ! हे महामाये ! इन तीनों लोकों में, तन्त्रों में, किसी भी प्रकार से इसकी अपेक्षा गोपनीय सत्य और कुछ नहीं है ॥23॥

हे महेश्वरि ! हे देवि ! हे दिगम्बरि ! आराधना एवं भक्ति के बिना (मात्र) स्तव-पाठ के द्वारा करालास्या प्रसन्न बन जाती है ॥24॥

हे महेशानि ! इस स्तवपाठ की अपेक्षा श्रेष्ठतर और कुछ नहीं है। गोलोक में भी नहीं है, वैकुण्ठ में भी नहीं है, कैलास मन्दिर में भी नहीं है। यह मैं सत्य बता रहा हूँ ॥25॥

अतः परतरा विद्या स्तोत्रं कवचमेव च ।
त्रिषु लोकेषु विश्वेशि ! नास्ति नास्ति कदाचन ॥26॥
रात्रावपि दिवाभागे निशाभागे सुरेश्वरि ! ।
प्रजपेद् भक्तिभावेन रहस्यं स्तवमुत्तमम् ॥27॥
शतनाम-प्रसादेन मन्त्रसिद्धिः प्रजायते ।
कुजवारे चतुर्दश्यां निशाभागे जपेत् तु यः ॥28॥
स कृती सर्वशास्त्रज्ञः स कुलीनः सदा शुचिः ।
स कुलज्ञः स कालज्ञः स धर्मज्ञो महीतले ॥29॥
रहस्य-पठनात् देवि ! पुरश्चरणजं फलम् ।
प्राप्नोति देवदेवेशि ! सत्यं परमसुन्दरि ! ॥30॥
स्तवपाठाद् वरारोहे ! किन्न सिद्ध्यति भूतले ।
अणिमाद्यष्टसिद्धिश्च भवत्येव न संशयः ॥31॥
रात्रौ बिल्वतलेऽश्वत्थमूलेऽपराजिता तले ।
प्रपठेत् कालिकास्तोत्रं यथाशक्त्या महेश्वरि ! ॥32॥

हे विश्वेशि ! इस विद्या से श्रेष्ठ दूसरा विद्या, स्तोत्र या कवच तीनों लोकों में कदापि नहीं है, नहीं है ।।26।।

हे सुरेश्वरि ! दिवाभाग में, निशाभाग में या रात्रि में भी भक्तिभाव से उत्तम रहस्य-स्तव का पाठ करे ।।27।।

जो व्यक्ति मङ्गलवार की चतुर्दशी में, निशाभाग में जप (पाठ) करता है, उसे शतनाम-स्तोत्र के प्रसाद से मन्त्रसिद्धि प्राप्त होती है ।।28।।

वह पृथ्वी पर कृती एवं सर्वशास्त्रज्ञ है। वह कुलीन एवं सर्वदा शुचि है। वह कुलज्ञ है। वह कालज्ञ एवं धर्मज्ञ भी है ।।29।।

हे देवि ! हे देवदेवेशि ! हे परम सुन्दरि ! रहस्य स्तव पाठ के द्वारा पुरश्चरण-जनित फल की प्राप्ति होती है ।।30।।

हे वरारोहे ! इस स्तव पाठ से, इस भूतल पर क्या सिद्ध नहीं होता है अर्थात् सब कुछ सिद्ध होता है। अणिमादि अष्ट सिद्धियाँ भी प्राप्त होती हैं। इसमें संशय नहीं है ।।31।।

हे महेश्वरि ! रात्रि में बिल्ववृक्ष के नीचे, अश्वत्थ-वृक्ष के मूल में एवं अपराजिता के नीचे यथाशक्ति कालिका के स्तोत्र का पाठ करे ।।32।।

शतवार-प्रपठनात्-मन्त्रसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ।
उपायो नास्ति देवेशि ! महामन्त्रस्य साधने ॥33॥

अतः परतरं देवि ! नास्ति ब्रह्माण्ड-मण्डले ।
नानातन्त्रं श्रुतं देवि ! मम वक्त्रात् सुरेश्वरि ! ॥34॥

मुण्डमाला-महातन्त्रं महामन्त्रस्य साधनम् ।
भक्त्या भगवतीं दुर्गां दुःख-दारिद्र्य-नाशिनीम् ॥35॥

संस्मरेत् प्रजपेद् ध्यायेत् स मुक्तो नात्र संशयः ।
जीवन्मुक्तः स विज्ञेयस्तन्त्र भक्ति-परायणः ॥36॥

स साधको महाज्ञानी यश्च दुर्गापदानुगः ।
न च भुक्तिर्न वा भक्तिर्न मुक्तिर्नगनन्दिनि ! ।
विना दुर्गां जगद्धात्रीं जायते नात्र संशयः ॥37॥

शक्तिमार्गरतो भूयो योऽन्यमार्गे प्रधावति ।
न च शाक्तास्तस्य वक्त्रं परिपश्यन्ति शङ्करि ! ॥38॥

शतवार स्तोत्र का पाठ करने पर अवश्य ही मन्त्र सिद्धि होती है। हे देवेशि ! महामन्त्र की सिद्धि के बिना अन्य उपाय नहीं है ।।33।।

हे देवि ! इस ब्रह्माण्ड-मण्डल में, इससे अपेक्षा श्रेष्ठ कुछ नहीं है। हे देवि ! हे सुरेश्वरि ! मेरे मुख से नाना तन्त्रों को सुना गया है ।।34।।

'मुण्डमाला महातन्त्र' महामन्त्र का साधन है। भक्ति के साथ दुःख एवं दारिद्र्य नाशिनी भगवती दुर्गा का स्मरण करे, उनके मन्त्र का जप करे तथा उनका ध्यान करे। वह मुक्त हो जाता है इसमें संशय नहीं है। तन्त्र-भक्ति परायण वह व्यक्ति जीवनमुक्त है-ऐसा जानें ।।35-36।।

जो व्यक्ति दुर्गा के पदयुगल का अनुगामी है, वह साधक महाज्ञानी है। हे नगनन्दिनि ! हे जगद्धात्रि ! दुर्गा के बिना भोग उत्पन्न नहीं होता है, भक्ति उत्पन्न नहीं होती है, मुक्ति भी उत्पन्न नहीं होती है। इसमें संशय नहीं है ।।37।।

हे शङ्करि ! जो व्यक्ति शक्तिमार्ग में अनुरक्त रहकर पुनः अन्य मार्ग के प्रति गमन करता है, शाक्तगण उसके मुख का दर्शन नहीं करते ।।38।।

विना दुर्गां जगद्धात्रि ! वाग्जाल-शास्त्र-मोहिताः ।
अन्यदेवं भजन्त्येते ये चान्य-शास्त्र घूर्णिताः ।।39।।

विना तन्त्राद् विना मन्त्राद् विना यन्त्रान्महेश्वरि ! ।
न च भक्तिश्च मुक्तिश्च जायते वरवर्णिनि ! ।।40।।

तन्त्र-वक्ता गुरुः साक्षाद् यथा च ज्ञानदः शिवः ।
यथा गुरुर्महेशानि ! यथा च परमो गुरुः ।।41।।

यथा परापरगुरुः परमेष्ठी यथा गुरुः ।
तथा चैव हि तन्त्रज्ञ स्तन्त्रवक्ता गुरुः स्वयम् ।।42।।

तन्त्रञ्च तन्त्रवक्तारं निन्दन्ति तन्त्रिकीं क्रियाम् ।
ये जना भैरवास्तेषां मांसास्थि-चर्वणोद्यताः ।।43।।

अतएव च तन्त्रज्ञं न निन्दन्ति कदाचन ।
न हसन्ति न हिंसन्ति न वदन्त्यन्यथा इति ।।44।।

हे जगद्धात्रि ! जो (व्यक्ति) वाग्जाल-शास्त्र के द्वारा मुग्ध बन गया है, अन्य शास्त्र के द्वारा भ्रान्त बन गया है, वही दुर्गा का परित्याग कर, अन्य देवता की भजना करता है ।।39।।

हे वरवर्णिनि ! हे महेश्वरि ! तन्त्र के बिना, मन्त्र के बिना, यन्त्र के बिना भक्ति उत्पन्न नहीं होती है, मुक्ति भी उत्पन्न नहीं होती है ।।[illegible]।।

हे महेशानि ! ज्ञानप्रद शिव जिस प्रकार गुरु हैं तन्त्र वक्ता भी उसी प्रकार साक्षात् गुरु हैं । गुरु जिस प्रकार गुरु है, परमगुरु जिस प्रकार गुरु है, परापरगुरु जिस प्रकार गुरु है, परमेष्ठी गुरु जिस प्रकार गुरु है, तन्त्रज्ञ तन्त्रवक्ता भी उसी प्रकार स्वयं गुरु हैं ।।41-42।।

जो व्यक्ति तन्त्र की, तन्त्र वक्ता की एवं तान्त्रिकी क्रिया की निन्दा करता है, भैरवगण उसके मांस एवं अस्थि को चर्वण के लिए उद्यत हो जाते हैं ।।43।।

इसलिए कोई कभी तन्त्रज्ञ व्यक्ति की निन्दा नहीं करता है, तन्त्रज्ञ व्यक्ति को देखकर नहीं हँसता है, तन्त्रज्ञ व्यक्ति से कभी ईर्ष्या नहीं करता है एवं अन्य प्रकार बातें भी नहीं करता है ।।44।।

श्री पार्वत्युवाच –

शृणु देव ! जगद्वन्धो ! मद्वाक्यं दृढ निश्चितम् ।
तव प्रासादाद् देवेश ! श्रुतं कालीरहस्यकम् ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि तारया वद साम्प्रतम् ॥45॥

श्री शिव उवाच –

धन्यासि देवदेवेशि ! दुर्गे ! दुर्गार्त्तिनाशिनि ! ।
यं श्रुत्वा मोक्षमाप्नोति पठित्वा नगनन्दिनि ! ॥46॥
तारिणी तरला तन्वी तारा तरुण-वल्लरी ।
तीव्ररूपा तरा श्यामा तनुक्षीण-पयोधरा ॥47॥
तुरीया तरला तीव्रगमना नीलवाहिनी ।
उग्रतारा जया चण्डी श्रीमदेकजटा शिवा ॥48॥
तरुणा शाम्भवी छिन्ना भागा च भद्रतारिणी ।
उग्रा उग्रप्रभा नीला कृष्णा नील-सरस्वती ॥49॥
द्वितीया शोभनी नित्या नवीना नित्य-नूतना ।
चण्डिका विजयाराध्या देवी गगनवाहिनी ॥50॥

श्री पार्वती ने कहा – हे देव ! हे जगद्वन्धो ! दृढ निश्चित होकर मेरे वाक्य को सुनें । हे देवेश ! आपके अनुग्रह से मैंने कालीरहस्य को सुना है । सम्प्रति तारा के रहस्य को सुनने की इच्छा कर रही हूँ । सम्प्रति आप इसे बतावें ॥45॥

श्री शिव ने कहा – हे देवदेवेशि ! हे दुर्गे ! हे दुर्गार्त्तिनाशिनि ! आप धन्य हैं । हे नगनन्दिनि ! जिस रहस्य-स्तोत्र का श्रवण कर एवं पाठ कर लोग मोक्ष लाभ करते हैं, उसे सुनें ॥46॥

तारिणी, तरला, तन्वी, तारा, तरुणवल्लरी (तरुणावल्लरी), तीव्ररूपा, तरा, श्यामा, तनुक्षीणा, पयोधरा ॥47॥

तुरीया, तरला, तीव्रगमना, नीलवाहिनी, उग्रतारा, जया, चण्डी, श्रीमदेकजटा, शिवा ॥48॥

तरुणा, शाम्भवी, छिन्ना, भागा, भद्रतारिणी, उग्रा, उग्रप्रभा, नीला, कृष्णा, नीलसरस्वती ॥49॥

द्वितीया, शोभिनी, नित्या नवीना, नित्यनूतना, चण्डिका विजया, आराध्या, देवी, गगनवाहिनी ॥50॥

अट्टहास्या करालास्या चतुरास्यादि-पूजिता।
रौद्रा रौद्रमयी मूर्त्तिर्विशोका शोकनाशिनी ॥51॥

शिवपूज्या शिवाराध्या शिवध्येया सनातनी।
ब्रह्मविद्या जगद्धात्री निर्गुणा गुण-पूजिता ॥52॥

सगुणा सगुणाराध्या हरीन्द्रदेव-पूजिता।
रक्तप्रिया च रक्ताक्षी रुधिरासवभूषिता ॥53॥

बलिप्रिया बलिरता दुर्गा बलवती बला।
बलप्रिया बलरता बलराम-प्रपूजिता ॥54॥

अर्द्धकेशेश्वरी केशा केशवेश-विभूषिता।
पद्ममाला च पद्माक्षी कामाक्षी गिरिनन्दिनी ॥55॥

दक्षिणा चैव दक्षा च दक्षजा दक्षिणे रता।
वज्रपुष्पप्रिया रक्तप्रिया कुसुमभूषिता ॥56॥

माहेश्वरी महादेवप्रिया पञ्चविभूषिता।
इड़ा च पिङ्गला चैव सुषुम्ना प्राणरूपिणी ॥57॥

अट्टहास्या, करालास्या, चतुरास्यादि पूजिता (ब्रह्मादि-पूजिता), रौद्रा, रौद्रमयी, मूर्त्ति, विशोका, शोकनाशिनी ॥51॥

शिवपूज्या, शिवाराध्या, शिवध्येया, सनातनी, ब्रह्मविद्या, जगद्धात्री, निर्गुणा, गुण-पूजिता ॥52॥

सगुणा, सगुणाराध्या, हरीन्द्रदेव-पूजिता, रक्तप्रिया, रक्ताक्षी, रुधिर एवं आसव के द्वारा भूषिता ॥53॥

बलिप्रिया, बलिरता, दुर्गा, बलवती, बला, बलप्रिया, बलरता, बलराम-प्रपूजिता ॥54॥

अर्द्धकेशेश्वरी, केशा, केशवेश-विभूषिता, पद्ममाला, पद्माक्षी, कामाक्षी, गिरिनन्दिनी ॥55॥

दक्षिणा, दक्षा, दक्षजा, दक्षिणेरता, वज्रपुष्पप्रिया, रक्तप्रिया, कुसुमभूषिता ॥56॥

माहेश्वरी, महादेवप्रिया, पञ्चविभूषिता, इड़ा, पिङ्गला, सुषुम्ना, प्राणधारिणी ॥57॥

गान्धारी पञ्चमी पञ्चाननादि-परिपूजिता ।
इत्येतत् कथितं देवि ! रहस्यं परमात्मकम् ।
श्रुत्वा मोक्षमवाप्नोति तारादेव्याः प्रसादतः ॥58॥
य इदं प्रपठेत् स्तोत्रं तारायास्तु रहस्यकम् ।
सर्वसिद्धीश्वरो भूत्वा विहरेत् क्षितिमण्डले ॥59॥
तस्यैव मन्त्रसिद्धिः स्यान्मन्त्र-सिद्धिरनुत्तमा ।
भवत्येवं महामाये ! सत्यं सत्यं न संशयः ॥60॥
मन्दे मङ्गलवारे च यः पठेन्निशि संयतः ।
तस्यैव मन्त्रसिद्धिः स्याद् गाणपत्यं लभेत सः ॥61॥
श्रद्धयाऽश्रद्धया वापि पठेत् तारा रहस्यकम् ।
सोऽचिरेणैव कालेन जीवन्मुक्तः शिवो भवेत् ॥62॥
सहस्रावर्त्तनाद् देवि ! पुरश्चर्या-फलं लभेत् ।
एवं सततयुक्ता ये ध्यायन्तस्तामुपासते ॥63॥

गान्धारी, पञ्चमी, पञ्चाननादि परिपूजिता । हे देवि ! इस प्रकार इस परम रहस्य का कथन किया गया। इसका श्रवण कर, तारादेवी के प्रसाद से लोग मोक्ष लाभ करते हैं ॥58॥

जो इस तारा के रहस्य-स्तोत्र का पाठ करता है, वह सर्वसिद्धियों का अधिपति बनकर क्षितिमण्डल पर विचरण करता है ॥59॥

हे महामाये ! उसे ही मन्त्र सिद्धि की प्राप्ति होती है। इस प्रकार उसे अति उत्तम मन्त्रसिद्धि प्राप्त हो सकती है। यह सत्य, सत्य है। इसमें कोई संशय नहीं है ॥60॥

जो शनिवार एवं मङ्गलवार को संयत होकर रात्रि में इस रहस्य-स्तोत्र का पाठ करता है, उसे ही मन्त्र सिद्धि (प्राप्त) होती है। वही गाणपत्य का लाभ करता है ॥61॥

जो श्रद्धा से या अश्रद्धा से तारा के रहस्य स्तोत्र का पाठ करता है, वह शीघ्र ही जीवनमुक्त होकर 'शिव' बन जाता है ॥62॥

हे देवि ! इस स्तोत्र के सहस्रबार आवृत्ति से पुरश्चरण के फल का लाभ होता है। इस प्रकार, सर्वदा संयत होकर एवं ध्यानयुक्त होकर जो उसकी उपासना करता है ॥63॥

ते कृतार्था महेशानि ! मृत्यु-संसार बन्धनात् ।
रहस्यं तारिणी-देव्याः कालिकायाः श्रुतं त्वया ॥64॥
सारं परमगोप्यञ्च शिवध्येयं शिव-प्रदम् ।
इदानीञ्च वरारोहे ! भूयः किं श्रोतुमिच्छसि ॥65॥

इति देवीश्वर-संवादे मुण्डमालातन्त्रे कालीतारा-रहस्ये
अष्टमः पटलः ॥8॥

हे महेशानि ! वे कृतार्थ होकर मृत्युतुल्य संसार बन्धन से मुक्त हो जाते हैं। कालिका एवं तारिणी देवी के रहस्य को आपने सुना है ।।64।।

यह सार (तत्त्व) परम गोप्य, शिवध्येय एवं शिवप्रद है । हे वरारोहे ! सम्प्रति पुनः यह बतावें कि आप किस विषय को सुनने की इच्छा कर रही हैं ।।65।।

मुण्डमालातन्त्र में देवी एवं ईश्वर के संवाद में काली-तारा रहस्य में
अष्टम पटल का अनुवाद समाप्त ॥8॥

नवमः पटलः

रहस्यं पार्वतीनाथ-वक्त्रात् श्रुत्वा च पार्वती ।
महादेवं महेशान मीशमाह महेश्वरी ॥1॥

पार्वत्युवाच —

त्रिलोकेश ! जगन्नाथ ! देवदेव ! सदाशिव ! ।
त्वत् प्रसादान्महादेव ! श्रुतं तन्त्रं पृथग्विधम् ॥2॥

इदानीं वर्त्तते श्रद्धागमशास्त्रे ममैव हि ।
यदि प्रसन्नो भगवन् ! ब्रूह्युपायं महोदयम् ॥3॥

नानातन्त्रे महादेव ! श्रुतं नानाविधं मतम् ।
कृतार्थास्मि कृतार्थास्मि कृतकार्यास्मि शङ्कर ! ॥4॥

प्रसन्ने शङ्करे नाथ ! किं भयं जगतीतले ।
विना शिव-प्रसादेन न सिध्यति कदाचन ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि भुवनाया रहस्यकम् ॥5॥

महेश्वरी पार्वती पार्वती-पति के मुख से रहस्य को सुनकर, सर्वेश्वर महेशान महादेव से कहने लगीं ॥1॥

श्री पार्वती ने कहा — हे त्रिलोकेश ! हे जगन्नाथ ! हे देवदेव ! हे सदाशिव ! हे महादेव ! आपके प्रसाद से नाना प्रकार के तन्त्रों का मैं श्रवण कर चुकी हूँ ॥2॥

इस समय मुझमें आगमशास्त्र में श्रद्धा हो रही है। हे भगवन् ! यदि आप प्रसन्न हैं, तो मुझे महोदय लाभ के उपाय को बतावें ॥3॥

हे महादेव ! नाना तन्त्रों में नाना प्रकार के मतों का मैंने श्रवण किया है। हे शङ्कर ! इससे मैं कृत कृतार्थ बन गयी हूँ एवं कृतकार्य भी बनी हूँ ॥4॥

हे नाथ ! शङ्कर प्रसन्न होने पर इस पृथ्वीतल पर कैसा भय ? कोई भय नहीं है। शिव के अनुग्रह के बिना कदापि कुछ सिद्ध नहीं होता। सम्प्रति मैं भुवनेश्वरी के रहस्य को सुनने की इच्छा कर रही हूँ ॥5॥

श्री शङ्कर उवाच —

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि गुह्याद् गुह्यतरं परम् ।
पठित्वा परमेशानि मन्त्रसिद्धिमवाप्नुयात् ॥6॥
आद्या श्रीभुवना भव्या भवबन्ध-विमोचनी ।
नारायणी जगद्धात्री शिवा विश्वेश्वरी परा ॥7॥
गान्धारी परमा विद्या जगन्मोहनकारिणी ।
सुरेश्वरी जगन्माता विश्वमोहनकारिणी ॥8॥
भुवनेशी महामाया देवेशी हरवल्लभा ।
कराला विकटाकारा महाबीज-स्वरूपिणी ॥9॥
त्रिपुरेशी त्रिलोकेशी दुर्गा त्रिभुवनेश्वरी ।
माहेश्वरी शिवाराध्या शिव-पूज्या सुरेश्वरी ॥10॥
नित्या च निर्मला देवी सर्वमङ्गल-कारिणी ।
सदाशिव-प्रिया गौरी सर्वमङ्गल शोभिनी ॥11॥
शिवदा सर्वसौभाग्य-दायिनी मङ्गलात्मिका ।
घोरदंष्ट्रा-करालास्या मधु-मांस-बलि-प्रिया ॥12॥

श्री शङ्कर ने कहा — हे देवि ! मैं तुम्हें गुह्यतर श्रेष्ठ रहस्य को बता रहा हूँ, श्रवण करें । हे महेशानि ! इसे पाठ कर (साधक) मन्त्र सिद्धि का लाभ कर सकता है ॥6॥

आद्या, श्रीभुवना, भव्या, भवबन्ध विमोचनी, नारायणी, जगद्धात्री, शिवा, विश्वेश्वरी, परा ॥7॥

गान्धारी, परमा-विद्या, जगन्मोहन कारिणी, सुरेश्वरी, जगन्माता, विश्व-मोहनकारिणी ॥8॥

भुवनेशी, महामाया, देवेशी, हरवल्लभा, कराला, विकटाकारा, महाबीज-स्वरूपिणी ॥9॥

त्रिपुरेशी, त्रिलोकेशी, दुर्गा, त्रिभुवनेश्वरी, माहेश्वरी, शिवाराध्या, शिवपूज्या, सुरेश्वरी ॥10॥

नित्या, निर्मला, देवी, सर्वमङ्गलकारिणी, सदाशिव-प्रिया, गौरी, सर्वमङ्गल शोभिनी ॥11॥

शिवदा, सर्वसौभाग्य दायिनी, मङ्गलात्मिका, घोरदंष्ट्रा, करालास्या, मधुमांसबलि-प्रिया ॥12॥

सर्वदुःख-हरा चण्डी सर्वमङ्गलकारिणी ।
पार्वती तारिणी देवी भीमा भय-विनाशिनी ॥13॥
त्रैलोक्य-जननी तारा तारिणी तरुणा क्षमा ।
भक्तिमुक्तिप्रदा भुक्तिप्रदा शङ्कर-वल्लभा ॥14॥
उमा गौरी प्रिया माध्वीप्रिया च वारुणप्रिया ।
भैरवी भैरवानन्ददायिनी भैरवात्मिका ॥15॥
ब्रह्मपूज्या च ब्रह्माणी रुद्राणी रुद्रपूजिता ।
रुद्रेश्वरी रुद्ररूपा त्रिपुटा त्रिपुरा मता ॥16॥
वसुदा नाथरूपा च विश्वनाथ-प्रपूजिता ।
आनन्दरूपिणी श्यामा रघुनाथ-वरप्रदा ॥17॥
आनन्दार्णवमग्ना सा राजराजेश्वरी मता ।
भवानी च भवानन्द-दायिनी भवमोहिनी ॥18॥
सुरराजेश्वरी चण्डी प्रचण्डा घोरनादिनी ।
घनश्यामा घनवती महाघन-निनादिनी ॥19॥
घोरजिह्वा ललजिह्वा देवेशी नगनन्दिनी ।
त्रैलोक्य-मोहिनी विश्व-मोहिनी विश्वरूपिणी ॥20॥

सर्वदुःखहरा, चण्डी, सर्वमङ्गलकारिणी, पार्वती, तारिणीदेवी, भीमा, भय-विनाशिनी ॥13॥

त्रैलोक्य-जननी, तारा, तारिणी, तरुणा, क्षमा, भक्ति-मुक्तिप्रदा, भुक्तिप्रदा, शङ्कर-वल्लभा ॥14॥

उमा, गौरीप्रिया, माध्वीप्रिया, वारुणप्रिया, भैरवी, भैरवानन्द-दायिनी, भैरवात्मिका ॥15॥

ब्रह्मपूज्या, ब्रह्माणी, रुद्राणी, रुद्रपूजिता, रुद्रेश्वरी, रुद्ररूपा, त्रिपुटा, त्रिपुरा ॥16॥

वसुदा, नाथरूपा, विश्वनाथ-प्रपूजिता, आनन्दरूपिणी, श्यामा, रघुनाथ-वरप्रदा ॥17॥

आनन्दार्णवमग्ना, राजराजेश्वरी, भवानी, भवानन्ददायिनी, भवमोहिनी ॥18॥

सुरराजेश्वरी, चण्डी, प्रचण्डा, घोरनादिनी, घनश्यामा, घनवती, महाघन-निनादिनी ॥19॥

घोरजिह्वा, ललजिह्वा, देवेशी, नगनन्दिनी, त्रैलोक्यमोहिनी, विश्वमोहिनी, विश्वरूपिणी ॥20॥

षोडशी त्रिपुरा ब्रह्मदायिनी ब्रह्मदाऽनघा।
इत्येतत् परमं ब्रह्म-स्तोत्रं परमकारणम् ॥21॥
यः पठेत् परया भक्त्या जीवन्मुक्तः स एव हि।
ब्रह्माद्या देवताः सर्वा मुनयस्तन्त्रकोविदाः।
पठित्वा परया भक्त्या ब्रह्मसिद्धि मवाप्नुयात् ॥22॥
मन्त्रसङ्केतमज्ञात्वा विद्या सङ्केतकं तथा।
धीर-सङ्केतकं देवि योनिमुद्रात्मकं प्रिये ! ॥23॥

श्री पार्वती उवाच —

सङ्केतं समयाचारं कुल-सङ्केतकं तथा।
यन्त्र-(ब्रह्म) सङ्केतकं सिद्धिसङ्केतं बहुविस्तरम् ॥24॥
कुलार्णवे श्रुतं नाथ ! श्रुतं मे मोहने प्रभो।
विद्या-सङ्केतचरितं ब्रूहि विश्वेश्वर ! प्रभो ! ॥25॥

श्रीशङ्कर उवाच —

विद्यानामुत्तमा विद्या महाविद्या प्रकीर्त्तिता।
यस्याः स्मरणमात्रेण मन्त्रसिद्धिः प्रजायते ॥26॥

षोडशी, त्रिपुरा, ब्रह्मदायिनी, ब्रह्मदा, अनघा - यह परम कारण श्रेष्ठ ब्रह्मस्तोत्र इस प्रकार है ।।21।।

जो परम भक्ति के साथ इसका पाठ करता है, वही जीवन्मुक्त हो जाता है। ब्रह्मादि देवता, समस्त मुनिगण, तन्त्रवित् पण्डितगण, परम भक्ति के साथ इसका पाठ कर, ब्रह्म-सिद्धि का लाभ कर सकते हैं ।।22।।

हे देवि ! हे प्रिये ! मन्त्र संकेत को न जानकर, उसी प्रकार विद्या सङ्केत को न जानकर, योनिमुद्रा-रूप धीर सङ्केत को न जानकर, कोई (व्यक्ति) सिद्धि लाभ नहीं कर सकता है ।।23।।

श्री पार्वती ने कहा — हे नाथ ! हे प्रभो ! सङ्केत, समयाचार, कुलसङ्केत, यन्त्र (ब्रह्म) सङ्केत एवं सिद्धि-सङ्केत को मोहनतन्त्र मे एवं कुलार्णव-तन्त्र में अनेक बार विस्तार से सुन चुकी हूँ। हे प्रभो ! हे विश्वेश्वर ! सम्प्रति विद्या-सङ्केत-चरित को बतावें ।।24-25।।

श्री शिव ने कहा — जिन विद्या के स्मरण-मात्र से ही मन्त्र-सिद्धि उत्पन्न होती है, उन विद्याओं में उत्तमा विद्या 'महाविद्या' के नाम से कही गयी है ।।26।।

मन्त्रसङ्केतमज्ञात्वा यो भजेद् विश्वमोहिनीम् ।
शतवर्ष जपेनापि तस्य सिद्धिर्न जायते ।।27।।
विद्याद्या च द्वितीया च षोडशी भुवनेश्वरी ।
भैरवी-ज्ञानमात्रेण सिद्धि-सिद्धा भवन्ति हि ।।28।।
इड़ा पिङ्गलयोर्मध्ये दुर्गमा विश्वमोहिनी ।
तस्याः प्रभेद-संस्कारं यो जानाति स पण्डितः ।।29।।
स धन्यः स कृती लोके स वीरः सर्वशः शुचिः ।
स भैरवश्च विज्ञेयः सदा सुख विवर्द्धकः ।।30।।
एवं करालवदनां मुण्डमाला-विभूषिताम् ।
यो जानाति जगद्धात्रीं जीवन्मुक्तः स एव हि ।।31।।
विशेषञ्च प्रवक्ष्यामि कुलभक्त्या तु सिद्ध्यति ।
कुलभक्तिं विना देवि ! न मुक्तिर्न च सद्गतिः ।।32।।
सत्ये तु सुन्दरी आद्या त्रेतायां भुवनेश्वरी ।
द्वापरे तारिणी आद्या कलौ काली प्रकीर्त्तिता ।।33।।

जो व्यक्ति मन्त्र संकेत को न जानकर विश्वमोहिनी की भजना करता है, शतवर्ष जप के द्वारा भी उसकी सिद्धि उत्पन्न नहीं होती है ।।27।।

आद्या विद्या (काली), द्वितीया विद्या (तारा) षोडशी, भुवनेश्वरी एवं भैरवी के ज्ञानमात्र के द्वारा साधकगण सिद्धि से सिद्ध हो जाते हैं ।।28।।

इड़ा एवं पिङ्गला नाड़ी के मध्य में दुर्गमा विश्वमोहिनी अवस्थान कर रही हैं। जो उनके भेद संस्कार को जानता है, वही पण्डित है ।।29।।

इस लोक में वही धन्य है, वही कृति है, वही वीर है, वह सभी स्थानों में शुचि है। उसे सर्वदा सुखविवर्द्धक भैरव जानें ।।30।।

मुण्डमाला विभूषिता करालवदना जगद्धात्री को जो इस प्रकार से जानता है, वही जीवन्मुक्त है ।।31।।

यह विशेष बात बता रहा हूँ कि कुलभक्ति के द्वारा सिद्धि-लाभ होता है। हे देवि ! कुलभक्ति के बिना मुक्ति नहीं होती, सद्गति भी नहीं होती ।।32।।

सत्ययुग में 'तारिणी' आद्या (प्रधाना), त्रेता युग में 'भुवनेश्वरी' आद्या, द्वापर युग में 'तारिणी' आद्या एवं कलियुग में 'काली' आद्या के रूप में कही गयी हैं ।।33।।

नामभेदं प्रवक्ष्यामि रूपभेदं वरानने ! ।
न भेदः कालिकालाश्च ताराया जगदम्बिके ! ॥34॥

षोडश्या भुवनायाश्च भैरव्यस्त्रिपुरेश्वरि ! ।
छिन्नायाश्चैव धूमाया भीमाया परमेश्वरि ! ॥35॥

ततश्च बगला-मुख्या मातङ्ग्याश्च सुरेश्वरि ! ।
न च भेदो महेशानि ! विद्याया वरवर्णिनि ! ॥36॥

पार्वत्युवाच —

विश्वनाथ ! महादेव ! महेश्वर ! जगद्गुरो ! ।
पृच्छाम्येकं महाभाग ! योगेन्द्रं ! वृषभध्वज ! ॥37॥

कृष्णायाः करवीरस्य द्रोणस्य च सदाशिवः ।
बिल्वपत्रस्य माहात्म्यं जवाया वद शङ्कर ! ॥38॥

श्रीशङ्कर उवाच —

धन्यासि पतिभक्तासि प्राणतुल्यासि शङ्करि ! ।
अतिगोप्यं जगद्धात्रि ! देवानामपि दुर्लभम् ॥39॥

हे वरानने ! सम्प्रति नामभेद एवं रूपभेद (मूर्तिभेद) को बताऊँगा । हे जगदम्बिके ! कालिका एवं तारा में कोई भेद नहीं है ।।34।।

हे परमेश्वरि ! हे त्रिपुरेश्वरि ! हे सुरेश्वरि ! हे वरवर्णिनि ! महाविद्या, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, भीमा, धूमावती, बगलामुखी, मातङ्गी - इनमें परस्पर में भेद नहीं है ।।35-36।।

श्री पार्वती ने कहा — हे विश्वनाथ ! हे महादेव ! हे महेश्वरी ! हे जगद्गुरो ! हे महाभाग ! हे योगेन्द्र ! हे वृषभध्वज ! एक बात की जिज्ञासा कर रही हूँ ।।37।।

हे सदाशिव ! हे शङ्कर ! कृष्णापराजिता, करवीर, द्रोणपुष्प, जवा एवं बिल्वपत्र के माहात्म्य को बतावें ।।38।।

श्रीशङ्कर ने कहा — हे शङ्करि ! आप पतिभक्ता हैं, आप मेरी प्राणतुल्या हैं । हे जगद्धात्रि ! आपका जिज्ञास्य विषय अतिगोपनीय है, देवतागणों के लिए भी दुर्लभ है ।।39।।

कृष्णापराजिता साक्षाद् भद्रकाली न संशयः ।
करवीरञ्च भुवना द्रोणं त्रिपुरसुन्दरी ॥40॥
जवा साक्षाद् भगवती सर्वविद्या-स्वरूपिणी ।
ये साधका जगन्मातरर्चयन्ति शिवप्रियाम् ॥41॥
एतैश्च कुसुमैश्चण्डीं स शिवो नात्र संशयः ।
किं जपैः किं तपोभिर्वा किं दानैः किमध्वरैः ॥42॥
येनार्चिता जगद्धात्री द्रोण-कृष्णा-जवादिभिः ।
राजसूयाश्वमेधाद्यैर्वाजपेयाग्नीषोमकैः ।
फलं यज्जायते चण्डि ! तत् सर्वं कुसुमार्चनात् ॥43॥
जवां द्रोण तथा कृष्णां मन्दारं करवीरजम् ।
साक्षात् ब्रह्मस्वरूपञ्च महादेव्यै निवेदयेत् ॥44॥
श्वेतचन्दन-संयुक्तं रक्तचन्दन-लेपितम् ।
यो दद्याद् भक्तिभावेन स विश्वेशो न संशयः ॥45॥

कृष्णा अपराजिता साक्षात् भद्रकाली हैं – इसमें संशय नहीं है । करवीर पुष्प साक्षात् भुवनेश्वरी है एवं द्रोणपुष्प साक्षात् त्रिपुरसुन्दरी है ॥40॥

जवापुष्प सर्वविद्या स्वरूपिणी साक्षात् भगवती हैं । हे जगन्मातः ! जो साधक इन पुष्पों के द्वारा शिवप्रिया चण्डी की अर्चना करता है, वह 'शिव' बन जाता है । इसमें कोई संशय नहीं है ॥41॥

जिस साधक के द्वारा जगद्धात्री, द्रोणपुष्प, कृष्णा अपराजिता पुष्प एवं जवापुष्प प्रभृति के द्वारा अर्चना हुई है उन (साधक) को जप से, तपस्या से, दान से या यज्ञ से क्या प्रयोजन ? अर्थात् कोई प्रयोजन नहीं है ॥42॥

राजसूय यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ, वाजपेय यज्ञ एवं अग्नीषोम यज्ञ के द्वारा जो फल प्राप्त होता है, हे चण्डि ! वे समस्त फल इन पुष्पों के द्वारा अर्चना किये जाने उत्पन्न हो जाते हैं ॥43॥

साक्षात् ब्रह्म स्वरूप जवापुष्प, द्रोणपुष्प, कृष्णा अपराजिता पुष्प, मन्दारपुष्प एवं करवीर पुष्प महादेवी को निवेदित करें ॥44॥

जो साधक भक्तिभाव से महादेवी को श्वेतचन्दन-संयुक्त एवं रक्तचन्दन-लिप्त इन पुष्पों को निवेदित करता है, वह 'विश्वेश्वर' है, इसमें सन्देह नहीं है ॥45॥

महाघोरे महोत्पाते महाविपदि सङ्कटे ।
महादुःखे महारोगे महाशोके महाभये ॥46॥

पूजयेत् कालिकां तारां भुवनां षोडशीं शिवाम् ।
बालां छिन्नां च बगलां धूमां भीमां करालिनीम् ॥47॥

कमलामन्नपूर्णां च दुर्गां दुःख-विनाशिनीम् ।
सर्वविद्यां जवा-द्रोण-करवीरैर्मनोहरैः ॥48॥

मालुरपत्रैः कृष्णाभिः कृष्णां सम्पूज्य भूतले ।
साधकेन्द्रो महेशानि ! स भवेन्नात्र संशयः ॥49॥

लक्षाणां महिषैर्मेषैरजैर्दानैर्मखैः शुभैः ।
पूजिता सा जगद्धात्री यद्येषा कुसुमार्चिता ॥50॥

माहात्म्यञ्चापि कृष्णायाः कृष्णा जानाति भूतले ।
तदर्द्धञ्चाप्यऽहं देवि । तदर्द्धं श्रीपतिः सदा ॥51॥

महाघोर में, महोत्पात में, महाविपद् में, संकट में, महादुःख में, महारोग में, महाशोक में, महाभय में जवापुष्प, द्रोणपुष्प एवं मनोहर करवीर पुष्प के द्वारा काली, भुवनेश्वरी, शिवा षोडशी, बाला, छिन्नमस्ता, बगला, करालिनी भीमा धूमावती, कमला, अन्नपूर्णा एवं सर्वविद्या स्वरूपिणी दुःखविनाशिनी दुर्गा की पूजा करें ।।46-48।।

हे महेशानि ! इस भूतल पर बिल्वपत्र एवं कृष्णा अपराजिता पुष्प के द्वारा कृष्णा की पूजा करके साधक साधकेन्द्र बन जाता है । इसमें कोई संशय नहीं है ।।49।।

एक लक्ष महिष, मेष एवं छागल (बकरी) के द्वारा, दान के द्वारा एवं शुभ यज्ञ के द्वारा वह जगद्धात्री पूजिता होने पर, जो फल (साधक को) प्राप्त होता है, यदि वह (देवी) इन समस्त पुष्पों के द्वारा अर्चिता होती हैं, तो भी वही फल प्राप्त होता है ।।50।।

इस पृथिवी पर कृष्णा, कृष्णा अपराजिता के माहात्म्य को सम्पूर्णरूप से जानती हैं । हे देवी ! मैं उस (माहात्म्य) के अर्द्धभाग को ही जानता हूँ । श्रीपति सर्वदा उसके (अर्द्धभाग के) अर्द्धभाग को ही जानते हैं ।।51।।

तदर्द्धमब्जजन्मा वै तदर्द्धं वेद-साधकः।
अस्य पुष्पस्य माहात्म्यं संक्षेपाद् वच्मि शङ्करि! ॥52॥
पृथिव्यामनले स्वर्गे वैकुण्ठे कालिकापुरे।
जवादि-करवीरैश्च दानैः किं किं फलं भवेत्।
न जानामि जगद्धात्रि! को वेद पार्वतीं विना ॥53॥
करवीरैः श्वेतरक्तैः रक्तचन्दन-मिश्रितैः।
पूजयेत् क्ष्मातले यस्तु स विश्वेशो भवेद् ध्रुवम् ॥54॥
कृष्णापराजिता-पुष्पैर्यस्तु देवीं प्रपूजयेत्।
सोऽश्वमेध-सहस्राणां फलं प्राप्य शिवां व्रजेत्।
बिल्वपत्रस्य माहात्म्यं देवानामपि दुर्लभम् ॥55॥
यो दद्याद् बिल्वपत्रञ्च शिवायै शङ्कराय च।
सदाशिव समो भूत्वा सद् गच्छेद् ब्रह्ममन्दिरम् ॥56॥
महाविपत्तौ देवेशि! जवां कृष्णापराजिताम्।
द्रोणं वा करवीरं वा स गच्छेत् कालिकापुरम् ॥57॥

पद्मयोनि ब्रह्मा इसके भी अर्द्धभाग को जानते हैं। वेद-साधक इसके भी अर्द्धभाग को जानते हैं। हे शङ्करि! इस पुष्प के माहात्म्य को संक्षेप में बता रहा हूँ ।।52।।

हे जगद्धात्रि! जवादि करवीर पुष्पों के दान से क्या क्या फल प्राप्त होता है, इसे इस पृथिवी पर, अनल में, स्वर्ग में, वैकुण्ठ में या कालिकापुर में दुर्गा के बिना कौन जानता है? मैं नहीं जानता ।।53।।

जो व्यक्ति पृथिवी पर रक्तचन्दन से लिप्त श्वेत एवं रक्त-करवीर पुष्प के द्वारा महादेवी की पूजा करता है, वह निश्चय ही 'विश्वेश्वर' बन जाता है ।।54।।

जो व्यक्ति कृष्णा अपराजिता पुष्प के द्वारा देवी की पूजा करता है, वह सहस्र अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त कर शिवा का लाभ करता है ।।55।।

बिल्वपत्र का माहात्म्य देवगणों के लिए भी दुर्लभ है। जो व्यक्ति शिव एवं शिवा को बिल्वपत्र का दान करता है, वह सदाशिव के तुल्य बनकर ब्रह्ममन्दिर में गमन करता है ।।56।।

हे देवेशि! जो महाविपद् में जवा, कृष्णा अपराजिता, द्रोण या करवीर पुष्प देवी को दान करता है, वह कालिकापुर में गमन करता है ।।57।।

किञ्च पाद्यैः किञ्च वाद्यैर्नैवेद्यैः किञ्च पूजनैः ।
मधुदानैर्मधुपर्कैः कुम्भकैः किञ्च रेचकैः ।।58।।
पूरकैः किञ्च वा ध्यानैः प्राणायामैश्च किञ्च वा ।
किं जपैः किं तपोभिर्वा मत्स्यैर्मांसैश्च पञ्चमैः ।।59।।
किञ्च मन्त्रैः किञ्च तन्त्रैः किं यन्त्रैः किञ्च साधनैः ।
किं शवैः गमवैः किंवा श्मशानैर्मन्त्रसाधनैः ।।60।।
किमध्वरैर्मन्त्रपूतैर्मन्त्रार्थैर्मन्त्रजीवनैः ।
किं योनिमुद्रया किं वा तीर्थैः किं ब्रह्म-साधनैः ।।61।।
किं मातृकान्यासवर्गैः किं कटैः किं घटैः पटैः ।
किं काकचञ्चुभिः पोढ़ान्यासैः किं कर्मसाधनैः ।
येनार्चिता भगवती करवीरैर्जवादिभिः ।।62।।

जो करवीर एवं जवापुष्पादि के द्वारा भगवती की अर्चना करता है, उसके लिए पाद्य ही क्या है ? अर्घ्य ही क्या है ? नैवेद्य ही क्या है ? पूजा ही क्या है ? मधुदान ही क्या है ? मधुपर्क ही क्या है ? कुम्भक ही क्या है ? या रेचक से ही उसे क्या प्रयोजन है अर्थात् कोई प्रयोजन नहीं है ।।58।।

उस (साधक) के लिए पूरक ही क्या है ? ध्यान ही क्या है ? प्राणायाम ही क्या है ? जप ही क्या है ? मत्स्य ही क्या है ? मांस ही क्या है ? पञ्चमकार से उसे क्या प्रयोजन है ? अर्थात् कोई प्रयोजन नहीं है ।।59।।

उस (साधक) के लिए मन्त्र ही क्या है ? तन्त्र ही क्या है ? यन्त्र ही क्या है ? साधना ही क्या है ? शव ही क्या है ? आसव ही क्या है ? श्मशान ही क्या है ? या मन्त्र-साधना से ही उसे क्या प्रयोजन है ? अर्थात् कोई प्रयोजन नहीं है ।।60।।

उस (साधक) के लिए मन्त्रपूत यज्ञ से ही क्या है ? मन्त्रार्थ से ही क्या है ? मन्त्रजीवन से ही क्या है ? योनिमुद्रा से ही क्या है ? तीर्थ से ही क्या है ? अथवा ब्रह्मसाधन से ही उसे क्या प्रयोजन है अर्थात् कोई प्रयोजन नहीं है ।।61।।

उस (साधक) के लिए मातृकान्यास वर्ग से ही क्या है ? कट से ही क्या है ? घट से ही क्या है ? पट से ही क्या है ? काकचञ्चु से ही क्या है ? षोढ़ान्यास से ही क्या है ? अथवा उसे कर्मसाधना का ही क्या प्रयोजन है ? अर्थात् कोई प्रयोजन नहीं है ।।62।।

कृष्णापराजितापुष्पैः करवीरैर्मनोहरैः ।
द्रोणैस्तु केतकी पुष्पैर्जवा-मालूरपत्रकैः ।
पूजिता यैर्भगवती तेषां किं कर्म-साधनैः ॥63॥
इत्येवञ्च श्रुतं देवि ! रहस्यं परमं शिवम् ।
यं श्रुत्वा मोक्षमाप्नोति साधको नात्र संशयः ॥64॥
तन्त्रराजं महेशानि ! सारात् सारतरं प्रिये ! ।
श्रुत्वा ज्ञात्वा मोक्षमाशु लभते नात्र संशयः ॥65॥
महाभये बन्धने च विपत्तौ बहुसङ्कटे ।
पूजयित्वा जगद्धात्रीं मुच्यते भवबन्धनात् ॥66॥
श्रद्धयाऽश्रद्धया वापि यः कश्चित्तारिणीं यजेत् ।
स धन्यः स कविर्धीरः सर्वशास्त्रार्थकोविदः ॥67॥
स च मानी स च ज्ञानी पूजयेद यस्तु कालिकाम् ।
इत्येवञ्च श्रुतं देवि ! भूयः किं श्रोतुमिच्छसि ॥68॥

इति मुण्डमालातन्त्रे पार्वतीश्वर सम्वादे नवमः पटलः ॥9॥

कृष्णा अपराजिता पुष्प, मनोहर करवीर पुष्प, द्रोण पुष्प, केतकी पुष्प, जवापुष्प एवं बिल्वपत्र के द्वारा जिन्होंने भगवती की पूजा की है उनके लिए साधना का क्या प्रयोजन ? अर्थात् कोई प्रयोजन नहीं है ।।63।।

हे देवि ! साधक जिसका श्रवण करके मोक्ष लाभ कर लेता है, उस परम कल्याणकर रहस्य को इस प्रकार मैंने सुना है । इसमें कोई संशय नहीं है ।।64।।

हे प्रिये ! हे महेशानि ! सार से भी सारतर तन्त्रराज का श्रवण कर, जानकर (साधक) शीघ्र मोक्ष का लाभ कर लेता है । इसमें कोई संशय नहीं है ।।65।।

महाभय में, बन्धन में, विपद् में एवं अति संकट में जगद्धात्री की पूजा कर, (साधक) भवबन्धन से मुक्तिलाभ कर लेता है ।।66।।

जो कोई श्रद्धा से या अश्रद्धा से तारिणी की पूजा करता है, वह धन्य है, वह कवि है, वह धीर है, वह सर्वशास्त्रों में पण्डित है ।।67।।

जो कालिका की पूजा करता है, वह मानी है, वह ज्ञानी है । हे देवि ! इस प्रकार मैंने सुना है । आप पुनः क्या सुनने की इच्छा करती है ? ।।68।।

मुण्डमालातन्त्र में पार्वती एवं ईश्वर के संवाद में नवम पटल का अनुवाद समाप्त ॥9॥

दशमः पटलः

श्रीदेव्युवाच –

देवदेव ! महादेव ! नीलकण्ठ ! सदाशिव ! ।
नमस्ते परमेशान ! विश्वनाथ ! नमोऽस्तु ते ।।1।।

नमस्ते परमेशान ! सदाशिव ! महेश्वर ! ।
नमस्ते परमानन्द ! ज्ञानमोक्ष-प्रदायक ! ।।2।।

नमस्ते पार्वतीनाथ ! नमस्ते भक्त-वत्सल ! ।
प्रसीद मां जगद्बन्धो ! गोप्यं वद सदाशिव ! ।।3।।

श्रीशङ्कर उवाच –

शृणु देवि ! जगद्धात्रि ! सारात् सारतरं परम् ।
श्रुत्वा मोक्षमवाप्नोति साधकेन्द्रो महीतले ।।4।।

शृणुयाद् यो मुण्डमालातन्त्रं परमकारणम् ।
ज्ञानदं मोक्षदं भक्ति-भुक्ति-सौख्यप्रदं शिवे ! ।।5।।

श्री देवी ने कहा – हे देवदेव ! हे महादेव ! हे नीलकण्ठ ! हे सदाशिव ! आपको नमस्कार । हे परमेशान ! हे विश्वनाथ ! आपको नमस्कार ।।1।।

हे परमेशान ! हे सदाशिव ! हे महेश्वर ! आपको नमस्कार । हे परमानन्द ! हे ज्ञानमोक्ष-प्रदायक ! आपको नमस्कार ।।2।।

हे पार्वतीनाथ ! आपको नमस्कार । हे भक्त-वत्सल ! आपको नमस्कार । हे जगद्बन्धो ! मेरे पर प्रसन्न होवें । हे सदाशिव ! गोपनीय बातों को मुझे बतावें ।।3।।

श्री शङ्कर ने कहा – हे जगद्धात्रि ! हे देवि ! सार से भी सार, पर से भी पर, बातों का श्रवण करें । साधक श्रेष्ठ जिन (बातों) का श्रवण कर इस पृथिवी पर मोक्ष-लाभ कर लेता है ।।4।।

हे शिवे ! जो ज्ञानप्रद, मोक्षप्रद, भक्तिप्रद, भोगप्रद एवं सौख्यप्रद, परम कारण (स्वरूप) 'मुण्डमालातन्त्र' का श्रवण करता है, वह इन सभी का लाभ करता है ।।5।।

इत्येवं परमं देवि ! देवानामपि दुर्लभम् ।
यो वेद धरणीमध्ये स एव परमार्थवित् ।।6।।
शक्तिमार्ग विना जन्तोर्न भक्तिर्न च सद्गतिः ।
शक्तिमूलं जगत् सर्व शक्तिमूलं परं तपः ।।7।।
शक्तिमूलं परं कर्म जन्म कर्म महीतले ।
विना शक्ति-प्रसादेन न मुक्तिर्जायते प्रिये ! ।।8।।
श्रुतं देवि ! वरारोहे ! सर्व गोप्यं महीतले ।
अन्य-गोप्यं किं वदामि तत् सर्वं वद सुव्रते ! ।।9।।

श्री पार्वत्युवाच –

शृणु देव ! महादेव ! कथयस्व जगद्गुरो ! ।
कथमुत्पद्यते ज्ञानं तद् वदस्व कृपानिधे ! ।।10।।

श्री शिव उवाच –

अहोभाग्यमहोभाग्यमहो भाग्यं सुरेश्वरि ! ।
कृतार्थोऽहं कृतार्थेऽहं कृतकार्यो महेश्वरि ! ।।11।।

हे देवि ! जो व्यक्ति इस पृथिवी पर इस प्रकार जानता है कि यह तन्त्र श्रेष्ठ है, यह देवगणों के लिए भी दुर्लभ है, वही परमार्थवित् है ।।6।।

शक्तिमार्ग के बिना जीव की भक्ति नहीं है, सद्गति भी नहीं है। जो इस समस्त जगत् की मूलशक्ति है, वह परम तपस्या का मूल रूप शक्ति है ।।7।।

(जगत् की मूलशक्ति) श्रेष्ठ कर्मों की मूल शक्ति है। इस पृथ्वीतल पर (वही) जन्म एवं कर्म की भी मूलशक्ति है। हे प्रिये ! शक्ति के प्रसाद के बिना मुक्ति जन्म नहीं लेती ।।8।।

हे वरारोहे ! हे देवि ! इस पृथिवीतल पर समस्त गोपनीय (कथा) को आपने सुन लिया है। अन्य गोपनीय को क्या बतावें। हे सुव्रते ! इन सभी को आप बतावें ।।9।।

श्री पार्वती ने कहा – हे महादेव ! हे देव ! हे जगद्गुरो ! आप श्रवण करें। हे कृपानिधे ! किस प्रकार ज्ञान उत्पन्न होता है, उसे बतावें ।।10।।

श्री शिव ने कहा – हे सुरेश्वरि ! अहोभाग्य ! अहोभाग्य ! अहोभाग्य ! हे महेश्वरि ! मैं कृतार्थ हूँ, मैं कृतार्थ हूँ, मैं कृतार्थ हूँ ।।11।।

ज्ञानकाण्डं महेशानि ! सारात् सारतरं शिवम् ।
ज्ञानञ्च द्विविधं ज्ञेयं दुर्ज्ञेयं मनसा अपि ॥12॥
ज्ञानं परम-तत्त्वाख्यं ज्ञानं ज्ञेयार्थ-साधनम् ।
अन्यद् विभ्रान्ति-विषयं ज्ञानं साधारणं मतम् ॥13॥
एवञ्च त्रिविधं शेष मधमं तत्त्ववर्जितम् ।
तत्त्वज्ञानं वरारोहे ! योगीन्द्राणाञ्च दुर्लभम् ॥14॥
विना तत्त्वपरिज्ञानात् विफलं पूजनं जपः ।
सत्यं तत्त्वपरिज्ञानात् सफलं पूजनं तपः ॥15॥
एको देवश्च एकोऽहं आत्मा भिन्नः शरीरतः ।
घटात् पटान्महेशानि ! काल-चक्रान्महीरुहात् ।
एवं ज्ञानं तत्त्वमयं तदा मुक्तिऽचिरेण तु ॥16॥
नाना-कारणमेवास्य पूजनं ध्यानमेव च ।
सेवनं चैव तीर्थानां शरणं तारिणीपदे ॥17॥
स्मरणं मनुराजस्य भ्रमणं वै कुलाचलम् ।
सत्सङ्ग-सेवनं विष्णोः शङ्करस्यापि पूजनम् ।
कालिका-पादयुगलं भजनं ज्ञानकारणम् ॥18॥

हे महेशानि ! ज्ञानकाण्ड (वस्तुतः) सारात्सार एवं शिवप्रद है । ज्ञान दो प्रकार का है - ऐसा जानें । वह मन के लिए भी दुर्ज्ञेय है ॥12॥

परमतत्त्व का नाम है ज्ञान और ज्ञेय अर्थ का साधन भी है ज्ञान । अन्य साधारण ज्ञान को 'विभ्रम के विषय' रूप में कहा गया है ॥13॥

अवशिष्ट ज्ञान, जो तत्त्ववर्जित है, वह अधम है । इस प्रकार, ज्ञान त्रिविध है । हे वरारोहे ! तत्त्वज्ञान योगीन्द्रगणों के लिए भी दुर्लभ है ॥14॥

तत्त्व ज्ञान के बिना पूजा एवं जप विफल है । तत्त्वज्ञान रहने पर पूजा एवं तपस्या सफल होती है । यह सत्य है ॥15॥

देवता एक है, मैं एक हूँ, घट एवं पट से शरीर जिस प्रकार भिन्न है, उसी प्रकार यह आत्मा शरीर से भिन्न है । हे महेशानि ! एवंविध ज्ञान ही तत्त्वज्ञान है । जब एवंविध ज्ञान हो जाता है, तब कालचक्र-रूप वृक्ष से (साधक) शीघ्र ही मुक्तिलाभ कर लेता है ॥16॥

इस तत्त्वज्ञान के 'कारण' अनेक हैं - पूजा, ध्यान, तीर्थों की सेवा, तारिणीपद में शरण, मनुराज का स्मरण, कुलाचल में भ्रमण, सत्सङ्ग, विष्णु की सेवा, शङ्कर की पूजा, कालिका के पादयुगल की भजना - ये तत्त्वज्ञान (प्राप्ति) के 'कारण' हैं ॥17-18॥

यावन्नानात्वमेव स्यात् तावद् भिन्नं महीतले।
तावज्जातिश्च गोत्रञ्च तावन्नाम पृथग्विधम् ॥19॥
तावल्लिङ्गं पृथक् सर्वं वर्णानां पृथगेव हि।
तावन्मित्र-विपक्षौ च तावत् कलत्र-बान्धवौ ॥20॥
तावत् पृथग्विधा पूजा यन्त्रमन्त्रार्चनादिभिः।
तावत् पापं तावत् पुण्यं तावद् रागविवर्द्धनम् ॥21॥
तावत् त्वञ्चाप्यहमहमियञ्च जायते प्रिये!।
यावन्न जायते चण्डि! विद्याऽविद्याविरोधिनी ॥22॥
अविद्यानाशिनी विद्या विद्याऽविद्या-विमर्द्दिनी।
या तारिणी महाविद्या विद्याऽविद्या-विरूपिणी ॥23॥
अतएव वरारोहे! विद्यामुत्पाद्य भूतले।
निर्वाणमोक्षमाप्नोति सत्यं त्रिपुरसुन्दरि! ॥24॥
श्री दुर्गाचरणाम्भोजे भक्तिरव्यभिचारिणी।
तदैव जायते ब्रह्म-ज्ञानं ब्रह्मादि-दुर्लभम् ॥25॥

जब तक नानात्व रहता है, पृथिवी में तब तक ही (सब) परस्पर भिन्न हैं, तब तक ही जाति है, तब तक ही गोत्र है, तबतक ही पृथक्-पृथक् नाम हैं ।।19।।

तब तक ही समस्त लिङ्ग पृथक् पृथक् है, तब तक ही वर्णसमूह में समस्त (वर्ण) पृथक् पृथक् हैं, तब तक ही शत्रु मित्र हैं, तब तक ही कलत्र (स्त्री) एवं बान्धव हैं ।।20।।

तबतक ही यन्त्र एवं मन्त्रार्चनादि के द्वारा पूजा है, तब तक ही पाप है, तबतक ही पुण्य है, तबतक ही राग की विवृद्धि है ।।21।।

हे प्रिये! हे चण्डि! जब तक अविद्या-विरोधिनी विद्या उत्पन्न नहीं होती है, तबतक 'आप' एवं 'मैं', 'मैं', एवं 'ये' - इस प्रकार भेदज्ञान उत्पन्न होता है ।।22।।

अविद्यानाशिनी विद्या अविद्या को चूर्णविचूर्ण कर देती है। यह जो तारिणी महाविद्या है, वही 'विद्या' है, अविद्या के विपरीता है ।।23।।

अतः हे वरारोहे! हे त्रिपुरसुन्दरि! इस महीतल पर विद्या को उत्पन्न कर लेने पर ही निर्वाणमोक्ष का लाभ (साधक) कर लेता है। यह सत्य है ।।24।।

जब श्री दुर्गा के पादपद्म में अव्यभिचारी भक्ति उत्पन्न होती है, तभी ब्रह्मादि देवगणों के लिए भी दुर्लभ ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होता है ।।25।।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च वासवाद्या दिवौकसः।
भैरवाश्चैव गन्धर्वा विद्याभ्यास-समुत्सुकाः ॥26॥
ब्रह्मविद्या-समा विद्या ब्रह्मविद्या-समा क्रिया।
ब्रह्मविद्या-समं ज्ञानं नास्ति नास्ति कदाचन।
तत्त्वज्ञानं श्रुतं देवि ! किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥27॥

श्री पार्वत्युवाच —

नमस्तुभ्यं महादेव ! विश्वनाथ ! जगद्गुरो !।
श्रुतं ज्ञानं महादेव ! नानातन्त्रं तवाननात् ॥28॥
इदानीं चण्डिकायास्तु गुह्य-स्तोत्रं वद प्रभो !।
कवचं ब्रूहि मे नाथ ! मन्त्रचैतन्य-कारणम् ॥29॥
मन्त्रसिद्धिकारं गुह्याद् गुह्यं मोक्षविधायकम्।
श्रुत्वा मोक्षमवाप्नोति ज्ञात्वा विद्यां महेश्वर ! ॥30॥

श्री शिव उवाच —

दुर्लभं तारिणी-मार्गं दुर्लभं तारिणीपदम्।
मन्त्रार्थं मन्त्रचैतन्यं दुर्लभं शवसाधनम् ॥31॥

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्रादि देववृन्द, भैरवगण एवं गन्धर्वगण विद्या के अभ्यास के लिए समुत्सुक हैं ॥26॥

ब्रह्मविद्या के तुल्य विद्या, ब्रह्मविद्या के तुल्य क्रिया, ब्रह्मविद्या के तुल्य ज्ञान कदापि नही होता है, नही होता है। हे देवि ! आपने तत्त्वज्ञान का श्रवण किया है। पुनः आप क्या सुनने की इच्छा करती है ? ॥27॥

श्री पार्वती ने कहा — हे महादेव ! हे विश्वनाथ ! हे जगद्गुरो ! आपको नमस्कार। हे महादेव ! आपके मुख से ब्रह्मज्ञान एवं नाना तन्त्रों को मैंने सुना है ॥28॥

हे प्रभो ! सम्प्रति चण्डिका के गोपनीय स्तोत्र को बतावे। हे नाथ ! मन्त्र-चैतन्य के कारण-स्वरूप कवच को भी बतावे ॥29॥

हे महेश्वर ! गुह्य से गुह्य, मन्त्र-सिद्धिकर, मोक्षजनक स्तोत्र एवं कवच को सुनकर एवं विद्या को जानकर (साधक) मोक्षलाभ करता है ॥30॥

श्री शिव ने कहा — तारिणी का मार्ग दुर्लभ है। तारिणी का पद-युगल दुर्लभ है। मन्त्रार्थ, मन्त्र चैतन्य एवं शव-साधन दुर्लभ है ॥31॥

श्मशान-साधनं योनि-साधनं ब्रह्म-साधनम् ।
क्रिया-साधनकं भक्ति-साधनं मुक्ति-साधनम् ।
तव प्रसादाद् देवेशि ! सर्वाः सिद्ध्यन्ति सिद्धयः ॥32॥

नमस्ते चण्डिके ! चण्डि ! चण्ड-मुण्ड-विनाशिनि ।
नमस्ते कालिके ! कालि ! महाभय-विनाशिनि ॥33॥

शिवे ! रक्ष जगद्धात्रि ! प्रसीद हरवल्लभे ! ।
प्रणमामि जगद्धात्री जगत्-पालन कारिणीम् ॥34॥

जगत्-क्षोभकरीं विद्यां जगत्-सृष्टि विधायिनीम् ।
करालां विकटां घोरां मुण्डमाला-विभूषिताम् ॥35॥

हरार्चितां हराराध्यां नमामि हरवल्लभाम् ।
गौरीं गुरुप्रियां गौरवर्णालङ्कार भूषिताम् ॥36॥

हरिप्रियां महामायां नमामि ब्रह्म-पूजिताम् ।
सिद्धां सिद्धेश्वरीं सिद्धविद्याधरगणैर्युताम् ॥37॥

श्मशानसिद्धि, योनिसिद्धि, ब्रह्मसिद्धि, क्रियासिद्धि, भक्तिसिद्धि, मुक्तिसिद्धि हे देवेशि ! आपके अनुग्रह से समस्त सिद्धियाँ सिद्ध होती है ॥32॥

हे चण्डि ! हे चण्डिके ! हे चण्ड-मुण्ड-विनाशिनि ! आपको नमस्कार । हे कालि ! हे कालिके ! हे महाभय विनाशिनि ! आपको नमस्कार ॥33॥

हे शिवे ! हे जगद्धात्रि ! मेरी रक्षा करें । हे हरवल्लभे ! प्रसन्न होवें । मैं जगत्-पालन कारिणी जगद्धात्री को प्रणाम करता हूँ ॥34॥

मैं जगत्-मोक्षकरी, जगत् सृष्टि कारिणी, कराला, विकटा, घोरा एवं मुण्डमाला-विभूषिता विद्या को प्रणाम करता हूँ ॥35॥

मैं हरार्चिता, हराराध्या, हरवल्लभा को प्रणाम करता हूँ । मैं गुरुप्रिया, गौरवर्णा एवं अलङ्कारभूषिता गौरी को प्रणाम करता हूँ ॥36॥

मैं ब्रह्म पूजिता हरिप्रिया महामाया को प्रणाम करता हूँ । सिद्ध एवं विद्याधरगणों से परिवृता सिद्धा सिद्धेश्वरी को प्रणाम करता हूँ ॥37॥

मन्त्रसिद्धिप्रदां योनि-सिद्धिदां सिद्ध-शोभिताम् ।
प्रणमामि महामायां दुर्गां दुर्गति-नाशिनीम् ॥38॥
उग्रामुग्रमयीमुग्र तारामुग्रगणैर्युताम् ।
नीलां नीलघनश्यामां नमामि नीलसुन्दरीम् ॥39॥
श्यामाङ्गीं श्यामघटिनां श्यामवर्ण-विभूषिताम् ।
प्रणमामि जगद्धात्रीं गौरीं सर्वार्थसाधिनीम् ॥40॥
विश्वेश्वरीं महाघोरां विकटां घोरनादिनीम् ।
आद्यामाद्यगुरोराद्यामाद्यनाथ - प्रपूजिताम् ॥41॥
श्रीदुर्गां धनदामन्नपूर्णां पद्मां सुरेश्वरीम् ।
प्रणमामि जगद्धात्रीं चन्द्रशेखर-वल्लभाम् ॥42॥
त्रिपुरां सुन्दरीं बालामबलागण-भूषिताम् ।
शिवदूतीं शिवाराध्यां शिवध्येयां सनातनीम् ॥43॥
सुन्दरीं तारिणीं सर्व-शिवागण-विभूषिताम् ।
नारायणीं विष्णुपूज्यां ब्रह्मविष्णु-हर प्रियाम् ॥44॥

मैं मन्त्र-सिद्धि प्रदायिनी, योनि-सिद्धिप्रदा, सिद्ध-शोभिता, दुर्गतिनाशिनी महामाया दुर्गा को प्रणाम करता हूँ ॥38॥

मैं उग्रा, उग्रमयी, उग्रगणों से परिवृता, नीला, नीलघन (कृष्णमेघ) श्यामा, नील सुन्दरी उग्रतारा को प्रणाम करता हूँ ॥39॥

मैं श्यामाङ्गी, श्यामघटिता, श्यामवर्ण-विभूषिता, सर्वार्थ-साधिनी, जगद्धात्री गौरी को प्रणाम करता हूँ ॥40॥

मैं आद्यगुरु के आद्या, आद्यनाथ के द्वारा 'प्रपूजिता', महाघोरा, घोरनादिनी, विकटा, विश्वेश्वरी को प्रणाम करता हूँ ॥41॥

मैं श्री दुर्गा, धनदा, अन्नपूर्णा पद्मा एवं सुरेश्वरी को तथा चन्द्रशेखर-वल्लभा जगद्धात्री को प्रणाम करता हूँ ॥42॥

मैं शिवदूती, शिवाराध्या, शिवध्येया, सनातनी, त्रिपुरासुन्दरी को एवं अबलागणों से परिवृता बाला को प्रणाम करता हूँ ॥43॥

मैं विष्णुपूज्या ब्रह्मा, विष्णु एवं हर की प्रिया, समस्त शिवागणों से विभूषित, सुन्दरी, नारायणी, तारिणी को प्रणाम करता हूँ ॥44॥

सर्वसिद्धि-प्रदां नित्यामनित्य-गुणवर्जिताम् ।
सगुणां निर्गुणां ध्येयामर्चितां सर्वसिद्धिदाम् ॥45॥

विद्यासिद्धिप्रदां विद्यां महाविद्यां महेश्वरीम् ।
महेशभक्तां माहेशीं महाकाल-प्रपूजिताम् ॥46॥

प्रणमामि जगद्धात्रीं शुम्भासुर-विमर्दिनीम् ।
रक्तप्रियां रक्तवर्णां रक्तबीज-विमर्दिनीम् ॥47॥

भैरवीं भुवनां देवीं लोलजिह्वां सुरेश्वरीम् ।
चतुर्भुजां दशभुजामष्टादशभुजां शुभाम् ॥48॥

त्रिपुरेशीं विश्वनाथ-प्रियां विश्वेश्वरीं शिवाम् ।
अट्टहासामट्टहास-प्रियां धूम्र-विनाशिनीम् ॥49॥

कमलां छिन्नभालाञ्च मातङ्गीं सुरसुन्दरीम् ।
षोडशीं त्रिपुरां भीमां धूमाञ्च बगलामुखीम् ॥50॥

सर्वसिद्धिप्रदां सर्व-विद्यामन्त्र-विशोधिनीम् ।
प्रणमामि जगत्तारां साराञ्च मन्त्रसिद्धये ॥51॥

मैं सर्वसिद्धिप्रदा, अनित्यगुणवर्जिता, सगुणा एवं निर्गुणा, ध्येया एवं अर्चिता, सर्वसिद्धिदा, नित्या को प्रणाम करता हूँ ॥45॥

मैं विद्यासिद्धिप्रदा, महाकाल प्रपूजिता, महेशभक्ता, माहेशी विद्या एवं महाविद्या महेश्वरी को प्रणाम करता हूँ ॥46॥

मैं रक्तप्रिया, रक्तवर्णा, रक्तबीज-विमर्दिनी, शुम्भासुर विनाशिनी, जगद्धात्री को प्रणाम करता हूँ ॥47॥

मैं चतुर्भुजा, अष्टादशभुजा, शुभा, लोलजिह्वा, भैरवी, सुरेश्वरी, भुवना, भुवनेश्वरी देवी को प्रणाम करता हूँ ॥48॥

मैं अट्टहासा, अट्टहासप्रिया, धूम्रलोचन-विनाशिनी, विश्वनाथप्रिया, शिवा, विश्वेश्वरी, त्रिपुरेश्वरी को प्रणाम करता हूँ ॥49॥

मैं कमला, छिन्नमस्ता, मातङ्गी, सुरसुन्दरी, षोडशी, त्रिपुरा, भीमा धूमावती एवं बगलामुखी को मन्त्रसिद्धि के लिए प्रणाम करता हूँ ॥50॥

मैं समस्त विद्या एवं मन्त्रो के लिए शुद्धि-कारिणी, सभी के सारभूता, सर्वसिद्धिप्रदा, जगत् तारा को मन्त्रसिद्धि के लिए प्रणाम करता हूँ ॥51॥

इत्येवञ्च वरारोहे! स्तोत्रं सिद्धिकरं परम्।
पठित्वा मोक्षमाप्नोति सत्यं वै गिरिनन्दिनि! ॥52॥

कुजन्वारे चतुर्दश्याममायां जीव-वासरे।
शुक्रे निशागते स्तोत्रं पठित्वा मोक्षमाप्नुयात् ॥53॥

त्रिपक्षे मन्त्रसिद्धिः स्यात् स्तोत्रपाठाद्धि शङ्करि!।
चतुर्दश्यां निशाभागे शनि-भौमदिनेऽथवा ॥54॥

निशामुखे पठेत् स्तोत्रं मन्त्रसिद्धिमवाप्नुयात्।
केवलं स्तोत्र-पाठाद्धि मन्त्र-सिद्धिरनुत्तमा ॥55॥

जागर्त्ति सततं चण्डि! स्तव-पाठाद् भुजङ्गिनी।
इत्येवञ्च श्रुतं स्तोत्रं कवचं शृण शङ्करि! ॥56॥

सदाशिव ऋषिर्देवि! उष्णिक् छन्द उदीरितम्।
विनियोगश्च देवेशि! ततश्च मन्त्र-सिद्धये ॥57॥

हे वरारोहे! हे गिरिनन्दिनि! सिद्धिकर श्रेष्ठ एवं विध स्तोत्र को पढ़कर (साधक) मोक्षलाभ करता है। यह सत्य है ॥52॥

मंगलवार, बृहस्पतिवार या शुक्रवार को, निशा के आगत होने पर, चतुर्दशी या अमावस्या तिथि में, इस स्तोत्र का पाठ कर (साधक) मोक्षलाभ करता है ॥53॥

हे शङ्करि! तीन पक्ष पर्यन्त स्तोत्र का पाठ करने पर निश्चय ही मन्त्रसिद्धि होती है। शनिवार या मंगलवार को, चतुर्दशी की रात्रि में या निशा-मुख में स्तोत्र का पाठ करें। वैसा करने पर, मन्त्रसिद्धि का लाभ करते हैं। केवल स्तोत्र-पाठ से अति उत्तम मन्त्रसिद्धि हो सकती है ॥54-55॥

हे चण्डि! स्तव-पाठ के द्वारा सर्वदा भुजङ्गिनी (कुलकुण्डलिनी) जागरिता हो जाती हैं। हे शङ्करि! एवंविध स्तोत्र का श्रवण आपने कर ली है। सम्प्रति कवच का श्रवण करें ॥56॥

हे देवि! इस कवच के ऋषि (द्रष्टा) हैं सदाशिव एवं छन्द है उष्णिक् – ऐसा कहा गया है। हे देवेशि! मन्त्रसिद्धि में उसका विनियोग (प्रयोग) किया जाता है ॥57॥

मस्तकं पार्वती पातु पातु पञ्चानन-प्रिया ।
केशं मुखं पातु चण्डी भारती रुधिरप्रिया ॥58॥

कण्ठं पातु स्तनं पातु कपालं गण्डमेव हि ।
काली कराल-वदना विचित्र-चित्र-घण्टिनी ॥59॥

वक्षःस्थलं नाभिमूलं दुर्गा त्रिपुरसुन्दरी ।
दक्ष-हस्तं पातु तारा सर्वाणी सव्यमेव च ॥60॥

विश्वेश्वरी पृष्ठदेशं नेत्रं पातु महेश्वरी ।
हृदपद्मं कालिका पातु उग्रतारा नभोगतम् ॥61॥

नारायणी गुह्यदेशं मेढ्रं मेढ्रेश्वरी तथा ।
पादयुग्मं जया पातु सुन्दरी चाङ्गुलीषु च ॥62॥

षट्पद्म-वासिनी पातु सर्वपद्मं निरन्तरम् ।
इड़ा च पिङ्गला पातु सुषुम्ना पातु सर्वदा ॥63॥

धनं धनेश्वरी पातु अन्नपूर्णा सदावतु ।
राज्यं राज्येश्वरी पातु नित्यं मा चण्डिकावतु ॥64॥

पार्वती मस्तक की रक्षा करें । पञ्चानन प्रिया केशों की रक्षा करें । चण्डी मुख की रक्षा करें । रुधिर-प्रिया भारती कण्ठ की रक्षा करें । करालवदना विचित्र घण्टाधारिणी काली स्तन, कपाल एवं गण्ड की रक्षा करें ।।58-59।।

दुर्गा वक्षःस्थल की रक्षा करें । त्रिपुरसुन्दरी दुर्गा नाभिमूल की रक्षा करें । तारा दक्षिण हस्त की रक्षा करें । सर्वाणी वामहस्त की रक्षा करें ।।60।।

विश्वेश्वरी पृष्ठदेश की रक्षा करें । महेश्वरी नेत्र की रक्षा करें । कालिका हृत्पद्म की रक्षा करें । त्रिपुरेशी नभोदेश की रक्षा करें ।।61।।

नारायणी गुह्यदेश की रक्षा करें । मेढ्रेश्वरी मेढ्रदेश की रक्षा करें । जया पादयुगल की रक्षा करें । सुन्दरी अङ्गुलियों की रक्षा करें ।।62।।

षट्पद्म-वासिनी समस्त पद्म एवं देहमध्यस्थ इड़ा, पिङ्गला एवं सुषुम्ना नाड़ी की सर्वदा रक्षा करें ।।63।।

धनेश्वरी अन्नपूर्णा सर्वदा धन की रक्षा करें । राज्येश्वरी राज्य की रक्षा करें । चण्डिका मेरी नित्य रक्षा करें ।।64।।

जीवं मां पार्वती पातु मातङ्गी पातु सर्वदा।
छिन्ना धूमा च भीमा च भये पातु जले वने ॥65॥
कौमारी चैव बाराही नारसिंही यशो मम।
पातु नित्यं भद्रकाली श्मशानालय-वासिनी ॥66॥
उदरे सर्वदा पातु सर्वाणी सर्वमङ्गला।
जगन्माता जयं पातु नित्यं कैलास-वासिनी ॥67॥
शिवप्रिया सुतं पातु सुतां पर्वत-नन्दिनी।
त्रैलोक्यं पातु बगला भुवनं भुवनेश्वरी ॥68॥
सर्वाङ्गं पातु विजया पातु नित्यञ्च पार्वती।
चामुण्डा पातु मे रोम-कूपं सर्वार्थसाधिनी ॥69॥
ब्रह्माण्डं मे महाविद्या पातु नित्यं मनोहरा।
लिङ्गं लिङ्गेश्वरी पातु महापीठं महेश्वरी ॥70॥
सदाशिव-प्रिया पातु नित्यं पातु सुरेश्वरी।
गौरी मे सन्धिदेशञ्च पातु वै त्रिपुरेश्वरी ॥71॥

पार्वती जीव की रक्षा करे। मातङ्गी सर्वदा मेरी रक्षा करे। छिन्नमस्ता एवं भीमा धूमावती जल मे, वन मे एवं भय होने पर रक्षा करे ।।65।।

कौमारी, बाराही, एवं नारसिंही मेरे यशः की रक्षा करें। श्मशान-गृह-वासिनी भ्रदकाली सर्वदा मेरी रक्षा करें ।।66।।

सर्वमङ्गला सर्वाणी सर्वदा उदर की रक्षा करें। कैलास-वासिनी जगन्माता सर्वदा जय की रक्षा करें ।।67।।

शिवप्रिया पुत्र की रक्षा करे। पर्वतनन्दिनी पुत्री की रक्षा करें। बगलामुखी त्रैलोक्य की रक्षा करें। भुवनेश्वरी भुवन की रक्षा करे ।।68।।

विजया सर्वाङ्ग की रक्षा करें। पार्वती नित्य रक्षा करें। सर्वार्थसाधिनी चामुण्डा मेरे रोमकूपों की रक्षा करें ।।69।।

मनोहरा महाविद्या मेरे ब्रह्माण्ड की नित्य रक्षा करें। सिद्धेश्वरी लिङ्ग की रक्षा करें। महेश्वरी महापीठ की रक्षा करें ।।70।।

सदाशिवप्रिया सर्वदा मेरी रक्षा करें। सुरेश्वरी सर्वदा रक्षा करें। गौरी एवं त्रिपुरेश्वरी मेरे सन्धिदेश की रक्षा करें ।।71।।

सुरेश्वरी सदा पातु श्मशाने च शवेऽवतु ।
कुम्भके रेचके चैव पूरके काममन्दिरे ॥72॥

कामाख्या कामनिलयं पातु दुर्गा सुरेश्वरी ।
डाकिनी काकिनी पातु नित्यं च शाकिनी तथा ॥73॥

हाकिनी लाकिनी पातु राकिनी पातु सर्वदा ।
ज्वालामुखी सदा पातु मुखमध्ये शिवाऽवतु ॥74॥

तारिणी विभवे पातु भवानी च भवेऽवतु ।
त्रैलोक्य-मोहिनी पातु सर्वाङ्गं विजयाऽवतु ॥75॥

राजकुले महाद्यूते संग्रामे शत्रु-सङ्कटे ।
प्रचण्डा साधकं माञ्च पातु भैरव-मोहिनी ॥76॥

श्रीराजमोहिनी पातु राजद्वारे विपत्तिषु ।
सम्प्रत्-प्रदा भैरवी च पातु बाला बलं मम ॥77॥

नित्यं मा शुम्भुवनिता पातु मां त्रिपुरान्तका ।
इत्येवं कथितं देवि ! रहस्यं सर्वकालिकम् ॥78॥

सुरेश्वरी सर्वदा रक्षा करें । श्मशान में शव की रक्षा करें । कुम्भक, रेचक, पूरक में एवं काम-मन्दिर में रक्षा करें ॥72॥

सुरेश्वरी दुर्गा कामाख्या कामगृह की रक्षा करें । डाकिनी, काकिनी एवं शाकिनी सर्वदा रक्षा करें ॥73॥

हाकिनी, लाकिनी एवं राकिनी सर्वदा रक्षा करें । ज्वालामुखी सर्वदा रक्षा करें । शिवा मुख के मध्य में रक्षा करें ॥74॥

तारिणी विभव में रक्षा करें । भवानी भव में (संसार में) रक्षा करें । त्रैलोक्य-मोहिनी रक्षा करें । विजया सर्वाङ्ग की रक्षा करें ॥75॥

भैरवमोहिनी प्रचण्डा राजकुल में, महाद्यूत में, संग्राम में, शत्रुसंकट में मुझ साधक की रक्षा करें ॥76॥

श्रीराजमोहिनी राजद्वार में, विपत्-समूह में रक्षा करें । सम्प्रत्-प्रदा भैरवी बाला मेरे बल की रक्षा करें ॥77॥

शम्भुवनिता मेरी नित्य रक्षा करें । त्रिपुरहन्त्री मेरी रक्षा करें । हे देवि ! सर्वकाल में पाठयोग्य रहस्य को इस प्रकार कहा गया ॥78॥

भक्तिदं मुक्तिदं सौख्यं सर्वसम्पत्-प्रदायकम् ।
यः पठेत् प्रातरुत्थाय साधकेन्द्रो भवेद्भुवि ॥79॥
कुजवारे चतुर्द्दश्याममायां मन्द-वासरे ।
यः पठेत् मानवो भक्त्या स याति शिव मन्दिरम् ॥80॥
गुरौ गुरुं समभ्यर्च्य यः पठेत् साधकोत्तमः ।
स याति भवनं देव्याः सत्यं सत्यं न संशयः ॥81॥
एवं यदि वगरोहे पठेद् भक्ति-परायणः ।
मन्त्र सिद्धिर्भवेत् तस्य चाचिरान्नात्र संशयः ॥82॥
सत्यं लक्ष-पुरश्चर्या-फलं प्राप्य शिवां यजेत् ।
राजमार्गं शिवमार्गं प्राप्य जीवः शिवो भवेत् ॥83॥
पठित्वा कवचं स्तोत्रं मुक्तिमाप्नोति निश्चितम् ।
पठित्वा कवचं स्तोत्रं दशविद्यां यजेद् यदि ।
विद्यासिद्धिर्मन्त्रसिद्धिर्भवत्येव न संशयः ॥84॥

जो साधक प्रातःकाल उठकर, भक्ति, मुक्ति, सुखकर, एवं सर्व सम्पत् प्रदायक इस कवच का पाठ करता है, वह इस पृथिवी पर साधकेन्द्र बन जाता है ॥79॥

मंगल एवं शनिवार को, चतुर्दशी एवं अमावस्या तिथि मे जो मानव भक्ति के साथ इसका पाठ करता है, वह शिवमन्दिर में गमन करता है ॥80॥

जो साधकोत्तम, गुरुवार को गुरु की सम्यक् प्रकार से अर्चना करके इसका पाठ करता है, वह देवी के भवन में सत्य, सत्य गमन करता है। इसमें कोई संशय नहीं है ॥81॥

हे वरारोहे ! भक्तिपरायण होकर साधक यदि इस प्रकार पाठ करता है, शीघ्र ही उसे मन्त्रसिद्धि प्राप्त होती है। इसमें संशय नहीं है ॥82॥

लक्ष पुरश्चरणों का फल प्राप्त करके भी शिवा की पूजा करे। राजमार्ग शिवमार्ग का लाभ करने पर ही जीव शिव बन जाता है ॥83॥

स्तोत्र एवं कवच का पाठ कर (साधक) निश्चय ही मुक्ति लाभ करता है। स्तोत्र एवं कवच का पाठ कर यदि (साधक) दशविद्या की पूजा करता है, तब उन्हें विद्यासिद्धि एवं मन्त्रसिद्धि अवश्य होती है। इसमे कोई संशय नहीं है ॥84॥

तदैव ताम्बूलैः सिद्धिर्जायते नात्र संशयः ।
शवसिद्धिश्चितासिद्धिर्दुर्लभा धरणीतले ॥85॥
अयत्नसुभगासिद्धिस्ताम्बूलान्नात्र संशयः ।
निशामुखे निशायाञ्च महाकाले निशान्तके ।
पठेद्भक्त्या महेशानि ! गाणपत्यं लभेत सः ॥86॥

इति मुण्डमालातन्त्रे पार्वतीश्वर-सम्वादे
मन्त्रसिद्धिस्तोत्रं कवचं नाम दशमः पटलः ॥10॥

तभी ताम्बूल के द्वारा भी सिद्धि होती है । इसमें सन्देह नहीं है । धरणीतल में शवसिद्धि एवं चितासिद्धि दुर्लभ है ।।85।।

ताम्बूल से, बिना यत्न से ही (अनायास ही) सुभगासिद्धि प्राप्त होती है । इसमें सन्देह नहीं है । हे महेशानि ! निशामुख में, निशा में, श्रेष्ठकाल में, निशा के अन्त में, जो भक्ति के साथ स्तव कवच का पाठ करता है, वह (साधक) गाणपत्य का लाभ करता है ।।86।।

मुण्डमालातन्त्र में पार्वती एवं ईश्वर के संवाद में, 'मन्त्रसिद्धि-स्तोत्र-कवच' नामक दशम पटल का अनुवाद समाप्त ॥10॥

एकादशः पटलः

श्रीशिव उवाच —

श्रुतं वै कवचं स्तोत्रं श्रुतं तन्त्रं मनोहरम् ।
किं वक्ष्यामि महेशानि ! वद शीघ्रं शिवप्रिये ! ॥1॥

श्री पार्वत्युवाच —

प्राणनाथ ! दयासिन्धो ! तव वक्त्रात् श्रुतं मया ।
नानातन्त्रं श्रुतं नाथ ! विज्ञानं ज्ञानमेव च ॥2॥
कुलार्णवं कुलाचारं कुलोड्डीशं कुलाख्यकम् ।
विधानमकुलीनानां कुलीनानां श्रुतं प्रभो ! ॥3॥
डामरं यामलं काली-तन्त्रं काली-विलासकम् ।
श्रीकाली कल्पलतिका श्रुता परम-सादरात् ॥4॥
भैरवं समयातन्त्रं निर्वाणं मोहनं भयम् ।
लिङ्गर्चनं लिङ्गमालातन्त्रं नाना-प्रभेदकम् ॥5॥
ऊर्ध्वाम्नायं तोड़लञ्च योगिनी-हृदयात्मकम् ।
एवं नानाविधं तन्त्रं श्रुतं श्रीमुख-पङ्कजात् ॥6॥

श्री शिव ने कहा — आपने स्तोत्र एवं कवच का श्रवण किया है, मनोहर तन्त्र का भी श्रवण किया है । हे शिवप्रिये ! हे महेशानि ! सम्प्रति मैं क्या बताऊँ, शीघ्र बतावें ।।1।।

श्री पार्वती ने कहा — हे प्राणनाथ ! हे दयासिन्धो ! हे नाथ ! आपके श्रीमुख से मैंने नाना तन्त्र, ज्ञान एवं विज्ञान का श्रवण किया है ।।2।।

हे प्रभो ! कुलार्णव, कुलाचार, कुलोड्डीश, कुलतन्त्र, कुलीन एवं अकुलीन के विधान को मैंने आप ही के श्रीमुख से सुना है ।।3।।

डामर, यामल, कालीतन्त्र, कालीविलास, श्रीकाली-कल्पलतिका का परम आदर के साथ मैंने श्रवण किया है ।।4।।

भैरवतन्त्र, समयातन्त्र, निर्वाणतन्त्र, मोहनतन्त्र, लिङ्गार्चनतन्त्र, नाना भेदभिन्न लिङ्गमालातन्त्र का मैंने श्रवण किया है ।।5।।

ऊर्ध्वाम्नायतन्त्र, तोड़लतन्त्र, योगिनीहृदय, इसी प्रकार नाना तन्त्रों को आपके श्रीमुख-पङ्कज से मैंने सुना है ।।6।।

(संस्कृत कॉलेज कलकत्ता के ग्रन्थागार में उपलब्ध एक पाण्डुलिपि में दशम पटल पर्यन्त एवं अन्य एक पाण्डुलिपि में प्रथम पटल से पञ्चदश पटल पर्यन्त उपलब्ध होता है। उसी पाण्डुलिपि के एकादश पटल से पञ्चदश पटल पर्यन्त अंश को यहाँ पर मुद्रित किया जा रहा है। सप्तम पटल में जितने श्लोक हैं, द्वितीय पाण्डुलिपि के एकादश पटल में वे समस्त श्लोक हैं। परन्तु बीच-बीच में, नाना स्थानों में, कुछ-कुछ श्लोक एवं अर्द्धश्लोक नही हैं। अनेक स्थलों पर, पाठभेद के अतिरिक्त कुछ नवीन तथ्य नहीं है। इन समस्त श्लोकों का अनुवाद पहले ही दे दिया गया है। इसलिए यहाँ पर, उनका अनुवाद नही दिया जा रहा है।

एकादशः पटलः

श्रीदेव्युवाच —

कथ्यतां मे दयासिन्धो! जगदीश! जगद्गुरो!।
जगत्-कर्त्ता जगत्पाता जगद्धर्त्ता त्वमेव हि ॥1॥
त्रिषु लोकेषु विश्वेश! त्वत्तो भिन्नः कदाचन।
नास्ति कर्त्ता महादेव! किमेतत् कथयामि ते ॥2॥
न गोलोके न कैलासे न ब्रह्म-मन्दिरे प्रभो!।
न वैकुण्ठे न वा सौरे .... न शचीपुरे ॥3॥
न तु कर्त्ता च पाता च हर्त्ता च त्रिपुरेश्वर!।
पृच्छामि परमं तत्त्वं योगिनी-योगसाधनम् ॥4॥
योगिनी हृदयाम्भोजे योगिनां हृदये तथा।

श्रीशिव उवाच —

ध्येयं गोप्यञ्च देवेशि! ब्रह्मेति यं विदुः शिवे! ॥5॥
परं ब्रह्म परं धाम सच्चिदानन्दमव्ययम्।
नारीणां हृदयाम्भोजं न च वेद कथञ्चन ॥6॥

श्रीपार्वत्युवाच —

सत्यञ्च कथितं नाथ! सत्यमेव वदाम्यहम्।
अबलानाञ्च हृदयमन्तःसारञ्च कथ्यताम् ॥7॥

पुरुषानेव जानन्ति स्वभावात् न व्यतिक्रमम् ।
देवदेव ! महादेव ! संसारार्णवतारक ! ॥8॥
जानामि हृदयं पुंसां काठिन्यं लोलमानसम् ।
अतएव महादेव ! शीघ्रं वद सदाशिव ! ॥9॥
केन रूपेण सा दुर्गा सुप्रसन्ना महीतले ।
स्तवेन कवचेनापि ज्ञानेन वरवर्णिनि ! ॥10॥
सङ्केतं गुह्य-सङ्केतं जीवसङ्केतकं तथा ।
दिव्यानां चैव वीराणां पशूनां वरवर्णिनि ! ॥11॥
भाव-सङ्केतकं देवि ! ब्रह्मसङ्केतकं तथा ।
समयाचार-सङ्केतं वीर-साधनमुत्तमम् ॥12॥
श्मशानसाधनं भद्रे ! शवसाधनमेव हि ।
एवं नानाविधानञ्च मयोक्तं यामले प्रिये ! ॥13॥
तदा सिद्धिमावाप्नोति यस्तन्त्रे खलु कोविदः ।
कथितं डामरे नाथ शक्ति-यामलके प्रिये ! ॥14॥
नानातन्त्रे महेशानि ! कथितं वरवर्णिनि ! ।
दुर्गासेवनमात्रेण विधिवाक्यानुसारतः ॥15॥
मुक्तिं याति नरः सत्यं शब्दतत्त्वं मनोहरम् ।
विना तत्त्वपरिज्ञानं न सुखं न परां गतिम् ॥16॥
लभते मानवः सत्यं देवेशि ! जगदम्बिके ! ।
काली करालवदना मुण्डमाला-विभूषिता ।
कामाख्या कामिनी काम्या करालास्या दिगम्बरा ॥17॥
अट्टहासा घोरनादा मेघश्यामा भयानका ।
सर्व वीज-स्वरूपा सा महावीज-स्वरूपिणी ॥18॥
सार्द्धपञ्चाक्षरी विद्या वशिष्ठादि-प्रपूजिता ।
सिद्धेन्द्रैश्चापि योगीन्द्रैर्मुनीन्द्रैरपि सेविता ॥19॥
देवेन्द्रैश्चापि वीरेन्द्रैः साधकेन्द्रैः प्रपूजिता ।
एवम्भूता महामाया सर्वतत्त्व-विभाविनी ॥20॥

मङ्केतं कालिकायाश्च विद्यायाश्चान्तिं शृणु ।
इदानीञ्चापि संक्षेपाद् वदिष्यामि वरानने ! ॥21॥
पद्मा त्रिशक्तिः कुलदा वाणी पूर्णा महेश्वरी ।
दुर्गा भगवती देवी भुवना या प्रतिष्ठिता ॥22॥
एका देवी जगद्धात्री नाना-रूप-विधारिणी ।
यो भजेत् साधकेन्द्रश्च सर्वज्ञादि प्रपूजिताम् ॥23॥
महामायां जगद्धर्त्रीं सर्वालङ्कार-भूषिताम् ।
वाणी माया पूनर्वाणी महामन्त्र-स्वरूपिणी ॥24॥
ततश्च केवला माया साधकैरपि सेविता ।
पशोर्दीक्षा ब्रह्मविद्या यमभीतिविमर्द्दिनी ।
सर्वसम्पत्प्रदा मुक्ति-दायिनी मुक्ति-वल्लभा ॥25॥
महायोगमयी विद्या सर्वज्ञानमयी ततः ।
पूजिता साधकैः सर्वैः सर्वालङ्कारभूषिता ॥26॥
एवं ते कथिता देवि ! देवदेवैः प्रपूजिता ।
भुवनेशी महाविद्या देवानामपि दुर्लभा ॥27॥
यदि भाग्यवशादेव चतुर्थी लभते नरः ।
चतुर्वर्गमयो भूत्वा परं ब्रह्माधिगच्छति ॥28॥

श्रीदेव्युवाच —

दीनबन्धो ! दयासिन्धो ! प्रभो ! शङ्कर ! भो हर ! ।
श्रोतुमिच्छामि देवेश ! ज्ञानदः शङ्करो यतः ॥29॥
देवदेव ! महादेव ! नमस्तुभ्यं सदाशिव ! ।
नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं महेश्वर ! ॥30॥
विश्वेश्वर ! जगद्बन्धो ! नीलकण्ठ ! नमोऽस्तु ते ।
ज्ञानेश ! ज्ञानदानन्द-दायक ! ज्ञानवर्द्धक ! ॥31॥
ज्ञानाधीश ! ज्ञानपते ! नमः कोचवधूपते ! ।
नमस्ते परमानन्द ! नमस्ते भक्तवत्सल ! ॥32॥

नमस्ते पार्वतीनाथ ! गङ्गाधर ! नमोऽस्तु ते ।
विश्वेश्वर ! जगद्वन्धो ! जगदीश ! सदाशिव ! ॥33॥
नमस्तेऽस्तु महादेव ! त्रिलोकेश ! महेश्वर ! ।
नमस्ते योगतन्त्रज्ञ ! नमः कालीपते ! नमः ॥34॥
नमस्तारापते ! तुभ्यं नमस्ते भैरवीपते ! ।
गौरीपते ! जगन्नाथ नमस्ते चण्डिकापते ! ॥35॥
भवरूप-तरोर्बीज फल-रूप-फलप्रद ! ।
नमस्ते सर्वबीजज्ञ ! बीजाधार ! नमोऽस्तु ते ॥36॥
उमापते ! नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं त्रिलोचन ! ।
पञ्चानन ! नमस्तुभ्यं नमस्ते शशिशेखर ! ॥37॥
शम्भो महेश्वर ! विभो ! विरूपाक्ष ! चतुर्भुज ! ।
नमस्ते पर्वताराध्य ! चण्डीपते ! नमोऽस्तु ते ॥38॥
त्रिलोकेश ! दयासिन्धो ! करुणामय ! शङ्कर ! ।
भक्तवत्सल ! देवेश ! नीलकण्ठ ! सदाशिव ! ॥39॥
नमः काशीपते ! तुभ्यं नमस्ते चन्द्रशेखर ! ।
नमश्चण्डीपते ! तुभ्यं नमस्ते मुक्तिद ! प्रभो ! ॥40॥

श्री शिव उवाच —

निर्गुणा-प्रकृतिः सत्यऽहमेव च निर्गुणः ।
उपासकानां सिद्ध्यर्थं सगुणा सगुणो मतः ॥41॥
नानातन्त्रमतं देवि ! नानायन्त्रात् प्रकाशितम् ।
ब्रह्मस्वरूपं विज्ञातुं कः समर्थो महीतले ॥42॥
नानामार्गं विधावन्ति पशवो हतबुद्धयः ।
देवी दुर्गा-चरणाम्भोजं त्यक्त्वा यान्ति रसातलम् ॥43॥
सत्यं वच्मि दृढं वच्मि हितं पथ्यं पुनः पुनः ।
न च भक्तिश्च मुक्तिश्च विना दुर्गाविषेवनात् ॥44॥
देवि ! दुर्गा परं ब्रह्म श्रुतं कालीश्रुतौ त्वया ।
तव श्रुतौ श्रुतं देवि ! श्रुता ब्रह्म-विचारणा ॥45॥

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च वासवाद्या दिवौकसः।
त्वत्पादसेवनाद् देवि! वयं वै साधकोत्तमाः ॥46॥
न देवेशो गणपतिर्नो ब्रह्मा ब्रह्मा नो हरिः।
हरिर्हरिरहं देवि! सर्वे पादाब्ज-भावुकाः ॥47॥
त्वत्-प्रसादान्महेशानि! ब्रह्मा सृष्टिं करोत्यसौ।
त्वत्-प्रसादाद्धरिः पाता हरो हर्ता महीतले ॥48॥
वासवश्चामराधीशो ब्रह्म-विष्णु-शिवाः स्मृताः।
ते सर्वे निर्जरा देवि! त्वत् प्रसादान्महेश्वरि ॥49॥
तत्-सम्पर्काद देवदेव! सर्वभूताश्रया स्मृताः।
अतस्त्वं जगदीशान-दयिते! भक्तवत्सले! ॥50॥
दृष्टिं कुरु महामाये! नमस्तस्यै नमो नमः।
त्वञ्च काली त्वञ्च तारा षोडशी त्वं वरानने! ॥51॥
त्वं देवि! भुवना बाला छिन्ना धूमा महेश्वरि!।
त्वं देवि! बगला भीमा कमला त्वं महेश्वरि! ॥52॥
मातङ्गी त्वञ्च पूर्णा त्वं धनदा त्वं शिवप्रिये!।
दुर्गा त्वं विश्वजननी दशाष्टदशरूपिणी ॥53॥
सप्त-कोटि-महाविद्या उपविद्या-स्वरूपिणी।
कुमारी रमणी रूपा सुरूपा नगनन्दिनी ॥54॥
शिवपूज्या शिवाराध्या ब्रह्मपूज्या सुरेश्वरि!।
शिवो भिन्न शिवाभिन्ना न जीवो वामलोचना ॥55॥
इति जानासि विश्वेशि! सत्यं सत्यं न संशयः।

श्रीपार्वत्युवाच —

सत्यं मे कथितं नाथ! सत्यरूपोऽस्मि शङ्कर!।
अहञ्च त्रिषु लोकेषु पार्वतीश्वर! शङ्कर! ॥56॥
विशेषं देवदेवेश! सर्वज्ञ! कथयस्व मे।

श्री शिव उवाच —

विशेषं न च जानामि कथयस्व वरानने!।
सर्वज्ञासि महेशानि! यतः सर्वज्ञ-वल्लभा ॥57॥

श्रीपार्वत्युवाच —

गोलोके चैव राधाऽहं वैकुण्ठे कमलात्मिका ।
ब्रह्मलोके च सावित्री भारती च स्वरूपिणी ॥58॥
कैलासे पार्वती देवी मिथिलायाञ्च जानकी ।
द्वारकायां रूक्मिणी च द्रौपदी नागसाह्वये ॥59॥
गायत्री वेदजननी सन्ध्यान्या च द्विजन्मनाम् ।
योगमध्ये पृषाऽहञ्च पुण्ये कृष्णापराजिता ॥60॥
पत्रे मालूर पत्राऽहं पीठे योनिस्वरूपिणी ।
हरिहरात्मिका विद्या ब्रह्म-विष्णु-शिवार्चिता ॥61॥
विशेषानुग्रहेणैव विज्ञेया शङ्कर ! प्रभो ! ।
यत्र कुत्र स्थले नाथ ! शाक्तस्तिष्ठति गच्छति ॥62॥
तत्रैवाहं महादेव ! निश्चितं मतमुक्तमम् ।
शक्तिमार्गं परित्यज्य योऽन्यमार्गं विधावति ॥63॥
करस्थं स मणिं त्यक्त्वा दुतिभावं विधावति ।
इत्येवञ्च महादेव ! मयोक्तं जगदीश्वर ! ॥64॥
अतः परतरं नास्ति नास्ति नास्ति सदाशिव ! ।

इति मुण्डमालातन्त्रे हर-पार्वती सम्वादे
एकादशः पटलः ॥11॥

द्वादशः पटलः

श्रीदेव्युवाच —

नमस्ते पार्वतीनाथ ! विश्वनाथ ! दयामय ! ।
ज्ञानात् परतरं नास्ति श्रुतं विश्वेश्वर ! प्रभो ! ॥1॥
दीननाथ ! दयासिन्धो ! विश्वेश्वर ! जगत्पते ! ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि गोप्यं परमकारणम् ! ।
रहस्यं कालिकायाश्च तारायाश्च सुरेश्वर ! ॥2॥

श्री शिव उवाच —

रहस्यं किं वादिष्यामि पञ्चवक्त्रैर्महेश्वरि ॥3॥
जिह्वाकोटि-सहस्रैस्तु वक्त्रकोटिशतैरपि ।
तथापि तस्या माहात्म्यं न शक्नोमि कथञ्चन ॥4॥
तस्या रहस्यं गोप्यञ्च किं न जानासि शङ्करि ! ।
तस्यैव चरितं वक्तुं कुत्र को न क्षमो भवेत् ॥5॥
अन्यथा नैव देवेशि ! न जानाति कथञ्चन ।
कालिकायाः शतं नाम नानातन्त्रे त्वया श्रुतम् ॥6॥
रहस्यं गोपनीयञ्च तन्त्रेऽस्मिन् जगदम्बिके ! ।
करालवदना काली कामिनी कमला कला ॥7॥
क्रियावती कोटराक्षी कामाख्या कामसुन्दरी ।
कपोला च करालास्या काली कात्यायनी कुहुः ॥8॥
कङ्काला कालदमना करुणा कमलार्चिता ।
कादम्बरी कालहरा कौतुकी कारणप्रिया ॥9॥
कृष्णा कृष्णप्रिया कृष्ण-पूजिता कृष्णवल्लभा ।
कृष्णापराजिता कृष्ण-प्रिया च कृष्णरूपिणी ॥10॥
कालिका कुलशक्तिश्च कुलजा कुलपण्डिता ।
कुलधर्मप्रिया काम्या काम्य-कर्म-विभूषिता ॥11॥
कुटजा केशिनी कामा कामदा कामपण्डिता ।
करालास्या च कन्दर्पा कामिनी कामदायिका ॥12॥
कोलम्बका कोलरता केलिनी केश-भूषिता ।
केशवस्य प्रिया काशा काश्मीरा कोरकार्चिता ॥13॥

कामेश्वरी कामदा च कामे काम-विभूषिता ।
कालहन्त्री कूर्ममांस-प्रिया कूर्मादि-पूजिता ॥14॥
केलिनी करकाकारा काम-कर्मनिषेविनी ! ।
करमध्यस्था कटवाटा कीटका कीटकार्चिता ॥5॥
कटप्रिया कटरता कटकर्मनिषेविनी ।
कुमारी-पूजनरता कुमारी-गणसेविता ॥16॥
कुलाचार-प्रिया कौलप्रिया कुलनिषेविनी ।
कुलीना कुलधर्मज्ञा कुलभीति-विमर्द्दिनी ॥17॥
कालधर्मप्रिया काम्य-नित्या काम्य-स्वरूपिणी ।
कोल-पुष्पाम्बरा कोला निकोला कलहान्तका ॥18॥
कौषिकी केतकी कुन्ती कुन्तलादि-विभूषिता ।
इत्येवं शृणु चार्वङ्गि ! रहस्यं सर्वमङ्गलम् ॥18-क॥
यः पठेत् परया भक्त्या स शिवो नात्र संशयः ।
शतनाम-प्रसादेन किं न सिध्यति भूतले ॥19॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च वासवाद्या दिवौकसः ।
रहस्य पठनाद् देवि सर्वे च विगतज्वराः ॥20॥
त्रिषु लोकेषु विश्वेशि ! सत्यं गोप्यं यतः परम् ।
नास्ति नास्ति महामाये ! तन्त्रमध्ये कथञ्चन ॥21॥
क्रियया च विना देवि ! विना भक्त्या महेश्वरि ! ।
प्रसन्नास्या करालास्या स्तवपाठाद् दिगम्बरी ।
सत्यं वच्मि महेशानि ! अतः परतरं न हि ॥21॥
न गोकुले न वैकुण्ठे न च कैलास-मन्दिरे ।
अतः परतरा विद्या स्तोत्रं कवचमेव च ॥22॥
त्रिषु लोकेषु विश्वेशि ! नास्ति नास्ति कदाचन ।
रात्रावपि दिवाभागे निशाभागेषु सन्धिषु ॥23॥
यो जपेद्भक्तिभावेन रहस्यं स्तवमुत्तमम् ।
शतनाम-प्रसादेन मन्त्रसिद्धिः प्रजायते ॥24॥
कुजवारे चतुर्दश्यां निशायां भक्तिभावतः ।
स कृती सर्वशास्त्रज्ञः स कुलीनः सदा शुचिः ॥25॥
स कुलज्ञः स कालज्ञः स धर्मज्ञो महीतले ।
प्राप्नोति देवदेवेशि ! सत्यं परम-सुन्दरि ! ॥26॥

म्नवपाठाद् वगरोहे ! किं न मिध्यति भूतले ।
मिद्धेऽपि च विमिद्धश्च भवन्त्येव न संशयः ॥27॥
रात्रौ बिल्वदलेऽश्वत्थमूले पराजितातले ।
प्रपठेत् कालिकास्तोत्रं रहस्यञ्च महेश्वरि ! ॥28॥
शतवार-प्रपठनात् ! मन्त्रमिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ।
उपायो नास्ति देवेशि ! महामन्त्रस्य साधने ॥29॥
अतः परं नास्ति देवि ! नास्ति ब्रह्माण्डमण्डले ।
नानातन्त्रं श्रुतं देवि ! मम वक्त्रात् सुरेश्वरि ! ॥30॥
मुण्डमाला-महामन्त्रं महातन्त्रस्य साधनम् ।
भक्त्या भगवतीं दुर्गां दुःख-दारिद्र्य-नाशिनीम् ॥31॥
संस्मरेत् प्रजपेत् ध्यायेत् स मुक्तो नात्र संशयः ।
जीवन्मुक्तः स विज्ञेयस्तन्त्रनाम-परायणः ॥32॥
स साधको महाज्ञानी यश्च दुर्गा-पदानुगः ।
न च भक्तिर्न वा भुक्तिर्न मुक्तिर्नगनन्दिनि ॥33॥
विना दुर्गां जगद्धात्रि ! विना दुर्गां परा गतिः ।
शक्ति-मार्गरतो भूयो योऽन्यमार्गं प्रधावति ॥34॥
न च शाक्तास्तस्य वक्त्रं परिपश्यन्ति शङ्करि ! ।
विना दुर्गां जगन्माता जगदानन्द-मोहिताः ॥35॥
अन्यदेवं भजन्त्येते ते चान्ये शास्त्र-घूर्णिताः ।
विना तन्त्राद् विना मन्त्राद् विना यन्त्रान्महेश्वरि ! ॥36॥
तन्त्रवक्ता गुरुः साक्षात् यथा च ज्ञानदः शिवः ।
यथा गुरुर्महेशानि ! यथा च परमो गुरुः ॥37॥
तथा चैव हि तन्त्रज्ञस्तन्त्रवक्ता गुरुः स्वयम् ।
तन्त्रज्ञ तन्त्रवक्तारं निन्दन्ति ये च मानवाः ॥38॥
ये जना भैरवास्तेषां मांसास्थि-चर्वणोद्यताः ।
अतएव च तन्त्रज्ञं न निन्दन्ति कदाचन ॥39॥
न हसन्ति न हिंसन्ति न वदन्त्यन्यथा इति ।

इति मुण्डमालातन्त्रे हरपार्वतीसंवादे
द्वादशः पटलः ॥12॥

त्रयोदशः पटलः

श्रीपार्वत्युवाच —

शृणु देव ! जगद्वन्द्यो ! मद्वाक्यं दृढ़निश्चितम् ।
तव प्रसादाद्देवेश ! श्रुतं कालीरहस्यकम् ॥1॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि तारया वद साम्प्रतम् ।

श्री शिव उवाच —

धन्यासि देवदेवेशि ! दुर्गे ! दुर्गार्त्तिनाशिनि ! ।
यं श्रुत्वा मोक्षमाप्नोति पठित्वा नगनन्दिनि ! ॥2॥
तारिणी तरला तन्वी तारा तरुणवल्लरी ।
तीव्ररूपा तरश्यामा तनुक्षीणपयोधरा ॥3॥
तुरीया तरुणा तीव्रगमना नीलवाहिनी ।
उग्रतारा जया चण्डी श्रीमदेकजटा शिवा ॥4॥
तरुणा शाम्भवी छिन्ना भावना भद्रतारिणी ।
उग्रादुग्रप्रभा नीला कृष्णा नीलसरस्वती ॥5॥
द्वितीया शोभिनी नित्या नवीना नित्य-नूतना ।
चण्डिका विजया विद्या देवी गगन-वाहिनी ॥6॥
अट्टहास्या करालास्या चतुरास्यादि-पूजिता ।
रौद्रा रौद्रमयी मूर्त्तिर्विशोका शोक-नाशिनी ॥7॥
शिवपूज्या शिवाराध्या शिवध्येया सनातनी ।
ब्रह्मविद्या जगद्धात्री निर्गुणा गुण-पूजिता ॥8॥
त्रिगुणा सगुणाराध्या हरीन्द्रदेव-पूजिता ।
अर्द्धकेशेश्वरी केशा केशवेश-विभूषिता ॥9॥
पद्ममाला च पद्माक्षी कामाख्या गिरिनन्दिनी ।
दक्षिणा चैव दक्षा च दक्षजा दक्षिणेतरा ॥10॥
वज्र पुष्प-प्रिया रक्त-प्रिया कुसुम-भूषिता ।
माहेश्वरी महादेव-प्रिया पञ्च-विभूषिता ॥11॥
इड़ा च पिङ्गला चैव सुषुम्ना प्राणरूपिणी ।
गान्धारी पञ्चमी पञ्चाननादि-परिपूजिता ॥12॥

इत्येतत् कथितं देवि ! रहस्यं परमात्मकम् ।
श्रुत्वा मोक्षमवाप्नोति तारादेव्याः प्रसादतः ॥13॥
य इदं प्रपठेत् स्तोत्रं तारायास्तु रहस्यकम् ।
सर्वसिद्धीश्वरो भूत्वा विहरेत् क्षितिमण्डले ॥14॥
तस्यैव मन्त्रसिद्धिः स्यान्मन्त्रसिद्धिरनुत्तमा ।
भवत्येवं महामाये ! सत्यं सत्यं न संशयः ॥15॥
मन्दे मङ्गलवारे च यः पठेन्निशि संयतः ।
तस्यैव मन्त्रसिद्धिः स्याद् गाणपत्यं लभेत् तु सः ॥16॥
श्रद्धयाऽश्रद्धया वापि पठेत् तारा रहस्यकम् ।
सोऽचिरेणैव कालेन जीवन्मुक्तः शिवो भवेत् ॥17॥
सहस्रावर्त्तनाद्देवि ! पुरश्चर्याफलं लभेत् ।
एवं सततयुक्ता ये ध्यायन्तस्त्वमुपासते ।
ते कृतार्था महेशानि ! मृत्यु-संसारबन्धनात् ॥18॥
रहस्यं तारिणी देव्याः कालिकायाः श्रुतं त्वया ।
एवं परमगोप्यञ्च शिवध्येयं शिवप्रदम् ।
इदानीञ्च वरारोहे ! भूयः किं श्रोतुमिच्छसि ॥19॥

इति मुण्डमालातन्त्रे हरपार्वती-संवादे
त्रयोदशः पटलः ॥13॥

चतुर्दशः पटलः

रहस्यं पार्वतीनाथ-वक्त्रात् श्रुत्वा च पार्वती ।
महादेवं महेशानमीशमाह महेश्वरी ॥1॥

श्रीपार्वत्युवाच —

त्रिलोकेश ! जगन्नाथ ! देवदेव ! सदाशिव ! ।
त्वत् प्रसादान्महादेव श्रुतं तन्त्रं पृथग्विधम् ॥2॥
इदानीं वर्त्तते श्रद्धागमशास्त्रे ममैव तु ।
यदि प्रसन्नो भगवन् । कृपयाद्यं महोदयम् ॥3॥
नानातन्त्रे महादेव ! श्रुतं नानाविधं मतम् ।
कृतार्थास्मि कृतार्थास्मि कृतकार्यास्मि शङ्कर ! ॥4॥
प्रसन्ने शङ्करे नाथ ! किं भयं जगति तले !
विना शिव-प्रसादेन न सिद्ध्यति कदाचन ॥5॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि भुवनाया रहस्यकम् ।

श्री शङ्कर उवाच —

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि गुह्याद् गुह्यतरं परम ।
पठित्वा परमेशानि ! मन्त्रसिद्धिमवाप्नुयात् ॥6॥
आद्या श्रीभुवना भव्या भवबन्ध-विमोचनी ।
नारायणी जगद्धात्री ! शिवा विश्वेश्वरी परा ॥7॥
गान्धारी परमा विद्यां जगन्मोहन-कारिणी ।
सुरेश्वरी जगन्माता विश्वमोहन-कारिणी ॥8॥
भुवनेशी महाविद्या देवेशी हरवल्लभा ।
कराला विकटाकारा महाबीज-स्वरूपिणी ॥9॥
त्रिपुरेशी त्रिलोकेशी दुर्गा त्रिभुवनेश्वरी ।
माहेश्वरी शिवाराध्या शिव-पूज्या सुरेश्वरी ॥10॥
नित्या च निर्मला देवी सर्वमङ्गलकारिणी ।
सदाशिव-प्रिया गौरी सर्वमङ्गलकारिणी ॥11॥
पार्वती तारिणी देवी भीमाभय-विनाशिनी ।
त्रैलोक्य-जननी तारा तारिणी तरुणा क्षमा ॥12॥

भक्ति-मुक्ति-प्रदा देवि ! शङ्करा शङ्करात्मिका ।
उमा गौरी-प्रिया माध्वीप्रिया च वारुणप्रिया ॥13॥
भैरवी भैरवानन्द-दायिनी भैरवात्मिका ।
धर्मपूज्या च ब्रह्माणी रुद्राणी रुद्रपूजिता ॥14॥
रुद्रेश्वरी रुद्ररूपा त्रिपुटा त्रिपुरा मता ।
वसुदा नाथरूपा च विश्वनाथ-प्रपूजिता ॥15॥
आनन्दरूपिणी श्यामा शम्भुनाथ-वरप्रदा ।
आनन्दार्णव-मग्ना सा गजराजेश्वरी मता ॥16॥
भवानी च भवानन्द-दायिनी भवगेहिनी ।
मृगराजेश्वरी चण्डी प्रचण्डा घोरनादिनी ॥17॥
घनश्यामा घनवती महाघन-निनादिनी ।
घोर-जिह्वा लालजिह्वा देवेशी नगनन्दिनी ॥18॥
त्रैलोक्यमोहिनी विश्वमोहिनी विश्वरूपिणी ।
षोडशी त्रिपुरा ब्रह्मदायिनी ब्रह्मदाऽनघा ॥19॥
इत्येतत् परमं ब्रह्म-स्तोत्रं परमकारणम् ।
यः पठेत् परया भक्त्या जीवन्मुक्तः स एव हि ॥20॥
ब्रह्माद्या देवताः सर्वा मुनयस्तन्त्र-कोविदाः ।
पठित्वा परया भक्त्या ब्रह्मसिद्धिमवाप्नुयुः ॥21॥
मन्त्रसङ्केतमज्ञात्वा विद्यासङ्केतकं तथा ।
वीरसङ्केतकं देवी योनिमुद्रात्मकं प्रिये ! ॥22॥
ब्रह्मसङ्केतकं चण्डि ! कलिसङ्केतकं तथा ।
सङ्केतं समयाचारं कुलसङ्केतकं तथा ॥23॥
यन्त्रसङ्केतकं सिद्धि-सङ्केतं बहुविस्तरम् ।
कुलार्णवं श्रुतं नाथ ! श्रुतं च मोहने प्रभो ! ॥24॥
विद्यासङ्केत-चरितं ब्रूहि विश्वेश्वर प्रभो ! ।

श्री शङ्कर उवाच —

विद्यानामुत्तमा विद्या महाविद्या प्रकीर्त्तिता ।
यस्याः स्मरणमात्रेण मन्त्रसिद्धिः प्रजायते ॥25॥
मन्त्रसङ्केतमज्ञात्वा यो भजेद् विश्वमोहिनीम् ।
शतवर्षजपेनापि तस्य सिद्धिर्न जायते ॥26॥

विद्या च द्वितीया चैव षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवीध्यानमात्रेण सिद्धि-सिद्धा भवन्ति हि ॥27॥
इड़ा पिङ्गलयोर्मध्ये दुर्गमा विश्वमोहिनी।
तस्याः प्रभेद संस्कारं यो जानाति सः पण्डितः ॥28॥
स धन्यः स कृती लोके स वीरः सर्वगः शुचिः।
स भैरवश्च विज्ञेयः सदा सुखविवर्द्धकः ॥29॥
एवं करालवदनां मुण्डमाला-विभूषिताम्।
यो जानाति जगद्धात्रि! जीवन्मुक्तः स एव हि ॥30॥
विशेषञ्च प्रवक्ष्यामि कुलभक्त्या तु सिद्ध्यति।
कुलभक्तिं विना देवि! न भुक्तिर्न च सद्गतिः ॥31॥
सत्ये तु सुन्दरी आद्या त्रेतायां भुवनेश्वरी।
द्वापरे तारिणी आद्या कलौ काली प्रकीर्त्तिता ॥32॥
नाम-भेदं प्रवक्ष्यामि रूपभेदं वरानने!।
न भेदः कालिकायाश्च ताराया जगदम्बिके! ॥33॥
षोडश्या भुवनायाश्च भैरव्यास्त्रिपुरेश्वरी।
छिन्नयाश्चैव धूमाया भीमायाः परमेश्वरी ॥34॥
न च भेदं महेशानि! विद्याया वरवर्णिनि!।

श्रीपार्वत्युवाच —

विश्वनाथ! महादेव! महेश्वर! जगद्गुरो!।
पृच्छाम्येकं महाभाग! योगेन्द्र! वृषभध्वज! ॥35॥
कृष्णायाः करवीरस्य द्रोणास्य च सदाशिवः!।
बिल्वपत्रस्य माहात्म्यं जवाया वद शङ्कर! ॥36॥

श्री शङ्कर उवाच —

धन्यासि पतिभक्तासि प्राणतुल्यासि शङ्करि!।
अतिगोप्यं जगद्धात्रि! देवानामपि दुर्लभम् ॥37॥
कृष्णाऽपराजिता साक्षाद् भद्रकाली न संशयः।
करवीरञ्च भुवना द्रोणं त्रिपुरसुन्दरी ॥38॥
जवा साक्षाद् भगवती सर्वविद्या-स्वरूपिणी।
ये साधवो जगन्मातरर्चयन्ति सदाशिवम् ॥39॥

एतैश्च कुसुमैश्चण्डीं स शिवो नात्र संशयः ।
किं जपैः किं तपोभिर्वा किं वा दानैः किमध्वरैः ॥40॥
येनार्चिता जगद्धात्रि ! द्रोण-कृष्णा-जवादिभिः ।
गजमृग्याश्वमेधाद्यैर्वाजिपेयाग्निष्टोमकैः ॥41॥
फलं यज्जायते चण्डि ! तत् सर्वं कुसुमार्चनात् ।
जवां द्रोणं तथा कृष्णां मालूरं करवीरकम् ॥42॥
साक्षाद् ब्रह्म-स्वरूपञ्च महादेव्यै निवेदयेत् ।
श्वेतचन्दन-संयुक्तं रक्तचन्दन-लेपितम् ॥43॥
यो दद्याद् भक्तिभावेन स विश्वेशो न संशयः ।
महाघोरे महोत्पाते महाविपदि सङ्कटे ॥44॥
महादुःखे महारोगे महाशोके महाभये ।
पूजयेत् कालिकां तारां भुवनां षोडशीं शिवाम् ॥45॥
बालां छिन्नाञ्च बगलां धूमां भीमां करालिनीम् ।
कमलाअन्नपूर्णाञ्च दुर्गां दुःख-विनाशिनीम् ॥46॥
सर्वविद्यां जवा-द्रोण-करवीरैर्मनोहरैः ।
मालूरपत्रैः कृष्णाभिः कृष्णां सम्पूज्य भूतले ॥47॥
साधकेन्द्रो महेशानि ! स भवेन्नात्र संशयः ।
लक्षाणां महिषैर्मेषैरजैर्दानैर्मखैः शुभैः ॥48॥
पूजिता जगतां धात्री यद्येषा कुसुमार्चिता ।
माहात्म्यञ्चापि कृष्णायाः कृष्णा जानाति भूतले ॥49॥
तदर्द्धञ्चाप्यहं देवि ! तदर्द्धं श्रीपतिः सदा ।
तदर्द्धं शरजन्मा वै तदर्द्धं वेदसाधकः ॥50॥
अस्य पुष्पस्य माहात्म्यं संक्षेपात् त्वयि शङ्करि ! ।
पृथिव्यामतले स्वर्गे वैकुण्ठे कालिकापुरे ॥51॥
जवादि-करवीराणां दानैः किं किं फलं भवेत् ।
न जानाति जगद्धात्रि ! को वेद पार्वतीं विना ॥52॥
करवीरैः श्वेतरक्तैः रक्तचन्दन-मिश्रितैः ।
पूजयेत् क्षितितले यस्तु स विश्वेशो भवेद् ध्रुवम् ॥53॥
कृष्णापराजितापुष्पैर्यस्तु देवीं प्रपूजयेत् ।
अश्वमेधसहस्राणां फलं प्राप्य शिवां व्रजेत् ॥54॥

विल्वपत्रस्य माहात्म्यं देवानामपि दुर्लभम् ।
यो दद्याद् विल्वपत्रञ्च शिवायै शङ्कराय च ॥55॥
सदाशिव-समो भूत्वा स गच्छेद् ब्रह्ममन्दिरम् ।
महाविपत्तौ देवेशि ! जवां कृष्णापराजिताम् ॥56॥
द्रोणञ्च करवीरं वा स गच्छेत् कालिकापुरम् ।
किं पाद्यैः किं च वाद्यैर्वा नैवेद्यैः किञ्च पूजनैः ॥57॥
मधुदानैर्मधुपर्कैः कुम्भकैः किञ्च रेचकैः ।
पूरकैः किञ्च ध्यानैश्च प्राणायामैश्च किञ्च वा ॥58॥
किं जपैः किं तपोभिर्वा मत्स्यैर्मांसैश्च पञ्चमैः ।
किञ्च मन्त्रैः किञ्च तन्त्रैः किं यन्त्रैः किञ्च साधनैः ॥59॥
किं शवैरासवैः किंवा श्मशानैर्मन्त्र साधनैः ।
किमध्वरैर्मन्त्रपूतैर्मन्त्रार्थैर्मन्त्र-जीवनैः ॥60॥
किं योनिमुद्रया किंवा तीर्थैः किं ब्रह्मसाधनैः ।
किं मातृकान्यासवर्गैः किं कटैः किं पटैर्घटैः ॥61॥
किं काक-चञ्चुभिः षोडान्यासैः किं कर्मसाधनैः ।
येनार्चिता भगवती करवीरैर्जवादिभिः ॥62॥
कृष्णापराजिता पुष्पैः करवीरैर्मनोहरैः ।
द्रोणैस्तु केतकीपुष्पैर्जवामालूर-पत्रकैः ॥63॥
पूजिता या भगवती कर्मसाधनकैः फलैः ।
इत्येवञ्च श्रुतं देवी रहस्यं परमं शिवम् ॥64॥
यं श्रुत्वा मोक्षमाप्नोति साधको नात्र संशयः ।
तन्त्र-मन्त्रं महेशानि ! सारात् सारतरं प्रिये ! ॥65॥
श्रुत्वा ज्ञात्वा मोक्षमाशु लभते नात्र संशयः ।
महाभये बन्धने च विमुक्तौ बहु-सङ्कटे ॥66॥
शृणु देवि ! जगद्धात्रि ! मुच्यते भव-बन्धनात् ।
श्रद्धयाऽश्रद्धया वापि यः कश्चित्तारिणीं यजेत् ॥67॥
स धन्यः स कविर्धीरः सर्वशास्त्रार्थ-कोविदः ।
स च ज्ञानी पूजयति यस्तु कालीपदद्वयम् ।
इत्येवञ्च श्रुतं देवि ! भूयः किं श्रोतुमिच्छसि ॥68॥

इति मुण्डमाला-तन्त्रे हरपार्वती-संवादे चतुर्दशः पटलः ॥14॥

पञ्चदशः पटलः

श्रीदेव्युवाच —

देवदेव ! महादेव ! नीलकण्ठ ! सदाशिव ! ।
नमस्ते परमेशान ! विश्वनाथ ! नमोऽस्तु ते ॥1॥
नमस्ते परमेशान ! सदाशिव ! महेश्वर ! ।
नमस्ते परमानन्द ! ज्ञान-मोक्ष प्रदायक ! ॥2॥
नमस्ते पार्वतीनाथ ! नमस्ते भक्तवत्सल ! ।
प्रसीद मां जगद्बन्धो ! गोप्यं वद सदाशिव ! ॥3॥

श्री शिव उवाच —

शृणु देवि ! जगद्धात्रि ! सारात् सारतरं परम् ।
श्रुत्वा मोक्षमवाप्नोति साधकेन्द्रो महीतले ॥4॥
शृणुयाद यो मुण्डमाला-तन्त्रं परम-कारणम् ।
ज्ञानदं मोक्षदं भक्ति-मुक्ति-सौख्यप्रदं शिवे ! ॥5॥
इत्येवं परमं देवि ! देवानामपि दुर्लभम् ।
यो वेद धरणीमध्ये स एव परमार्थवित् ॥6॥
शक्तिमार्गं विना जन्तोर्न भक्तिर्न च सद्गतिः ।
शक्तिमूलं जगत् सर्वं शक्तिमूलं परं तपः ॥7॥
शक्तिमूलं परं कर्म जन्म कर्म महीयते ।
विना शक्ति-प्रसादेन न मुक्तिर्जायते प्रिये ! ॥8॥
श्रुतं देवि ! वरारोहे ! सर्वं गोप्यं महीतले ।
अन्यगोप्यं किं वदामि तत् सर्वं वद सुव्रते ! ॥9॥

श्री पार्वत्युवाच —

शृणु देवि ! महादेव ! कथयस्व जगद्गुरो ! ।
कथमुत्पद्यते ज्ञानं तद् वदस्व कृपानिधे ! ॥10॥

श्री शिव उवाच —

अहो भाग्य महोभाग्यमहो भाग्यं सुरेश्वरि ! ।
कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहं कृतकार्यो महेश्वरि ! ॥11॥

ज्ञानकाण्डं महेशानि ! सारात् सारतरं स्मृतम् ।
ज्ञानञ्च द्विविधं ज्ञेयं दुर्ज्ञेयं मनसा अपि ॥12॥
ज्ञानं परमतत्त्वार्थं ज्ञानं ज्ञेयार्थ-साधनम् ।
अन्यद् विश्रान्ति-विषयं ज्ञानं साधारणं मतम् ॥13॥
एवञ्च त्रिविधं शेषमधमं तत्त्व-वर्जितम् ।
तत्त्वज्ञानं वरारोहे ! योगीन्द्राणाञ्च दुर्लभम् ॥14॥
विना तत्त्व-परिज्ञानात् विफलं पूजनं जपः ।
सत्यं तत्त्व-परिज्ञानात् सफलं पूजनं तपः ॥15॥
एको देवश्च एकोऽहं आत्मा भिन्नः शरीरतः ।
घटात् पटान्महेशानि ! कालचक्रान्महीरुहात् ॥16॥
एवं ज्ञानं तन्त्र-मतं तदा मुक्तोऽचिरेण तु ।
नाना कारणमेवास्य पूजनं ध्यानमेव च ॥17॥
सेवनञ्चैव तीर्थानां शरणं तारिणीपदे ।
सत्सङ्ग-सेवनं विष्णोः शङ्करस्यापि पूजनम् ॥18॥
कालिकापादयुगल-भजनं ज्ञानकारणम् ।
यावन्नानात्वमेव स्यात्तावद्भिन्नं महीतले ॥19॥
तावज्जातिश्च गोत्रञ्च तावन्नाम पृथग्विधम् ।
तावल्लिङ्गं पृथक् सर्व वर्णानां पृथगेव हि ॥20॥
तावन्मित्र-विपक्षौ च तावत् कलत्र-बान्धवौ ।
तावत् पृथग्विधा पूजा यन्त्र-मन्त्रार्चनादिभिः ॥21॥
तावत् पुण्यं तावदेव पापं पुण्य-विवर्द्धकम् ।
तावत् त्वञ्चाप्यहमहमियञ्च जायते प्रिये ! ॥22॥
यावन्न जायते चण्डि ! विद्याविद्याविरोधिनी ।
या तारिणी महाविद्या विद्याऽविद्यास्वरूपिणी ॥23॥
अतएव वरारोहे ! विद्यामुत्पाद्य भूतले ।
निर्वाणमोक्षमाप्नोति सत्यं त्रिपुरसुन्दरि ! ॥24॥
श्री दुर्गाचरणाम्भोजे भक्तिरव्यभिचारिणी ।
तदैव जायते ब्रह्मज्ञानं ब्रह्मादि-दुर्लभम् ॥25॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च वासवाद्या दिवौकसः ।
भैरवाश्चैव गन्धर्वा विद्याभ्यास-समुत्सुकाः ॥26॥

ब्रह्मविद्यासमा विद्या ब्रह्मविद्या समा क्रिया।
ब्रह्मविद्यासमं ज्ञानं नास्ति नास्ति कदाचन।
तत्त्वज्ञानं श्रुतं देवि! किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥27॥

श्रीपार्वत्युवाच –

नमस्तुभ्यं महादेव! विश्वनाथ! जगद्गुरो!।
श्रुतं ज्ञानं महादेव! नानातन्त्र तवाननात् ॥28॥
इदानीं चण्डिकायास्तु गुह्यस्तोत्रं वद प्रभो!।
कवचं ब्रूहि मे नाथ! मन्त्रचैतन्य-कारणम् ॥29॥
मन्त्र-सिद्धिकरं गुह्याद् गुह्यं मोक्ष-विधायकम्।
श्रुत्वा मोक्षमवाप्नोति ज्ञात्वा विद्यां महेश्वर! ॥30॥

श्री शिव उवाच –

दुर्लभं तारिणीमार्ग दुर्लभं तारिणी-पदम्।
मन्त्रार्थ मन्त्र-चैतन्यं दुर्लभं शवसाधनम् ॥31॥
श्मशान-साधनं योनि-साधनं ब्रह्म-साधनम्।
क्रिया-साधनकं भक्ति-साधनं मुक्ति-साधनम् ॥32॥
तव प्रसादाद्देवेशि! सर्वाः सिद्ध्यन्ति सिद्धयः।
नमस्ते चण्डिके चण्डि! चण्ड-मुण्ड-विनाशिनि! ॥33॥
नमस्ते कालिके! देवि! महाभय-विनाशिनि!।
शिवे! रक्ष जगद्धात्रि! प्रसीद हर-वल्लभे! ॥34॥
प्रणमामि जगद्धात्रि! जगत्-पालन कारिणी!।
जगन्मोक्षकरी-विद्यां जगत्-सृष्टिविधायिनीम् ॥35॥
करालां विकटां घोरां मुण्डमाला-विभूषिताम्।
हरार्चितां हराराध्यां नमामि हर-वल्लभाम् ॥36॥
गौरीं गुरु-प्रियां गौरवर्णालङ्कार-भूषिताम्।
हरिप्रियां महामायां नमामि ब्रह्मपूजिताम् ॥37॥
सिद्धां सिद्धेश्वरीं सिद्धविद्याधरगणैर्युताम्।
मन्त्रसिद्ध-प्रदां योनि-सिद्धदां सिद्धशोभिताम् ॥38॥
प्रणमामि महामायां दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम्।
उग्रामुग्रमयीमुग्रतारामुग्रगणैर्युताम् ॥39॥

नीलां नीलघनश्यामां नमामि नीलसुन्दरीम् ।
श्यामाङ्गीं श्यामघटितां श्यामवर्ण-विभूषिताम् ॥40॥
प्रणमामि जगद्धात्रीं गौरीं सर्वार्थसाधिनीम् ।
विश्वेश्वरीं महाघोरां विकटां घोरनादिनीम् ॥41॥
आद्यामाद्यगुरोराद्यामाद्यनाथप्रपूजिताम् ।
श्रीदुर्गां धनदामन्नपूर्णामाद्यां सुरेश्वरीम् ॥42॥
प्रणमामि जगद्धात्रीं चन्द्रशेखर-वल्लभाम् ।
त्रिपुरां सुन्दरीं बालामबलागणनादिताम् ॥43॥
शिवदूतीं शिवाराध्यां शिवध्येयां सनातनीम् ।
सुन्दरीं तारिणीं सर्वशिवागणविभूषिताम् ॥44॥
नारायणीं विष्णु-पूज्यां ब्रह्म-विष्णु-हरप्रियाम् ।
सर्वसिद्धिप्रदां नित्यामनित्यां गुणवर्जिताम् ।
सगुणां निर्गुणां ध्येयामर्चितां सर्वसिद्धिदाम् ॥45॥
विद्यासिद्धि-प्रदां विद्यां महाविद्यां महेश्वरीम् ।
महेशभक्तां माहेशीं महाकाल-प्रपूजिताम् ॥46॥
प्रणमामि जगद्धात्रीं शुम्भासुरविमर्द्दिनीम् ।
रक्तप्रियां रक्तवर्णां रक्तविजय विमर्द्दिनीम् ॥47॥
भैरवीं भुवनां देवीं लोलजिह्वां सुरेश्वरीम् ।
चतुर्भुजां दशभुजामष्टादशभुजां शुभाम् ॥48॥
त्रिपुरेशीं विश्वनाथप्रियां विश्वेश्वरीं प्रियाम् ।
अट्टहासामट्टहास प्रियां धूम्रविनाशिनीम् ॥49॥
कमलां छिन्नभालाञ्च मातङ्गीं सुरसुन्दरीम् ।
षोडशीं त्रिपुरां भीमां धूमाञ्च बगलामुखीम् ॥50॥
सर्वसिद्धि-प्रदां सर्वविद्या-मन्त्र-विशोधिनीम् ।
प्रणमामि जगत्तारां साराञ्च मन्त्रसिद्धये ॥51॥
इत्येवञ्च वरारोहे ! स्तोत्रं सिद्धिकरं परम् ।
पठित्वा मोक्षमाप्नोति सत्यं वै गिरिनन्दिनि ! ॥52॥
कुजवारे चतुर्दश्याममायां जीव-वासरे ।
शुक्रे निशागते स्तोत्रं पठित्वा मोक्षमाप्नुयात् ॥53॥

त्रिपक्षे मन्त्रसिद्धिः स्यात् स्तोत्रपाठाद्धि शङ्करि ! ।
चतुर्दश्यां निशाभागे निशि भौमेऽष्टमीदिने ॥54॥
यः स्तोत्रं पठते देवि ! मन्त्रसिद्धिमवाप्नुयात् ।
केवलं स्तोत्र-पाठाद्धि तन्त्रसिद्धिरनुत्तमा ॥55॥
जागर्त्ति सततं चण्डि ! स्तवपाठाद् भुजङ्गिनी ।
इत्येवञ्च श्रुतं स्तोत्रं कवचं शृणु शङ्करि ! ॥56॥
सदाशिव ऋषिर्देवि ! उष्णिक् छन्द उदीरितम् ।
विनियोगश्च देवेशि ! ततश्च मन्त्रसिद्धये ॥57॥
मस्तकं पार्वती पातु पातु पञ्चाननप्रिया ।
केशं मुखं पातु चण्डि ! भारती रुधिरप्रिया ॥58॥
कण्ठं पातु स्तनं पातु कपालं गण्डमेव हि ।
काली करालवदना विचित्रा चित्रघट्टिनी ॥59॥
वक्षोमूलं नाभिमूलं दुर्गा त्रिपुरसुन्दरी ।
दक्षहस्तं पातु तारा सर्वाणी सर्वमेव च ॥60॥
विश्वेश्वरी पृष्ठदेशं नेत्रं पातु महेश्वरी ।
नारायणी गुह्यदेशं मेढ्रं मेढ्रेश्वरी तथा ॥61॥
पादयुग्मं जया पातु सुन्दरी चाङ्गुलीः कुचम् ।
षट्पद्मवासिनी पातु सर्वं पद्मं निरन्तरम् ॥62॥
इड़ा च पिङ्गला पातु सुषुम्ना पातु सर्वदा ।
छिन्ना धूमा च भीमा च भये पातु जलेऽनले ॥63॥
कौमारी ! चैव ! वाराही ! नारसिंही यशो ! मम ।
पातु नित्यं भद्रकाली ! श्मशानालयवासिनी ॥64॥
उदरे सर्वदा पातु सर्वाणी सर्वमङ्गला ।
जगन्माता जयं पातु नित्यं कैलासवासिनी ॥65॥
शिवप्रिया सुतं पातु सुतां पर्वतनन्दिनी ।
त्रैलोक्यं पातु बगला भुवनं भुवनेश्वरी ॥66॥
सर्वाङ्गं सर्वनिलया पातु नित्यञ्च पार्वती ।
चामुण्डा पातु मे रोम-कूपं सर्वार्थसाधिनी ॥67॥
ब्रह्माण्डं मे महाविद्या पातु नित्यं मनोहरा ।
लिङ्गं लिङ्गेश्वरी पातु महापीठं महेश्वरी ॥68॥

सदाशिव-प्रिया पातु नित्यं पातु सुरेश्वरी।
गौरी मे सन्धिदेशञ्च पातु वै त्रिपुरेश्वरी ॥69॥
सुरेश्वरी सदा पातु श्मशाने च शवेऽवतु।
कुम्भके रेचके चैव पूरके काम-मन्दिरे।
कामाख्या कामनिलयं पातु दुर्गा सुरेश्वरी ॥70॥
डाकिनी काकिनी पातु नित्यं मे शाकिनी तथा।
हाकिनी लाकिनी पातु राकिणी पातु सर्वदा ॥71॥
ज्वालामुखी सदा पातु मुखमध्ये शिवाऽवतु।
तारिणी विभवे पातु भवानी च भवेऽवतु ॥72॥
त्रैलोक्यमोहिनी पातु सर्वाङ्गं विजयेऽवतु।
राजकुले महाद्युते संग्रामे शत्रुसङ्कटे ॥73॥
प्रचण्डा साधकं माञ्च पातु भैरवमोहिनी।
श्रीराजमोहिनी पातु राजद्वारे विपत्तिषु ॥74॥
सम्पत्-प्रदा भैरवी च पातु बाला बलं मम।
नित्यं मां शम्भु-वनिता पातु मां त्रिपुरान्तका ॥75॥
इत्येवं कथितं देवि! रहस्यं सर्वकालिकम्।
भक्तिदं मुक्तिदं सौख्यं सर्व-सम्पत्-प्रदायकम् ॥76॥
यः पठेत् प्रातरुत्थाय साधकेन्द्रो भवेद्भुवि।
कुजवारे चतुर्दश्याममायां मन्दवासरे।
यः पठेन्मानवो भक्त्या स याति शिव मन्दिरम् ॥77॥

इति श्रीमुण्डमालातन्त्रे हरपार्वती-संवादे
पञ्चदशः पटलः ॥15॥

षोडशः पटलः

श्रीदेव्युवाच —

अन्तर्यागविधिं ब्रूहि बहिर्यागविधिं प्रभो ! ।
सकलं कथयेशान ! यद्यहं तव वल्लभा ॥1॥

ईश्वर उवाच —

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि यजनं चान्तरा महत् ।
मूलादि-ब्रह्मरन्ध्रान्तं बिषतन्तु-तनीयसीम् ॥2॥
उद्यत्-सूर्यप्रभा-जाल-विद्युत्कोटिप्रभामयीम् ।
चन्द्रकोटिप्रभाभासां त्रैलोक्यैकप्रभामयीम् ॥3॥
अशेष-जगदुत्पत्ति-स्थिति-संहार-कारिणीम् ।
शेषे मनो यथा देवि ! निश्चलं जायते यथा ॥4॥
सहजानन्दसन्दोह-मन्दिरं भवति क्षणात् ।
मनो निश्चलतां प्राप्तं शिवशक्ति-प्रभावतः ॥5॥
समाधिर्जायते तत्र संज्ञाद्वय-विजृम्भितः ।
स्वयं-प्रज्ञातनामैको ह्यसंप्रज्ञातनामधृक् ॥6॥
स्वयंप्रज्ञात-संज्ञस्तु शिवाधिक्येन जायते ।
असंप्रज्ञातनामा तु शिवतत्त्वेन वै भवेत् ॥7॥
असंप्रज्ञात-भेदस्तु तीव्रस्तीव्रतमो भवेत् ।
असंप्रज्ञातभेदस्तु मन्दो मन्दतर स्तथा ।
हास्य-रोदन-रोमाञ्च-कम्प-स्वेदादि-लक्षितः ॥8॥
निमेषवर्जितनेत्र-वपुस्तल्लक्षणं शिवम् ।
मन्दो मन्दतरो देवि ! समाधिरूपलक्षितः ॥9॥
सम्भवेन च बोधेन सुखीभूयान्निरन्तरम् ।
अन्तर्यागविधिं कृत्वा बहिर्यजनमारभेत् ॥10॥
एवं धन्यस्तदेह स्यान्न सर्वेभ्योऽपि साधकः ।
ध्यायेन्निगमयं ब्रह्म जगत्त्रयविमोहिनीम् ॥11॥
अशेष व्यवहाराणां स्वामिनीं सम्विदां पराम् ।
उद्यत्सूर्यसहस्राभां दाड़िमकुसुमप्रभाम् ॥12॥

जवाकुसुमसङ्काशां पद्मरागसमप्रभाम् ।
तड़ितपुञ्जनिभां तप्तकाञ्चनाभां सुरेश्वरीम् ॥13॥
रक्तोत्पलदलाकार-पादपद्मपराजिताम् ।
अनर्घरत्नरचित-मञ्जीर-चरणद्वयाम् ॥14॥
पादाङ्गुलीयक-क्षिप्त-रत्नतेजोविराजिताम् ।
कदलीशशितप्रख्य कुमारोरुरू-कोमलाम् ॥15॥
नितम्बबिम्बविलसद्रक्त-वस्त्रोपरिस्थिताम् ।
मेखलारत्नमाणिक्य-किङ्किणीनाद-विभ्रमाम् ॥16॥
अलक्ष्यविध्यमां निर्ममाप्तं शतोदराम् ।
रोमराजिलताभूत-महाकुचफलान्विताम् ॥17॥
स्ववृत्तनिबिड़ोत्तुङ्ग-कुचमण्डलराजिताम् ।
अनर्घमौक्तिक-स्फार-हारतार-विराजिताम् ॥18॥
नवरत्न-प्रभाराज-ग्रैवाशाङ्गदभूषणाम् ।
श्रुतिभूषामनोरम्य-नूपुरस्थलमण्डिताम् ॥19॥
उद्यदादित्य-सङ्काश-ताड़ङ्क-कुसुमप्रभाम् ।
पूर्णचन्द्रमुखीं पद्मवदनां नीललोचनाम् ॥20॥
स्फुरन्मदन-कोदण्ड-सुप्रसन्न-पयोधराम् ।
ललाटपट्टसंराजत्-सद्रत्नतिलकान्विताम् ॥21॥
मुक्तामाणिक्यघटित-मुकुटस्थलकिङ्किणीम् ।
स्फुरच्चन्द्रकलाराजन्मुकुटां लोचनत्रयाम् ॥22॥
प्रवालवल्लीविलसद्बाहुवल्ली-चतुष्टयाम् ।
इक्षु-कोदण्ड-पुष्पेषु-पाशाङ्कुश-चतुर्भुजाम् ॥23॥
सर्वदेवमयीमयं सर्वसौभाग्य-सुन्दरीम् ।
सर्वतीर्थमयीं दिव्यां सर्वकाम-प्रपूरिणीम् ॥24॥
सर्वक्षेत्रमयीं विश्ववद्यां विद्यामयीं शिवाम् ।
सर्वयोगमयीं सर्वदेवीं देव-स्वरूपिणीम् ॥25॥
सर्वशास्त्रमयीं नित्यां सर्वागम-नमस्कृताम् ।
सर्वाम्नायमयीं देवीं सर्वायतनसेविताम् ॥26॥
सर्वानन्दमयीं ज्ञानगन्धर्वा सम्विदां पराम् ।
एवं ध्यात्वा परेमेयां वहन्नाड़ीपुटक्रमात् ॥27॥

आवाह्य चक्रमध्ये तु मुद्रया हि त्रिखण्डया ।
संस्थितां चिन्तयेत्तत्र श्रीपीठान्तर्निवासिनीम् ॥28॥
मुद्राः सन्दर्शयेद्देवि ! तर्पणैस्तु त्रिधा यजेत् ।
न यागं कल्पयेद्देहे देव्यास्तु परमेश्वरि ! ॥29॥
गन्धपुष्पाक्षतादीनि देव्यै सम्यङ् निवेदयेत् ।
उपचारैः षोडशाभिः संपूज्य परदेवताम् ॥30॥
तर्पणादि पुनर्दत्त्वा त्रिवारं मूलविद्यया ।
एतस्मिन् समये देवि ! तिथि-नित्यां प्रपूजयेत् ।
कामेश्वर्यादिका नित्या विचित्रान्ता महेश्वरि ! ॥31॥
प्रतिपत्पौर्णमास्यन्त-तिथिरूपां प्रपूजयेत् ।
वैभव्यै च महाश्रातां (?) दक्ष-पूर्वोत्तर-क्रमात् ॥32॥
रेखाश्च विलिखेद् देवि ! तत्र पञ्चक्रमेण हि ।
अकारादिं डकारान्तं दक्षिणायां विचिन्तयेत् ॥33॥
ततश्च पूर्वरेखायां दीर्घकर्णादि-पञ्चकम् ।
विलिख्योत्तररेखायां शकत्यादि विलिखेत् ततः ॥34॥
अनुस्वारन्तमात्रैव विसर्गे षोडशीं यजेत् ।
वामावर्त्तेन देवेशि ! नित्याः षोडश कीर्त्तिताः ॥35॥
प्रतिपत्तिथिमारभ्य पौर्णमास्यन्तमद्रिजे ! ।
एकैकां पूजयेन्नित्यां महासौभाग्यमाप्नुयात् ॥36॥
कृष्णपक्षे महेशानि ! पूजयेत् तिथि-मण्डलम् ।
विचित्राद्या वरारोहे ! यावत् कामेश्वरी भवेत् ॥37॥
पूजनीया विलोमेन चान्या तु परमेश्वरी ।
कला षोडश देवेशि ! यस्तु चन्द्रकलाः क्रमात् ॥38॥
स सौभाग्यं महद् देवि ! प्राप्नोति गुरुशासनात् ।
कामेश्वर्यादिका सेया पूजयित्वा क्रमात्ततः ॥39॥
तिथिनित्या त्रिधा देवि ! पूजयेद् भाग्यहेतवे ।
एतस्मिन् समये देवि ! गुरुन् संपूजयेत्ततः ॥40॥
गुरुः संकोचयोगेन कथयामि तवानघे ! ।
राशिवृन्दं दशमितं गुरूणाञ्च शताधिकम् ॥41॥

तस्मात् संकोचयेन् पुष्पमागताः सिद्धिहानिदाः ।
नष्टसन्ततिर्विज्ञेया सिनाश्च सर्वसिद्धिदाः ॥42॥
पुष्पं संकोचयित्वा च द्वादशे नष्ट-सन्ततिः ।
सम्भव्यानन्तरूपः स इतरो देवता-प्रियः ॥43॥
अतएव महापुष्पं सम्यक् संकोचितं प्रिये ! ।
काम राजाख्यविद्याया गुरवस्तु समृद्धिदाः ॥44॥
मध्यप्राक्त्र्यस्त्र्य-मध्ये (?) तु गुरुशक्तिस्त्रिधेत्यपि ।
पराख्यान् पूजयेदादौ परापर-विभक्तिकान् ॥45॥
ततो परान् त्रिधा देवि ! गुरून् संपूजयेन् प्रिये ! ।
दिव्यौघे तु परान् सिद्धि-सप्तसंख्यान् वरानने ! ॥46॥
आनन्दनाथ-शब्दान्तो विज्ञेयो वीरवन्दिते ! ।
परप्रकाशो देवेशि ! ततः परः शिवोत्तमः ॥47॥
शिवशक्तिस्तथा देवी कौलेश्वर इति प्रिये ! ।
गुह्यदेवी-कुलेशानः कामेश्वर्यम्बिकाक्रमात् ॥48॥
मुनिसंख्या तु गुरवः पराख्याः दिव्यरूपिणः ।
भोगः क्रीडस्तु समयो वेदास्तु सहजस्तथा ॥49॥
परापरोक्षः सिद्धौघ-मानवौद्यं शृणु प्रिये ! ।
सगणो विश्वविमलौ मदनो भुवनस्तथा ॥50॥
नीलः स्वात्मप्रियोपन्ना नागसंख्यास्तु मानवाः ।
अपराः परमेशानि ! नियता अक्षया इमे ॥51॥
एतत् त्रयन्तु नियतं देशिकानां हिताय च ।
मयोक्तरूपकृत्यानि पुष्पं संकोचितं प्रिये ! ॥52॥
मानवौद्यान्तिके पश्चात् स्वगुरुत्रितयं यजेत् ।
परमेष्ठी गुरुः पश्चात् गुरुः परमसंज्ञकः ॥53॥
श्रीगुरुश्च महेशानि ! पूजयेत् तु गुरुत्रयम् ।
अथवा मानवौघान्ते एकं स्वगुरुमर्चयेत् ॥54॥
अयं प्रकारः कथितः प्रकारान्तर मुच्यते ।
वन्द्यं सर्वप्रकाराणां मानवौघाष्टकादयः (?) ।
गुरवो नवसंख्यका इह संख्या भवन्ति हि ॥55॥

नवचक्रेश्वरी यस्मात् तावत् पुष्पं प्रकाशयेत् ।
मानवौघे तदा देवि ! दशसप्तत्यनेन च (?) ॥56॥
पश्चात् संकोचयेत् पुष्पं नवमं श्रीगुरुं यजेत् ।
आज्ञातगुरुशिष्याणां कथयामि वरानने ! ॥57॥
गुरुभ्यो नम उच्चार्य पादुका नाम उल्लिखेत् ।
पूर्वान्तमपरान्ते च गुरुभ्यो नम इत्यपि ॥58॥
एतेषां पादुकास्तद्वदाचार्येभ्यो नमो भवेत् ।
आचार्यपादुका यद्वत् पूर्वसिद्धास्तथा द्विधा ॥59॥
सामान्य-गुरुशिष्याणां गुरुपङ्क्तिरियं भवेत् ।
गुरुपङ्क्तिं प्रपूज्याथ स्वयं श्रीत्रिपुरा भवेत् ॥60॥
गुरुपङ्क्ति-विहीनस्तु पुरुषः पंक्ति-वर्जितः ।
सामान्यगुरुपङ्क्त्या तु न भवेत् पङ्क्ति-वर्जितः ॥61॥
पुष्पसंकोचमार्गोऽयमसिद्धश्च कृतः प्रिये ! ।
कृपया परमेशानि ! मानवानां हिताय च ॥62॥
कामराजाक्षिगुरवः श्रीविद्या-विषये क्रमात् ।
लोपामुद्रास्तु देवेशि ! गुरुं शृणु वरानने ! ॥63॥
परमादि-शिवश्चाद्यः कामेश्वर्यम्बिका तथा ।
दिव्यौघश्च महौघश्च सर्वानन्दस्ततः परः ॥64॥
प्रज्ञादेव ......के पश्चात् प्रकाशः सप्तमो भवेत् ।
दिव्याः पराश्च गुरवो लोपामुद्रा प्रभामया ॥65॥
दिव्याः प्रियश्च कैवल्य देव्यम्बा च महोदया ।
सिद्धाः परापरा ज्ञेया मानवौघं शृणु प्रिये ! ॥66॥
ऋद्धिः शक्तिः सर्वकश्च चतुर्थो कमलो भवेत् ।
पञ्चमस्तु परानन्दो मनोहर इति प्रिये ! ॥67॥
प्रत्यानन्दः सप्तमस्तु अष्टमो शिव उच्यते ।
अपराख्या इमे देवि ! गुरवः परिकीर्त्तिताः ॥68॥
पूर्ववत् योजयेत् पश्चात् सप्ताहा (?) परमेश्वरी ।
त्रयं वात्मगुरुं वापि नवान्त आत्मलोचने (?) ॥69॥
दक्षिणामूर्त्ति-शिष्याणां गुरुक्रम-उदाहृतः ।
संप्रदायविहीनस्य न दद्यात् पङ्क्तिमुत्तमाम् ॥70॥

साधारणाम्नु गुरवः सर्वभोगप्रदायकाः ।
गुरुक्रमं प्रपूज्याथ यजेदाम्नायदेवताः ॥71॥
त्रैलोक्य मोहने चक्रे सर्वाशापरिपूरके ।
सर्वसौभाग्यदे चक्रे तथा सर्वार्थ-साधके ॥72॥
सर्वरक्षाकरे चक्रे दक्षिणाम्नाय पूज्य च (?) ।
मध्यचक्रमये देवि ! पश्चिमाम्नायमर्चयेत् ॥73॥
नवचक्रेषु देवेशि ! पश्चिमाम्नायमर्चयेत ॥
वैन्दवे परमेशानि ! मध्ये सिंहासनं यजेत् ॥74॥
श्रीविद्या च तथा लक्ष्मीः सर्वलक्ष्मीस्तथैव च ।
त्रिशक्तिः सर्वसाम्राज्यलक्ष्मीः पञ्च प्रकीर्त्तिता ॥75॥

इति श्रीमुण्डमालातन्त्रे हरपार्वती-संवादे
षोडशः पटलः ॥16॥
(एतावत्येव मातृका असम्पूर्णेति प्रतिभाति ।)

सप्तदशः पटलः

श्रीविद्यां च परं ज्योतिः परं निक्षेपशाम्भवी ।
अजपा मातृका चेति पञ्च कोपाः प्रकीर्त्तिताः ॥1॥
श्रीविद्या त्वरिता चैव धनं ज्ञानेश्वरी तथा ।
त्रिपुटा पञ्च बाणेशी पञ्च कल्पलताः स्मृताः ॥2॥
श्रीविद्यामृत-पाञ्चेशी सुधा श्रीरमृतेश्वरी ।
अन्नपूर्णेति विख्याता पञ्च कामदुघाः स्मृताः ॥3॥
श्रीविद्या सिद्धलक्ष्मी च मातङ्गी भुवनेश्वरी ।
वाराहीति च संप्रोक्ताः पञ्चवत् भावकीर्त्तिताः ॥4॥
श्रीविद्या-पूजन-स्थाने चक्रराज-महेश्वरि ! ।
महाकोपेश्वरीवृन्द-मण्डितासन-संस्थिता ॥5॥
सर्वसौभाग्य-जननी-पादुकां पूजयामि च ।
इत्युच्चार्य परं ज्योति-कोपान्तं पूजयेत् सुधीः ॥6॥
अनेनैव प्रकारेण पूजयेत् पञ्च पञ्चिकाम् ।
सौवर्ण-दर्शनं देवि ! वैन्दवैः पूजयेत् प्रिये ! ॥7॥
परितो दर्शनं शाक्तं चक्रस्य परमेश्वरि ! ।
ब्राह्मन्तु दर्शनं प्रोक्तं भूविम्बे प्रथमं प्रिये ! ॥8॥
शिवस्य वामतो देवि ! वैष्णवी-दर्शनं यजेत् ।
सृष्टिचक्रे भवेत् सूर्यदर्शनं कमलेक्षणे ! ।
स्थितिचक्रे तु संपूज्यं रौद्रं दर्शनमुत्तमम् ॥9॥
एवं संपूज्य सकलं श्रीविद्यां परितो यजेत् ।
तर्पणानि पुनर्दद्यात् त्रिवारं तत्त्वमुद्रया ॥10॥
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यान्तु तत्त्वमुद्रा समीरिता ।
पुष्पं समर्पयेद्देवि ! मुद्रया ज्ञानसंज्ञया ॥11॥
अङ्गुष्ठतर्जनी-योगो ज्ञानमुद्रा प्रकीर्त्तिता ।
सर्वोपचारैराराध्य मुद्राः सन्दर्शयेत् क्रमात् ॥12॥
तथाङ्गावरणं कुर्यात् श्रीविद्या-मन्त्रसम्भवम् ।
अग्नीशासुरवायव्यमध्य-दिक्ष्वङ्गपूजनम् ॥13॥

यात्रा लक्ष्मीमयं बीज-युग्मं पूर्वक्रमेण तु ।
कथितं योजयेद् देवि ! त्रयं वा परमेश्वरि ! ॥14॥
संपुट-क्रमयोगेन चान्यथा सुखन्दिते ! ।
संयोज्य पूजयेत् सर्वाः क्रमाद्देवीवरानने ! ॥15॥
त्रैलोक्यमोहने चक्रे प्रकटायोगिनीर्यजेत् ।
आत्मशुद्धिं देवशुद्धिं पीठशुद्ध्यादि भैरव ! ॥16॥
कृत्वा चार्घ्यं ततो विद्यां कुर्यात् कुलविचेष्टिताम् ।
दीक्षिताभिः सुशीलाभिर्युवतीभिः कुलात्मभिः ॥17॥
देवतागुरुभक्ताभिः सञ्चितं यागभूमिषु ।
नानाविधानि पुष्पाणि गन्धानि विविधानि च ।
कर्पूर-जाति-धूपादि-वासित-पट्-सुवासितम् ॥18॥
ताम्बूलं देयद्रव्यञ्च धूपदीपादिकञ्च यत् ।
सर्वालङ्कारभूषाभिर्भूषितः कौलिकस्तथा ॥19॥
मूलविद्या-जप्त-तोयैः प्रोक्षितं स्थापयेत्ततः ।
सर्व स्वदक्षिणे स्थाप्य वामे चार्घ्यं निवेशयेत् ॥20॥
पश्चिमे देवतायश्च कुलद्रव्याणि साधयेत् ।
कुण्ड-गोलेद्भवैर्द्रव्यैः स्वयम्भूकुसुमेन च ॥21॥
रोचना-लाक्षया रक्तैः कुङ्कुमारक्तचन्दनैः ।
यन्त्रं कृत्वा तत्र पूजां कृत्वा च जपमारभेत् ॥22॥
यथाशक्ति मनुं जप्त्वा स्तुत्वा देवीं विसर्जयेत् ।
तास्ताः प्रदक्षिणीकृत्य निजा वाप्यन्ययोषितः ॥23॥
कुलामृतरसं पूर्ण गुरवे विनिवेद्य च ।
योषिद्भ्यस्तु अशेषन्तु आत्मन्येव निवेदयेत् ॥24॥
ब्रह्मरन्ध्रे गुरुस्थाने यन्त्रलेपन्तु धारयेत् ।
नास्तिकेभ्यो न पशुभ्यो नाभक्तेभ्यो न वाहद्विजे ॥25॥
कुलीनाय च दातव्यमथवा जलमध्यतः ।
चौरवह्निर्हरेदेकः सदा सङ्ग-विवर्जितः ॥26॥
याममात्रं गते रात्रौ कुलगेहं गतः पुमान् ।
प्रसून-कालिका-मध्ये स्थित्वा कुल-परायणः ॥27॥

मूलमन्त्रं-साध्यनाम-संयुक्तं कुलचक्रके।
अनामाद्यङ्कितं कृत्वा कुलाचारं समाचरेत् ॥28॥
स्वशक्तिं परशक्तिञ्च समानयति साधकः।
परशक्त्याकर्षणञ्च शृणु वत्स! समाहितः ॥29॥
निजकान्तां समानीय सुशीलां सुयशस्विनीम्।
कुलभक्तां गुरुं प्राप्य साधयेत् कुलदीक्षया ॥30॥
परानन्द-रसोद्घूर्ण-लोचनां कुलजां सतीम्।
ताम्बूल-पूरपूर्णास्यो गुरुवक्षोऽञ्चितः सुधीः ॥31॥
निजपुत्रवदाचर्य तद्-भालपत्रके लिखेत्।
शक्तिचक्रं त्रिधावृत्य लिखेत् कामकला ततः ॥32॥
तन्मध्ये देवमन्त्रेण दर्भितं नाम-रञ्जितम्।
तत्र देवीं समावाह्य ध्यात्वा तत्र प्रपूज्य च ॥33॥
ततस्तत्पुत्रिका-कर्णे ऋषिश्छन्दः समीरितः।
मूलमन्त्रं त्रिधा कृत्वा कथयेद्वामकर्णके ॥34॥
अद्य प्रभृति पुत्री त्वं कुलपूजार्चने रता।
स्वकुलाङ्गी समादाय लज्जालस्य-विवर्जिता ॥35॥
यथोपदिष्ट-विधिना नावश्यं समानय (?)।
इत्यनुज्ञां गुरोर्लब्ध्वा प्रणमेद् दण्डवद्भुवि ॥36॥
त्राहि नाथ! कुलाचारे पद्मिनी-पद्मनायक!।
तत्पदाम्भोरुहच्छायां मूर्ध्नि देहि यशोधन! ॥37॥
गुरवे दक्षिणां दत्त्वा ताम्बूलारुणलोचना।
स्वकुलं परमीकृत्य यथोद्दिष्टं समाचरेत् ॥38॥
अङ्गावरण-पूजादौ यदि न कुत्र ते कुलम्।
तदा मूर्ध्नि गुरुं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं निराकुलम् ॥

इति श्रीमुण्डमालातन्त्रे हरपार्वती-संवादे
सप्तदशः पटलः ॥17॥

अष्टादशः पटलः

श्रीशिव उवाच —

अथ तद्रात्रि-समये कुसुमं कन्यिकोपरि ।
वामभागे समासीनां रक्त-वस्त्र-विभूषिताम् ॥1॥
स्वर्णालङ्कारभूषाङ्गीं रक्त-गन्ध-विभूषिताम् ।
गन्धपुष्पधूपदीप-वेष्टितां सुमनोहराम् ॥2॥
सर्वशृङ्गारवेषाढ्यां स्फुरच्चञ्चललोचनाम् ।
जितामृतकलचन्द्र-विशालकरिकुम्भकम् ॥3॥
ललाटे मन्त्रमालिख्य साधनामविदर्भितम् ।
हृद्पद्मे भावमादाय कुलाचलचलाधृतः ॥4॥
ताम्बूलपूरितमुखः कुलं तदभिशङ्कितम् ।
कुलाकुलं जपं कृत्वा समानयति तत्क्षणात् ॥5॥
यन्नाम्ना लिखितं यन्त्रं तं चागयति तत्क्षणात् ।
शतयोजन-विस्तीर्णा नदीपर्वतमध्यगाम् ॥6॥
दीपान्तर-सहस्रेषु रक्षितां निगडादिभिः ।
पयोधर-स्फुरच्चारु-मध्यमां लोललोचनाम् ॥7॥
नितम्बबिम्बविन्दुसृक्-स्फुरज्जघन-मण्डलाम् ।
साधकाकाङ्क्षहृदयां विवरान्तं प्रसर्पिणीम ॥8॥
कवाटलोह-सन्मस्र कायरित्वा वरान्तरे ।
साधकान्त-समासीनां देवतामिव चारिणीम् ॥9॥
एवमाद्यस्तु सिद्धिश्चेत् साधकः कौलिको भवेत् ।
दीक्षिता न च योषा चेत् कथं स्यात् कुलपूजकः ॥10॥
कुलपूजा न चेद्वत्स ! कुलमन्त्राः पराङ्मुखाः ।
अन्ययोषा सदा वत्स स्वयं तस्या गुरुर्भवेत ॥11॥
ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा च कुलभूषणा ।
वैश्या नापितकन्या च रजकी योगिनी तथा ॥12॥
विशेषवैदग्ध्ययुताः सर्वा एवं कुलाङ्गनाः ।
चतुष्पथे वा नद्या वा तटमूले त्रिशूलके ॥13॥

बिल्वमूलौ प्रेतभूमौ हट्टे वा राजवेश्मनि।
सिन्दूरेण लिखेन्मन्त्रं विपुलं साध्यदर्भितम् ॥14॥
तत्र संपूज्य विधिवत् कुलं कुलरसेन च।
तर्पयित्वा तदन्तस्थः प्रजपेन्निशि चापरः ॥15॥
ततो लक्षप्रमाणेन सिद्धिदाता भवन्ति हि।
पुरश्चरणकाले तु परयोषां प्रपूज्य च ॥16॥
दीक्षितां वस्त्रपुष्पाद्यैरन्नाद्यैः पायससम्भवैः।
आरम्भकाले नियतं स्वयं पक्वान्नतेऽमलम् ॥17॥
नानविधं पिष्टकञ्च नानारस-समन्वितम्।
दुग्धं दधि घृतं तक्रं नवनीतं सशर्करम् ॥18॥
उपलाखण्डचूर्णञ्च नानाविध-रसायनम्।
नारिकेलं कपित्थञ्च नागरङ्गं सुदर्शनम् ॥19॥
निष्पाकं बीजपूरञ्च दाड़िमीबीजमुत्तमम्।
नानारण्य फलञ्चैव नानागन्ध-विलेपनम् ॥20॥
चन्दनञ्चार्ककुसुमं श्रीखण्डं सुरपादपम्।
तङ्कनञ्चैव कस्तूरी नानागन्ध-विलेपनम् ॥21॥
नानाशैल-समुद्भूतं नानालङ्कार-भूषितम्।
शून्यगेहे समानीय चार्घोदक-विशोधितम् ॥22॥
अमृतीकरणं कृत्वा शक्तिरभिमुखं नयेत्।
अष्टकन्यारूप-भावं विलोक्य मध्यचेष्टितम् ॥23॥
ब्रह्माण्याद्यष्टशक्तीनां नामभिः कृतसंज्ञया।
आसनं प्रथमं दद्यात् स्वागतञ्च पुनः पुनः ॥24॥
अर्घ्यं पाद्यञ्च पानीयं मधुपर्क-जलं ततः।
स्नापयेद् गन्धपुष्पाद्भिः केशसंस्कारमेव च ॥25॥
धूपयित्वा ततः केशान् कौपेयञ्च ततः परम्।
ततः स्थानान्तरे पीठे आस्तीर्य पादुकायुगम् ॥26॥
दत्त्वा तत्र समासीनं नानालङ्कार भूषणैः।
भूष ....पञ्च गन्धं माल्यं निवेदयेत् ॥27॥
तां यां शक्तिं समाराध्यं मूर्ध्नि तासां निवेदयेत्।
सूर्यमण्डलमध्ये च स्वर्णपाणि-सुशोभने ! ॥28॥

चर्व्व्यं चोष्यं लेह्यं पेयं भोज्यं भक्ष्यं निवेदयेत्।
अदीक्षिताश्च याम्नत्र ततो मायां निवेदयेत् ॥29॥
तासां सव्येषु कर्णेषु ततः स्तोत्रं समाचरेत्।
मातर्देवि ! नमस्तेऽस्तु ब्रह्मरूपधरेऽनघे ॥30॥
कृपया हर मे विघ्नं सर्वसिद्धिं प्रयच्छ मे।
माहेशि ! वरदे ! देवि ! परमानन्दकारिणी ! ॥31॥
कृपया हर मे विघ्नं सर्वसिद्धं प्रयच्छ मे।
कौमारी सर्वविद्येशि ! कौमार-क्रीडनेऽनघे ॥32॥
कृपया हर मे विघ्नं सर्वसिद्धिं प्रयच्छ मे।
विष्णुरूपधरे ! देवि ! विनता-सुत-वाहिनी ॥33॥
कृपया हर मे विघ्नं सर्वसिद्धिं प्रयच्छ मे।
वाराहि ! वरदे ! देवि ! दंष्ट्रोद्धृत-वसुन्धरे ! ॥34॥
कृपया हर मे विघ्नं सर्वसिद्धिञ्च देहि मे।
कारूपधरे ! देवि ! शक्त्यादि सुर-पूजिते ! ॥35॥
कृपया हर मे विघ्नं सर्वसिद्धिञ्च देहि मे।
चामुण्डे ! मुण्डमालासृक्-चार्वङ्गि ! विघ्ननाशिनि ! ॥36॥
कृपया हर मे विघ्नं सर्वसिद्धिञ्च देहि मे।
महालक्ष्मि ! महामोहे ! क्षोभसन्तापहारिणि ! ॥37॥
कृपया हर मे विघ्नं सर्वसिद्धिञ्च देहि मे।
मिति-मातृमये ! देवि ! मितिमातृ-बहिष्कृते ! ॥38॥
एके बहुविधे ! देवि ! दिव्यरूपे नमोऽस्तु ते।
एतत् स्तोत्रं पठेद् यस्तु कर्मारम्भेषु संयतः ॥39॥
विघ्नश्चैव समालोक्य तस्य विघ्नं न जायते।
कुलीनस्य द्वारपालाः कथिताः पुरतस्तव ॥40॥
दीक्षाकाले नित्यपूजा समयेनार्चयेद् यदि।
तस्य पूजाफलं सर्वं नीयते यक्ष-राक्षसैः ॥41॥
यदि व्रीडायुतास्तास्तु भोजयेत् तु गृहाद्बहिः।
स्थितः स्तोत्रं पठेत्तावद् यावद्दृष्टिः प्रजायते ॥42॥
आचम्य मुखवासादि-ताम्बूलञ्च निवेदयेत्।
ततो दद्यात् पुनर्माल्यं गन्ध-चन्दन चर्चितम् ॥43॥

विसृज्य दक्षिणां कृत्य वरं प्रार्थ्य सुखी भवेत् ।
अन्या यदि न गच्छन्ति निजकन्या निजानुजा ॥44॥
अग्रजा मातुलानी वा माता वा तत्-सपत्नीका ।
वकसो जातितो वापि हीनापि परमा कला ॥45॥
पूज्या कुलरसैः सर्वैर्निजाहङ्कारवर्जितैः ।
सर्वभावे एकतरा पूजनीया प्रयत्नतः ॥46॥
संस्कृता संस्कृता वापि जननी वापि निष्पतिः ।
पूर्वाभावे परा पूज्या मदंशा योषितो यतः ॥47॥
एकश्चेत् कुलशास्त्रज्ञः पूजाशस्तश्च भैरव ! ।
सर्व एव सुराः पूज्या ब्रह्म-विष्णु-शिवादयः ॥48॥
एका चेद् युवती तत्र पूजिता चावलोकिता ।
सर्वा एव परा देव्यः पूजिताः कुलभैरवः ॥49॥
आदावन्ते च मध्ये च लक्षपूर्णे विशेषतः ।
न पूजयति चेत् कान्तां तदा विघ्नैर्विलिप्यते ॥50॥
पूर्वार्जितं फलं नास्ति का कथा परजन्मनि ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन यदिच्छेदात्मनो हितम् ॥51॥
ममापि स्फोर-सन्तापशमनं विघ्ननाशनम् ।
यत्नतः पूजनीयास्त्यः (?) कुलाकुलजनां सुतः ॥52॥
प्रातरुत्थाय पूजायां स्नानकालेऽथवा पुनः ।
संस्कृताऽसंस्कृतावापि हीनजातापि वा सुतः ॥53॥
नमस्याः सर्वजातीनां कुलीनानां कुलार्चने ।
पुरश्चरणकाले तु यदि स्यात् पीठदर्शनम् ॥54॥
तदा तत्र पीठपूजा मनसापि न हीयते ।
देवीकूटे महाभासे उड्डीयाने च भैरवाः ॥55॥
योगनिद्रां कामरूपे महिषासुरमर्द्दिनीम् ।
कात्यायनीं कामभूमौ कामाख्यां कामदायिनीम् ॥56॥
जालन्धरे च पूर्णेशीं पूर्णशैले च चण्डिकाम् ।
कामरूपे ततो देवीं पूज्या दिक्करवासिनीम् ॥57॥
ईश्वरीं कामरूपस्य दर्शनं यदि भाग्यतः ।
तदा भगादि देवीनां पूजा तत्र विधीयते ॥58॥

कुलनाथं पुनर्ध्यात्वा स्वयमच्युत-मानसः ।
शेषं समापयेद् वत्स ! तदनु-स्मृतिपूर्वकम् ॥59॥
पूजाकाले हीनजाता स्वयोषिद्वा प्रयत्नतः ।
पूजनीया प्रयत्नेन द्वैधं तत्र विवर्जयेत् ॥60॥
यथा विष्णुः परं गोप्ता यथा वा शम्भुरीश्वरः ।
यथा कमलजन्मापि ये वा व्यासमुखा द्विजाः ॥61॥
इन्द्राद्या लोक पालाश्च सर्वे गन्धर्वकिन्नराः ।
यक्षरक्षः-पिशाचाद्या गुह्य-चारणवारणाः ॥62॥
तैर्यथा गोपितं गोप्यं तदुक्तं शास्त्रसम्भवम् ।
तथा त्वमेव गोप्तव्यं कुलाचारः सुदुर्लभः ॥63॥

इति श्रीमुण्डमालातन्त्रे हरपार्वती-संवादे
अष्टादशः पटलः ॥18॥

ऊनविंशतिः पटलः

शृणु प्रिये ! रहस्यं मे समयाचार-सम्भवम् ।
येन हीना न सिध्यन्ति जन्म-कोटि-सहस्रशः ॥1॥
मनवः कुलशास्त्राणां कुलचर्यानुसारिणाम् ।
उदारचित्तः सर्वत्र वैष्णवाचार-तत्परः ॥2॥
परनिन्दा-सहिष्णुः स्यादुपकाररतः सदा ।
पर्वते विपिने चैव निर्जने शून्यमण्डपे ॥3॥
चतुष्पथे तोयमध्ये यदि दैवाजातिर्भवेत् ।
क्षणं ध्यात्वा मन्त्रं जप्त्वा नत्वा गच्छेद् यथासुखम् ॥4॥
यन्त्रं वीक्ष्य महाकालीं नमस्कुर्यादलक्षितः ।
क्षेमङ्करीं तथा वीक्ष्य जम्बुकीं यमदूतिकाम् ॥5॥
कुररीं श्येन-भृकाकौ कृष्ण-मार्जारमेव च ।
पूर्णोदरि ! महाचण्डे ! मुक्तकेशि ! बलिप्रिये ! ॥6॥
कुलाचार-प्रसन्नास्ये नमस्ते शङ्कर-प्रिये ।
श्मशानाञ्च शवं दृष्ट्वा प्रदक्षिणमनुव्रजन् ॥7॥
प्रणम्यानेन मन्त्रेण मन्त्री सुखमवाप्नुयात् ।
घोर-दंष्ट्रे ! करोराक्षि ! किरीटशब्द-नादिनि ॥8॥
घोरा घोरतरा काले नमस्ते चिति-वाहिनी ।
रक्तवस्त्रां रक्तपुष्पां विलोक्य त्रिपुराम्बिकाम् ॥9॥
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ इमं मन्त्रं समुच्चरन् ।
बन्धुक-पुष्प-सङ्काशे ! त्रिपुरे ! भ्रमनाशिनि ! ॥10॥
भाग्योदय-समुत्पन्ने नमस्ते वरवर्णिनि ! ।
कृष्णवर्णं कृष्णपुष्पं राजानं राजपुत्रकम् ॥11॥
हस्त्यश्व-रथ-शस्त्राणि फलकं वीरपुरुषम् ।
महिषं कुलदेवञ्च दृष्ट्वा महिष-मर्द्दिनीम् ॥12॥
प्रणम्य जयदुर्गाम्वा .... स भुविर्न तु लिप्यते ।
जयदेवि ! जगद्धात्रि ! त्रिपुराद्ये ! त्रिदैवते ! ॥13॥

भक्तेभ्यो वरदे ! देवि ! महिषघ्नि ! नमोऽस्तु ते ।
मद्यभाण्डं समालोक्य मत्स्यं मांसं नवस्त्रियम् ॥14॥
दृष्ट्वाधार-भैरवीं देवीं प्रणम्य विमृषेन्मनुम् ।
घोर-विघ्न-विनाशाय कुलाचार-समृद्धये ॥15॥
नमामि वरदे ! देवि ! मुण्डमाला-विभूषिते ! ।
रक्ताधार-समाकीर्ण-वदने त्वां नमाम्यहम् ॥16॥
सर्वविघ्नहरे ! देवि ! नमस्ते हरवल्लभे ! ।
एतेषां दर्शनेनैव यदि नैवं प्रकुर्वते ॥17॥
शक्तिमन्त्रं पुरस्कृत्य तस्य सिद्धिर्न जायते ।
एतेषां मारणोच्चाट-हिंसनं-वाग्भवादिभिः ॥18॥
क्रियते यदि पापात्मा मद्भक्ताः स कथं भवेत् ।
प्रधानांश-समुद्भूता एते कुलजनाः प्रियाः ॥19॥
डाकिन्या च तथा सर्वा मदंशाः शृणु भैरव ! ।
.....लम्बा सिद्धि डाकिनी हिंसनं यदि ।
अथवा मानवानाञ्च मद्भक्तानां विशेषतः ॥20॥
बटुकानां भैरवाणां तस्य सिद्धिर्न जायते ।
ग्रामे वा नगरे वापि हट्टे वा चत्वेऽपि वा ॥21॥
यं दृष्ट्वा युवती नारी पूर्वदोष-विवर्जिता ।
भावेन भिन्न-हृदया बन्धुं दृष्ट्वा विलोकिता ॥22॥
दृष्ट्वा मधुकर श्रेणी यथा मधु-मदाकुला ।
पतत्यविरतं पद्मे यथा वायु तलोत्तपा ॥23॥
चकोरी मेघमासाद्य सोत्सुका चातक-प्रिया ।
नवप्रसृतिर्धेनुर्वा यथा वत्सानुबन्धिनी ॥24॥
नूतन-तृणजातेन यथा वा हरिणाङ्गना ।
क्रव्यादो मांसमासाद्य हर्षार्त्ता तोय-दर्शनात् ॥25॥
मृणाल-दर्शनाद्ध्वंसी मधुलोभात् पिपीलिका ।
चञ्चला निजवंशा सा भावना मूढ़चेतना ॥26॥
उत्क्षिप्य भुजमूलस्य वसनं क्षिप्यते पुनः ।
चेलाञ्चल-परीवर्त्त-दर्शिता जघनाकुला ॥27॥

कण्डूलभाव-व्याजाच्च शिथिलीकृत-वाससा ।
दर्शितं स्तनपर्यन्तं भ्रूभागा पुनरावृता ॥28॥
स्खलत्पादयुगापात-पतिता पुनरुत्थिता ।
सखिभिर्व्याजमासाद्य कर्णाकर्णमनोहरम् ॥29॥
एतत् श्रवण योग्ये तु रहस्ये कामकल्पिता ।
लेखेयं पश्य सुश्रोणि ! शशाङ्केव कुचोपरि ॥30॥
इत्यादि-भावभविता घृणा-लज्जा-विवर्जिता ।
कामासहिष्णु-हृदया दूरे वा चान्तिके स्थिता ॥31॥
दूतीमुखेन स्वैरं वा जिज्ञासा स्फुरिताधुना ।
कस्त्वं कस्यापि पुत्रो वा कस्मादागत एव वा ॥32॥
किमर्थ किमिह स्थाता किम्वा तेऽभिमतं वद ।
अङ्गुष्ठ-केशपर्यन्तं पीत्वापि च न शाम्यति ॥33॥
तदा तद्भाव-चतुरो भावबोध-हविर्भुजा ।
तस्या निज-मनोहारी हविः शेषं विधाय च ॥34॥
तत्र स्थित्वा पुनः क्षोभं कुर्यात् काम इवापरः ।
भौमवारे चितास्थाने कुक्षि सिन्दूरमानयेत् ॥35॥
तेनैव कुलकाष्ठे तु यन्त्रं कृत्वा तदन्तरे ।
तेनैव कुलकाष्ठे तु स्फें-द्वन्द्वं च किटि-द्वयम् ॥36॥
देशलिखेच्च न मनुन्ततः .... ॥37॥
पत्रे महिषमर्दिन्या नववर्णं लिखेत्ततः ।
तद्बाह्ये जयदुर्गाख्यां श्मशानभैरवीं ततः ॥38॥
लिखित्वा पूजयेद्रात्रौ भद्रकाली समाहितः ।
कामाख्या सुखमास्थाय ध्यात्वा कामकला-तनुम् ॥39॥
दिग्वासा गलितो शेषाचिकुरः कुलकौलिकः ।
ध्यायेत् कालीं करालास्यां दंष्ट्रां नीलविलोचनाम् ॥40॥
स्फुरत्शवकर श्रेणि-कृतकाञ्चीं दिगम्बराम् ।
वीरासन-समासीनां महाकालोपरि स्थिताम् ॥41॥
श्रुतिमूल-समाकीर्ण सृक्कनी-चण्डनादिनीम् ।
मुण्डमाला-गलद्रक्त-चर्चितां पीवरस्तनीम् ॥42॥

मदिरा-मोदनास्फाल-कल्पिताखिलमोदिनीम् ।
वामे खड्गञ्च मुण्डञ्च धारिणीं दक्षिणे करे ॥43॥
वराभययुतां घोर-वदनां घोरजिह्विकाम् ।
सदन्त-पक्षसंयुक्त-वामकर्ण विभूषणाम् ॥44।
शिवाभिर्घोर-रावाभिः सेवितां प्रलयोदिताम् ।
चण्डहास-चण्डनाद-चण्डास्फालैश्च भैरवैः ॥45॥
गृहीत-नरकङ्काल-जयशब्द-परायणैः ।
सेविताखिल-शब्दौघ-मुनिभिः सेवितां सदा ॥46॥
एवं तां कालिकां ध्यात्वा पूजयेत् कुलनायकः ।
विना परपुरवेशं विचरान्तः प्रसर्पणम् ॥47॥
यत् किञ्चित् कुलसिद्धिस्तु जायते न मनागपि ।
सर्वसिद्धिप्रदा देवी हेलयापि च चिन्तया ॥48॥
अतः सा दक्षिणा नाम्नी त्रिषु लोकेषु गीयते ।
ततोऽष्टशतमामन्त्र्य सिद्धार्थ श्वेतसम्भवम् ॥49॥
कालीमन्त्रेण साध्यादि-ग्रथितेन च भैरव ! ।
विसृज्य देवीं हृदये स्थापयित्वा चतुष्पथे ॥50॥
देवीं ध्यात्वा द्वारदेशे नमस्कृत्य कुलं गुरुम् ।
सिद्धार्थान् वामहस्तेन गृहीत्वा मन्त्रमुच्चरन् ॥51॥
यत्र चत्वारि निगड़ं लौह-सङ्कुलमावृतम् ।
भित्वा तत्र विशेद् वीरो निःशङ्कः क्षोभ-विवर्जितः ॥52॥
शतावृत्तिं समुल्लङ्घ्य विहरेत् स्वेच्छया ततः ।
अश्वागारे रथागारे कालिकागार-सन्निधौ ॥53॥
देवतायतनेनापि अञ्जनाञ्चितलोचनः ।
ध्यात्वा स्वाप्नावतीं विद्यां प्रविशेत् काममण्डलम् ॥54॥
यदि कोऽपि समारौति न भयं तत्र चिन्तयेत् ।
के यूयमिति वक्तव्ये वयञ्च वीर पुरुषाः ॥55॥
वक्तुं ग्रहीतुं नार्हो वा न शक्तः पुरपालिकः ।
तत्र प्रदक्षिणीकृत्य पितरौ परमास्पदौ ॥56॥
पूजयेन्मन्त्रमालिख्य विजमन्त्रं जपेत्ततः ।
देवीकूटे उड्डियाने कामरूपे ततस्तटे ॥57॥

जालन्धरे ततः पूर्णे यज्ञभूमौ ततः परम्।
एषु विन्यस्य चक्राणि पूजयित्वा प्रणम्य च ॥58॥
अष्टधा शतधा नापि शतं वापि सहस्रकम्।
जप्त्वा पीठं समादाय भाण्डागारं ततो विशेत् ॥59॥
निर्मलां भूमिमास्थाय तत्र सिद्धासनं ततः।
बद्ध्वा पीठं परिष्कृत्य प्रणमेत् पीठसम्मुखम् ॥60॥
आगतास्मि महाभागे! सिद्धयोने! वरप्रदे!।
कुलपूजां करिष्यामि उपचारं प्रयच्छ मे ॥61॥
पुत्राज्ञां मस्तके कृत्वा ततः साग्रांधूमीक्षते।
कुलपुष्पं तथा गन्धं नैवेद्यं पुनराहरेत् ॥62॥
तद्धस्तावचितं पुष्पं तद्धस्तावचितं जलम्।
समादाय यथा पुष्पं कृत्वा गत्वा यथेच्छया ॥63॥
शालि-तण्डुलमादाय मत्स्यं मांसानि चैव हि।
घृतं मधु तथा चान्यत् यद्वा यत्रापि लभ्यते ॥64॥
स्थापयित्वा तानि तत्र परमीकृत्य साधकः।
निजेष्ट-देवतां स्मृत्वा निवेद्य शास्त्रमार्गतः ॥65॥
क्षणं स्थित्वा द्विधा कृत्वा तस्यार्द्धं कुलसिद्धये।
निवेदयेत् स्वयं चार्द्धं भक्षयित्वा पुरस्थितः ॥66॥
यदि नानुज्ञते शक्त्या तदा तोये विसर्जयेत्।
तत्र पीठं समादाय भूमिमार्जन-पूर्वकम्।
पितुः समीपे संस्थाप्य तत्त्वचिन्ता-परो भवेत् ॥67॥

देव्युवाच —

निद्रावशगतो देव! निशि चारेण साधकाः।
कामरूपं प्रविश्याशु कामाख्या-योनि-मण्डलम् ॥68॥
परिष्कृत्य कुलद्रव्यैर्लिखित्वा चक्रमुत्तमम्।
साध्य-साधक-नाम्ना च दर्भितं विपुलाकृतम् ॥69॥
कामस्थं काममध्यस्थं कामेन च पुटीकृतम्।
कामेन योजयेत् कामं कामी कामेन योजयेत् ॥70॥

ततो ध्यात्वा मनुं जप्त्वा पीठादिङ्चावलोक्य च।
मातृपीठे पितृमुग्रं स्थापयित्वा विधानतः ॥71॥
गृहीत्वा वस्त्र खण्डं वा ताम्बूलद्वयमेव वा।
काकिनीं वा तदर्द्धं वा तद्योग्यं हस्ते हठात् ॥72॥
प्रदक्षिण-क्रमेणैव क्रमेण निःसरेत्ततः।
गौराङ्गं नानाद्रव्यं वा पुरे क्षिप्तमथापि वा ॥73॥
गृहीत्वा यदि निर्याति तुष्टो भवति साधकः।
तेषां प्रहारश्चातुर्य व्यभिचारैः कुलक्षिभिः ॥74॥
क्रियते यदि हस्तेन तदा न॰ यति निश्चितम्।
व्यभिचारात् पुरः क्षोभे ॰ द्रश्चैवाभिभूयते ॥75॥
स्वप्न-प्रबोधमन्त्रेण बोधयेत् पौररूपिणम्।
अन्य-चौरेण वा तेषां कुलान्येव च शङ्करः ॥76॥
प्रविश्य विघ्नं कुर्वन्ति साधकस्य न संशयः।
भूत-प्रेत-पिशाचाश्च राक्षसाश्च सरीसृपाः ॥77॥
देवकन्या किन्नरी च तथा पाताल-कन्यका।
विद्याधरी भैरवश्च वटुको गणपस्तथा ॥78॥
रिपुर्विघ्नञ्चेत् कुर्वन्ति दृप्तां दृष्ट्वा वराङ्गनाम्।
अपत्यहानि-विक्षोभं व्याधि-दुष्ट-तलस्तथा ॥79॥
द्रव्यहानि-व्याकुलात्रं कुर्वन्ति दुःख-हेतुकम्।
एतत् पुरपतेरेतत् कारणा यदि शङ्कर ! ॥80॥
तृणहानिर्यदा यात् तदा नश्यति साधकः।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्रबोधं कारयेद् गुरुः ॥81॥
रक्षा कार्या प्रयत्नेन कीलकान् विलिखेत्ततः।
वज्रं शक्तिं तथा दण्डं खड्गं पाशं तथाङ्कुशम् ॥82॥
गदां शूलं तथा मध्ये चक्रं निक्षिप्य साधकः।
तत्र क्षितिपतीनाञ्च पूजा कार्या विशेषतः ॥83॥
पिष्टकं कदलं देव ेदकं पायसं तथा।
भक्तं लाजं शणं चक्रे नारिकेलफलं ततः ॥84॥
विष्णवे परमान्नञ्च गणेशस्य चिपीटकम्।
मोदकं नारिकेलञ्च कद॰ीं फलमेव च ॥85॥

क्षेत्रेशाय कृष्णछागं दत्त्वा वीरमनुं ततः।
जप्त्वा लोष्ट्रं ममादाय क्षिपेद्दशम् दिक्षु च ॥86॥
महायज्ञेऽतिगिक्तश्चेत् यथा रात्रादिभिः सुरैः।
विघ्नमाचर्यते तद्वत् दलोपरि महेश्वरि ! ॥87॥
ईशाने कुलशङ्खं निधापयेत् .... ।
ऊर्ध्वे वितस्ति-विस्तारमधो विस्तारमेव च ॥88॥
कृत्वा तत्र यन्त्रराजं पूजयेन्निशि साधकः।
रात्रौ पर्यटनञ्चैव रात्रौ च शक्तिपूजनम् ॥89॥
न करोति कथं देवि ! कौलिकः साधको भवेत्।
गृहस्तां समासाद्य प्रतिद्वारं समाहितम् ॥90॥
रात्रौ स्थित्वा कुलाचार-कथां त्रिभुवनेश्वरीम्।
नत्वा च पूजयेद् यन्त्रं पूर्वा शक्तिर्यथा भवेत् ॥91॥
प्रातः स्नात्वा गुरुं नत्वा देवान् पितृनृषींस्तथा।
तर्पयित्वा-यथाशक्तिं पूजयेद् भक्तिभावतः ॥92॥
ततः पुरगते शेषां कांश्चिद् द्वारादेशतः।
यदा पूर्वाङ्गनालाप-मिश्रणं व्यपदेशतः ॥93॥
द्रव्यादि-लाभ एवापि यथा भवति भैरव !।
दास-दासीपत्ति-पालचारणा प्रियकार्यपि ॥94॥
अस्योपरि कृपा तस्याः कीदृशी व्यपदेशतः।
ज्ञातव्या पुरचारैस्तु यत्नतः कुलसाधकैः ॥95॥
केनापि व्यपदेशेन कुलचूड़ामणिं ततः।
गृहीत्वा स्वर्णपात्रे वा ताम्रे वा कुल संकुले ॥96॥
लिखित्वा निजयन्त्रं वा कुलयन्त्रमथापि वा।
श्रीयन्त्रं वापि गन्धर्वयन्त्रं वा द्रव्यमिश्रितम् ॥97॥
मध्ये तत् कुलनाम्ना च दर्भितं कुलनामभिः।
पार्श्वे कामकलाबीजं निजमन्त्रेण वेष्टितम् ॥98॥
पूजयेत् साधकश्रेष्ठः कुलाचार-परायणः।
कुलपूजादिमन्त्रैस्तु रहितो विष्णुतत्परः ॥99॥
गच्छन् व्रजन् स्वपन् वापि स्थानं विष्णु परायणः।
जय विष्णो हरे ब्रह्म नानार्थ-शब्द विस्तरैः ॥100॥

ततः पूर्वोक्तरूपेण कुलक्षोभं समाचरेत् ।
ततो रात्रौ शून्यगेहे उद्याने वा मृगालये ॥101॥
आनीय कुलजां देवीं कुलमन्त्रेण दीक्षयेत् ।
ततः पूर्वोक्तरूपेण कुलक्षोभं समाचरेत् ॥102॥
एवं कृते न सिद्धश्चेत् मूलमन्त्रं समभ्यसन् ।
पीठानां परमं पीठं कामरूपं महाफलम् ॥103॥
तत्र या क्रियते पूजा सकृद्वापि महेश्वर ! ।
विहाय सर्वपीठानि तस्य देहे वसाम्यहम् ॥104॥
तस्माच्छतगुणं प्रोक्तं कामाख्या-योनिमण्डपम् ।
तेषां फलं महादेव ! ब्रह्म किं कथ्यतेऽधुना ॥105॥
यत्र कोटिगुणैः सार्द्धमाद्या महिषमर्द्दिनी ।
यत् पीठं ब्रह्मणो वक्त्रं गुप्तं सर्वसुखावहम् ॥106॥
यतो देवाश्च वेदाश्च ऋषयश्चैव भावजाः ।
सर्वेऽप्यभिभवन्नत्र तेन गुप्तं समुच्यते ॥107॥
द्विविधश्चैव यत् पीठं गुप्तं व्यक्तं महेश्वर ! ।
व्यक्ताद् गुप्तं महापुण्यं दुरापं साधकोत्तमैः ।
गुप्तं सर्वत्र देवेश ! लभ्यते कुलसुन्दरैः ॥108॥

भैरव उवाच –

आकर्षणविधानं मे स्वतन्त्रं मे प्रकाशय ।
पुत्रोऽहं यदि देवेशि ! सृष्टि-संहारकारिणी ॥109॥

देव्युवाच –

शृणु पुत्र ! महाविद्यामाकर्षण-करीं शिवाम् ।
यस्याराधनमात्रेण देवानाकर्षयेन्नरः ॥110॥
ब्रह्मा सरस्वती-युक्तो देवतामुख-संस्थितः ।
बीजं व्यक्तं समाकीर्णं कालीमन्त्रमुदाहृतम् ॥111॥
एकं वा द्विगुणं वापि त्रिगुणं वापि भैरव ! ।
जप्त्वाकर्षति स्वैरं वै स्थावरं जङ्गमादिकम् ॥112॥
एतद्विद्या महाकाली गुप्ताद् गुप्ततरा स्मृता ।
सुप्ता निद्रायिता मत्ताऽवमता भाविता तथा ॥113॥

समस्तदोष-जालेन ग्रथिता कुलसुन्दरी ।
निशिचारं दिवाचारं सन्ध्याचारञ्च पल्लवम् ।
दर्भिनं बीजसंयोगं भावसंयोगमेव च ॥114॥
ज्ञात्वा प्रबोधयेद् वीरो गुरुरत्रैव कारणम् ।
नियमे पुरुषो ज्ञेयो न योषित्सु कथञ्चन ॥115॥
यद्वा तद्वा येन केन सर्वदा सर्वतोऽपि च ।
योषितां ध्यानयोगेन सुरशेषं न संशयः ॥116॥
यथा वक्षान्तमात्रेण गूढसिद्धा शिलोच्छयः ।
स्वयमेव बहिर्याति यथा वा सुरतेजसा ॥117॥
सूर्यकान्तं स्फुटं गेन्द्रे यथा वा विधुरश्मिभिः ।
चन्द्रकान्तं द्रावयति यदा वर्षासु वारिदैः ॥118॥
त्रिपुरध्यानमात्रेण भुक्तिर्मुक्तिर्यथा भवेत् ।
महाविद्या-प्रसादेन यथा सिद्धीश्वरो भवेत् ॥119॥
कुलपुष्प-प्रसादेन तथा प्रीतिस्तु जायते ।
युवतीध्यानमात्रेण यथा कुलपतिर्भवेत् ॥120॥
गङ्गा-स्मरणमात्रेण निष्पापो जायते यथा ।
यथाकर्षणमात्रेण शिवसिद्धिः प्रजायते ॥121॥
कामाख्या-योनि-पूजायां यथा तुष्टोऽस्मि भैरव ! ।
योषिच्चिन्तनमात्रेण तथेयं वरदायिनी ॥122॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन दीक्षयेद् द्विज-कौलिकीम् ।
भैरवस्य ऋषिः प्रोक्त उष्णिक् छन्दस्तु देवता ॥123॥
कालिका दक्षिणा देवी चतुर्वर्गफलप्रदा ।
.... बीजेन मूर्त्ति-कल्पना ॥124॥
षड्दीर्घभाजा बीजेन कुर्यादङ्गादिकल्पनम् ।
ततो दशविभागेन मातृकार्णैः पृथक् पृथक् ॥125॥
हृदये हस्तयोः पाद-युगले विन्यसेत् ततः ।
पञ्चधा ध्यानमात्रेण पूर्वोक्तञ्च समाचरेत् ॥126॥
दशपञ्चार पक्षेषु पीठपूजां समाचरेत् ।
तत्रावाह्य यजेद्देवीं दक्षिणां कुल-भूषणाम् ॥127॥

महाकालं यजेद् युक्तैर्नैवेद्यैश्च यथोदितैः ।
निवेदितञ्च यद् द्रव्यं भोक्तव्यञ्च विधानतः ॥128॥
न चैतद् भोज्यते मोहाद् भोक्तुं नायान्ति देवताः ।
अनेनैव विधानेन योऽर्चयेत् परमेश्वरीम् ॥129॥
स वीरो नात्र सन्देहः साक्षादीशो न संशयः ।
महाशङ्खेन कल्याणि ! सर्वकार्ये जपादिकम् ॥130॥
कुलसर्वादिकस्यैतत् प्रभवो वर्णितो मया ।
न शक्याश्च मया ख्यातुं कल्पकोटिशतैरपि ॥131॥
किञ्चिन्मयापि चापल्यात् कथितं परमेश्वरि ! ।
जन्मान्तर सहस्रेण वर्णितुं नैव शक्यते ॥132॥
कुलीनाय प्रदातव्यं तारा-भक्तिप्रदाय च ।
अन्यभक्ताय न देयं वैष्णवान्येवदर्पितः ।
कुलीनाय महोत्साय भक्तिश्रद्धापराय च ॥133॥

इति श्रीमुण्डमालातन्त्रे हरपार्वतीसंवादे
ऊनविंशः पटलः ॥19॥

एतावत्येव मातृका अशुद्धिप्राया छिन्नसङ्गतिकेति प्रतिभाति ।

हमारे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन